इकाई-1 मुद्रा की रूपरेखा, परिभाषा एवं कार्य(Outline, definition and functions of money)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)
1.2 उद्देश्य (Objectives)
1.3 मुद्रा की प्रकृति या स्वभाव (Nature or character of money)
1.4 मुद्रा का महत्व (Importance of money)
    1.4.1 आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा का महत्व (Importance of money in modern economy)
1.5 मुद्रा की परिभाषा (Definition of money)
    1.5.1 प्रकृति के आधार पर (On the basis of nature)
    1.5.2 विस्तार के आधार पर (On the basis of expansion)
1.6 मुद्रा के कार्य (Functions of money)
    1.6.1 प्राथमिक कार्य (Primary function)
    1.6.2 सहायक कार्य (Auxiliary function)
    1.6.3 आकस्मिक कार्य (Incidental function)
    1.6.4 अन्य कार्य (Other functions)
1.7 मुद्रा के स्थैतिक एवं प्रावैगिक कार्य (Static and dynamic functions of money)
1.8 मुद्रा का आधारभूत कार्य (Basic function of money)
1.9 सारांश (Summary)
1.10 शब्दाबली (Terminology)
1.11 वस्तुनिष्ठ प्रश्न व उनके उत्तर (Objective questions and their answers)
1.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
1.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful/useful reading material)
1.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type questions)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

मुद्रा ,वर्तमान आर्थिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है। मुद्रा उतनी ही प्राचीन तत्व है जितना की मानव सभ्यता के कुछ अन्य मूलभूत तत्व। अतः यह निश्चित उत्तर देना संभव नहीं है कि मुद्रा का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ। उसके प्रारम्भिक रूपों की विविधता के कारण उसके उत्पत्ति के सम्बन्ध में निश्चित प्रमाण प्रस्तुत करना कठिन है। मानव जीवन के आर्थिक पहलू का विकास होने के साथ-साथ मुद्रा का भी विकास होता गया। विशिष्टीकरण एवं आर्थिक आवश्यकताओं में जैसे-जैसे वृद्धि होती गयी , मुद्रा के रूप प्रकृति व कार्यों में भी वैसे-वैसे ही परिवर्तन होता गया।

वस्तु मुद्रा, को मुद्रा का प्रारम्भिक रूप माना गया है। वस्तु विनिमय प्रणाली के अन्तर्गत चमड़ा, पालतू जानवर, खालें, अनाज आदि का प्रयोग मुद्रा के रूप में किया जाता था। धीरे-धीरे इसके स्थान पर धातु तथा धातुओं के सिक्को का प्रयोग मुद्रा के रूप में किया जाने लगा। इस क्रम के कालान्तर में पत्र मुद्रा का विकास हुआ। आज की वर्तमान प्रणाली में साख मुद्रा व ई-मनी का भी व्यापक रूप से प्रयोग होने लगा है। यह अन्त नहीं है , क्योंकि विकास एक निरन्तर न समाप्त होने वाली प्रक्रिया है।

इस इकाई में मुद्रा की प्रकृति उसके विभिन्न कायों पर विशेष बल दिया गया है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा मुद्रा को परिभाषित किया गया एवं इसके कार्यो का अवलोकन किया गया है।

1.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त् आपको यह ज्ञात हो सकेगा कि-

- ✓ मुद्रा की प्रकृति को जान सकेगें कि मुद्रा का स्वभाव कैसा है।
- ✓ वर्तमान समय में मुद्रा के महत्व को समझ सकेगें।
- ✓ मुद्रा क्या है व विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा इसे कितने प्रकार से परिभाषित किया गया है ?
- ✓ आप मुद्रा के विभिन्न रूपों को वर्गीकरण की सहायता से समझ सकेगें।
- ✓ मुद्रा के कार्यों को वर्गीकरण के आधार से समझ सकेगें।

1.3 मुद्रा की प्रकृति या स्वभाव (Nature or character of money)

मुद्रा की प्रकृति इन आधारभूत प्रश्नों पर आधारित है-

1) क्या मुद्रा एक आवरण या पर्दा है अथवा वास्तविक है?

2) मुद्रा साधन है या साध्य?

3) मुद्रा, उत्पादन और वितरण की क्रियाओं के लिये ईधन की भांति है।

4) क्या मुद्रा सरकारी उत्पत्ति है यदि हाँ तो मुद्रा के प्रति सरकार के क्या कर्तव्य है ?

5) क्या मुद्रा एक तरल सम्पत्ति है?

1. क्या मुद्रा एक आवरण या पर्दा है अथवा वास्तविक है?

प्रो0 पीगू के शब्दों में "मुद्रा एक आवेष्टन है , जिसमें सामान बांधकर आपके पास आता है।(Money is wrapper in which goods come to you)" सरल शब्दों में कहा जाता है कि "मुद्रा आर्थिक जीवन में लिपटा हुआ वस्त्र है।(Money is the garment draped round the body of economic life)" समाज में

वस्तुएं श्रम तथा कच्चे माल द्वारा निर्मित होती है। जब माल विनिमय अथवा विक्रय के लिये प्रस्तुत किया जाता है, तभी मुद्रा भुगतान की इकाई के रूप में प्रकट होती है। अर्थात् मुद्रा केवल बेचने के समय ही दिखाई पड़ती है, और यह भुगतान करते ही समाप्त भी हो जाती है। इसके आलोचकों ने माना हैं कि यह एक संकीर्ण दृष्टिकोण है जबकि आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा के महत्व को देखते हुये मुद्रा को मात्र आवरण नहीं माना जा सकता। उत्पादन-प्रक्रिया की प्रत्येक अवस्था में मुद्रा की आवश्यकता होती है और यहीं पूँजी संचय का आधार भी बनती है। अतः यह कहना उचित होगा कि मुद्रा मात्र आवरण ही नहीं वरन् यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सक्रिय तत्व भी है।

2. मुद्रा साधन है, साध्य नही?

मुद्रा की माँग, वस्तुओं और सेवाओं की प्राप्ति के लिए की जाती है। कोई देश निर्धन अथवा धनी इस आधार पर निर्धारित होता है, कि वहाँ वस्तुओं अथवा सेवाओं का कितनी मात्रा में और किस स्तर का उत्पादन किया गया है नाकि उस देश में प्रचलित मुद्रा की मात्रा से। अतः यह कहना उचित होगा कि मुद्रा साधन हैं नाकि साध्य।

3. मुद्रा उत्पादन तथा वितरण की क्रियाओं के लिये ईंधन की भांति है

कुछ अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता है कि ''मुद्रा स्वयं कुछ भी उत्पन्न करने की स्थिति में नहीं है। वह तो वस्तुओं के उत्पादन तथा वितरण की क्रियाओं के लिये सहायक तेल की भांति है।(Money itself creates nothing. It is a lubricant of real economic process of production and distribution) आधुनिक काल में जहाँ प्रति दिन तकनीकी में उन्नति हो रही है वहीं उत्पादन के क्षेत्र में यदि मुद्रा न हो तो बड़े पैमाने पर उत्पादन कर पाना संभव नहीं होगा। मुद्रा आधुनिक उत्पादन तन्त्र की गाड़ी के पहिये के लिये तेल के समान है। मुद्रा, उत्पादन के साथ-साथ वितरण क्षेत्र में भी मूल्य निर्धारक के रूप में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह सत्य है कि कोई भी ग्राहक, किसी भी वस्तु का क्रय करने से पहले, उस वस्तु के मूल्य को ज्ञात कर लेता है। अतः यह स्पष्ट है की किसी भी वस्तु के मूल्य को निश्चित किये बिना, उस वस्तु की बिक्री सम्भव नहीं है।

4. सरकार का दायित्व मुद्रा की मात्रा का नियन्त्रण

सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता ना केवल मुद्रा के उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करने के लिये बल्कि साख-व्यवस्था के लिये भी है। सरकारी व्यय की पूर्ति के लिये मुद्रा व्यवस्था पर सरकारी नियन्त्रण किया जाना आवश्यक है। अतः देश का केन्द्रीय बैंक सरकार की ओर से, देश में मुद्रा नियमन अथवा नियन्त्रण का कार्य करता है।

सरकारी हस्तक्षेप निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये आवश्यक है-

- **मूल्य स्थायित्व(Price stability)-** देश के उद्योगों तथा व्यापार के नियमित विकास व उपभोक्ताओं की सुरक्षा हेतु मुद्रा व्यवस्था का उचित नियमन आवश्यक है।
- **समानता(Equality)-** देश में समानता बनाये रखने के उद्देश्य से भी सरकारी हस्तक्षेप अनिवार्य है। इसी कारण से सभी देशों में धातु-मुद्रा का टंकण कार्य स्वयं सरकार द्वारा किया जाता है।

5. मुद्रा एक तरल सम्पत्ति है?

मुद्रा की यह एक अहम् खासियत है , कि वह एक तरल सम्पत्ति है अर्थात् वह हर समय किसी वस्तु अथवा सेवा को खरीदने के काम आ सकती है। अन्य सम्पत्तियों को तरल बनाने के लिये उस सम्पत्ति को पहले बेचना पड़ता है जबकि परन्तु मुद्रा स्वयं तरल होती है। मुद्रा के द्वारा वस्तुओं व सेवाओं का तत्काल क्रय किया जा सकता है। इसी गुण के कारण मुद्रा, विनिमय का माध्यम तथा मूल्य का मापक भी है।

1.4 मुद्रा का महत्व (Importance of money)

प्रो. मार्शल के शब्दों में "मुद्रा व धुरी है , जिसके चारों ओर अर्थविज्ञान केन्द्रित है।(money is the pivot around which the whole economic science clusters)" क्राउथर के अनुसार,"मुद्रा मनुष्य के समस्त आविष्कारों में एक आधारभूत आविष्कार है।" ज्ञान की प्रत्येक शाखा के अपने मूल आविष्कार हैं। मशीनों में यह आविष्कार पहिया है, विज्ञान में अग्नि और राजनीति विज्ञान में वोट है। उसी प्रकार अर्थशास्त्र तथा मनुष्य के समस्त व्यापारिक जीवन में मुद्रा एक ऐसा मूलभूत आविष्कार है , जिस पर अन्य सभी बातें आधारित होती है।

मुद्रा के बिना दुनिया का कोई अस्तित्व नहीं। विनिमय प्रणाली का प्रारम्भिक रूप तो वस्तु विनिमय था , परन्तु उसमें होने वाली असुविधा को मुद्रा ने समाप्त कर दिया। मुद्रा के उपयोग से व्यापार में विशिष्टीकरण को प्रोत्साहन मिलता है, जिससे कार्य क्षमता में वृद्धि होती है। मुद्रा के उपयोग के कारण ही वित्तीय संस्थाएँ जैसे बैंक तथा अन्य गैर बैंक वित्तीय संस्थाओं का सृजन होता है।

1.4.1 आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा का महत्व (mportance of money in modern economy)

एक आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा का महत्व कई गुना बढ़ जाता है। मुद्रा ना सिर्फ आधुनिक बाजार व्यवस्था का आधार है बल्कि यह साख-निर्माण का आधार भी है। मुद्रा ने मानव को आर्थिक , राजनीतिक एवं सामाजिक स्वतन्त्रता प्रदान की है। सामाजिक क्षेत्र में मुद्रा के द्वारा ही विभिन्न शैक्षणिक एवं सामाजिक संस्थाओं की स्थापना होती है। जो आर्थिक एवं सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

पूंजी निर्माण का सर्वोतम साधन मुद्रा है , क्योंकि यह एक तरल सम्पत्ति है , जिसे बैंक में रखकर ब्याज कमाया जा सकता है। मुद्रा की कीमत गिरने का संकेत यह भी है कि उस देश की आर्थिक स्थिति कमजोर है और यदि मुद्रा का मूल्य स्थिर रहता है, तो उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी मानी जाती है। अतः मुद्रा देश की प्रगति की सूचक होती है। अन्य वस्तु जैसे मकान , भूमि या अन्य स्थाई सम्पत्ति की तुलना में मुद्रा को बैंकों के माध्यम से सरलता से स्थानान्तरित किया जा सकता है। पूँजीवादी व्यवस्था का आधार मुद्रा ही है। मुद्रा ने ही आर्थिक जगत को वस्तु विनिमय के दोषों से मुक्ति किया है और यहीं सामाजिक कल्याण का सूचक है। यदि प्रति व्यक्ति वास्तविक आय बढ़ती रहती है, तो देश आर्थिक कल्याण की ओर अग्रसर होता है।

"मुद्रा वह धुरी है , जिसके चारों तरफ सम्पूर्ण अर्थविज्ञान चक्कर लगाता है। " मार्शल का यह कथन स्वीकार्य हैं क्योंकि यदि मुद्रा न होती तो आर्थिक विकास के उस शिखर तक मानव कभी न पहुँच पाता जिस पर आज के युग में वह औद्योगिकरण एवं आर्थिक सहयोग से पहुँच चुका है। ट्रेस्कॉट के शब्दों में , *"यदि मुद्रा को हमारे अर्थतन्त्र का हृदय नही तो रक्तश्रोत अवश्य माना जा सकता है।"*

1.5 मुद्रा की परिभाषा (Definition of money)

मुद्रा की एक स्पष्ट परिभाषा देना कोई सरल कार्य नहीं है। मुद्रा की परिभाषाओं के सागर में से यह निश्चित करना एक कठिन कार्य हो जाता है , मुद्रा की किस परिभाषा को अन्य परिभाषाओं की अपेक्षा अधिक उपयुक्त माना जाए। 'मुद्रा(Money) अंग्रेजी भाषा का शब्द है , जो लेटिन भाषा के शब्द 'मोनेटो(Moneta) से बना है। पुरातन सभ्यताओं में मनुष्य अलग-अलग रूपों में मुद्रा का प्रयोग करता रहा है। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ मुद्रा के रूप भी बदलते रहे है। शिकार युग में हथियारों को , पशुपालन युग में पशुओं को ,

कृषि युग में खाद्य पदा र्थो को मुद्रा के रूप में काम में लेने की प्रथा अत्यधिक प्रचलित रही है। इस दृष्टिकोण से मुद्रा शब्द बहुत पुराने समय से ही प्रचलित है।

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा को अलग-अलग दृष्टिकोण से परिभाषित किया है। अर्थशास्त्रियों के विभिन्न दृष्टिकोण को निम्नांकित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। जोकि इस प्रकार है-

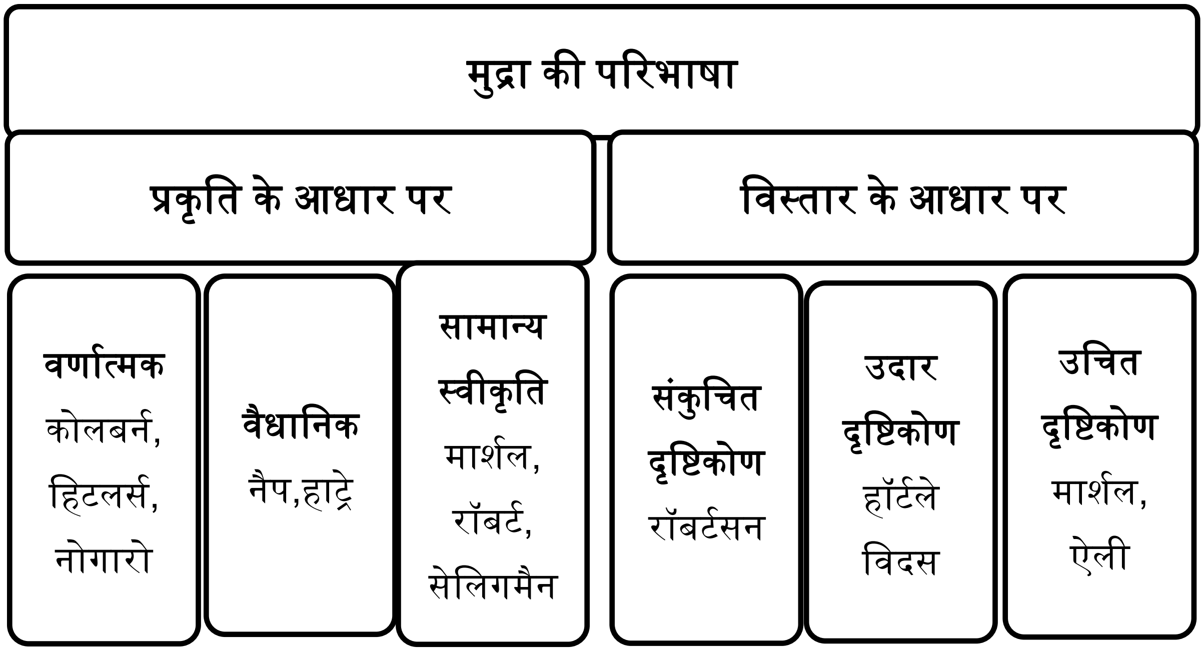

1.5.1 प्रकृति के आधार पर (On the basis of nature)

प्रकृति के आधार पर दी गयी मुद्रा की परिभाषाओं का वर्गीकरण

मुद्रा की प्रकृति के आधार पर विभिन्न परिभाषाओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

1. वर्णनात्मक परिभाषाएँ(Descriptive definitions)
2. वैधानिक परिभाषाएँ(Statutory Definitions)
3. सामान्य स्वीकृति पर आधारित परिभाषाएँ(Definitions based on general acceptance)

1. **वर्णनात्मक परिभाषाऐ (Descriptive definitions)-** यह परिभाषाएँ मुद्रा के कार्यो का वर्णन करती है, अतः इन्हें कार्यवाहक परिभाषाएँ भी कहा जाता है। फ्रांसिस वॉकर (Francis Walker), हार्टले विदर्स(Hartley Withers), सिजविक(Sidgwick),नोगारो(Nogaro) तथा ए स.ई.टॉमस(S.E Thomas) द्वारा इस आधार की परिभाषाएँ प्रस्तुत की गयी है।

वाकर के अनुसार- *"मुद्रा वह है, जो मुद्रा का कार्य करे"*

हार्टले के अनुसार- *"मुद्रा वह सामग्री है, जिससे हम वस्तुओं का क्रय-विक्रय कर सकते है।"*

टॉमस के अनुसार- *"मुद्रा के सभी सदस्यों के ऊपर एक प्रकार का अधिकार है , एक ऐसा आदेश अथवा वचन जिसे उसका स्वामी अपनी इच्छानुसार कभी भी पूरा कर सकता है। वह स्वयं साध्य नहीं है , अपितु अन्य व्यक्तियों की सेवाओं और वस्तुओं पर अधिकार जमाने का केवल साधन मात्र है।"*

मुद्रा का वर्णन करने वाली इन परिभाषाओं को वैज्ञानिक अध्ययन के लिये स्वीकार नहीं की जा सकता है। हालांकि वर्णनात्मक परिभाषाएँ सरल एवं व्यावहारिक है , परन्तु इनसे मुद्रा का रूप अत्यन्त व्यापक हो जाता है और इसके साथ-साथ मुद्रा का कोई निश्चित रूप उभर कर सामने नहीं आ पाता। ये परिभाषायें एक प्रकार से अस्पष्ट भी है , क्योंकि इनमें कहीं भी मुद्रा की सर्वमान्यता या सरकार द्वारा प्राप्त मान्यता का उल्लेख नहीं दिया गया है।

2. **वैधानिक परिभाषा(Statutory Definitions)-** इस वर्गीकरण के अनुसार किसी भी वस्तु को मुद्रा होने के लिये, उसकी वैधानिक मान्यता आवश्यक है। किसी देश में जिस वस्तु को सरकार मुद्रा घोषित कर देती है, वह उस देश में मुद्रा का रूप ले लेती है। तत्पश्चात् देश के प्रत्येक व्यक्ति को इसे स्वीकार करने को बाध्य होता है। इसके प्रमुख समर्थक जर्मनी के **प्रो0 नैप (Knapp)** तथा बिट्रिश अर्थशास्त्री **हॉट्रे(Hawtrey)** है।

नैप के अनुसार- *''कोई भी वस्तु जो राज्य द्वारा मुद्रा घोषित कर दी जाती है, मुद्रा कहीं जाती है।''*

वैधानिक परिभाषाओं की आलोचना करते हुये **कॉलबोर्न(Coulborn)** का कहना है , कि *''मुद्रा से सम्बन्धित वकीलों के दृष्टिकोण (Lawyer's view of money) को व्यक्त करती है, जो ठीक नहीं है।''*

जहाँ वर्णनात्मक परिभाषायें मुद्रा का व्यापक रूप प्रस्तुत करती है , वही वैधानिक परिभाषायें मुद्रा का संकुचित रूप प्रस्तुत करती है। सही अर्थो में , सरकारी स्वीकृति के दबाव में किया गया विनिमय को विनियमय नहीं कहा जा सकता । यह एक ऐच्छिक कार्य है। मुद्रा की सामान्य स्वीकृति उस समय खतरे में पड़ जाती है, जब मुद्रा प्रसार के काल में मुद्रा का मूल्य (Value of Money) तीव्र गति से गिरने लगता है। प्रथम महायुद्ध के दौरान, जर्मनी में भीषण मुद्रा प्रसार होने से जर्मनी सरकार की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा एवं शक्ति 'मार्क (Germany Currency-Mark) भी की सामान्य स्वीकृति बनाये रखने में असमर्थ रही थी। सन् 1944 में हंगरी में 'पेन्गास (Pengos) विधिग्राह्या होते हुए भी जनता की स्वीकृति प्राप्त नहीं कर सकी। अतः सर्वग्राह्यता का वास्तविक आधार जनता का विश्वास है नाकि राज्य की शक्ति।

3. **सामान्य स्वीकृति पर आधारित परिभाषाएँ (Definitions based on general acceptance)-** राबट्र्सन्(Robertson), मार्शल(Marshall), पीगू(Pigou), सेलिगमैन(Seligman), जी.डी.एच. कॉल(G.D.H Cole), प्रो. केन्स(Keynes), केन्ट(Kent), ऐली(Ely) तथा क्राउथर(Crowther) आदि ने सामान्य स्वीकृति को मुद्रा का एक आवश्यक तत्व मानते हुये इस आधार पर विभिन्न परिभाषायें प्रस्तुत की है, जोकि इस प्रकार है-

क्राउथर(Crowther) के शब्दों में- *''मुद्रा वह वस्तु है जो सामान्यतया विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग तथा सामान्यतया स्वीकार की जाती है (अर्थात् ऋणों के भुगतान के साधन के रूप में) तथा साथ-साथ मूल्य के मापक और संचय का कार्य करती है।*(Money is that thing which is generally used and generally accepted as a medium of exchange (i.e. as a means of payment of debts) and at the same time serves as a measure and store of value) अर्थात् ऐसी कोई भी वस्तु जो सामान्यतया मुद्रा के रूप में स्वीकार की जाती है , वह विनिमय के माध्यम व मूल्य के माप का कार्य भी करती है। इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर मुद्रा के रूप में स्वीकार की जाने वाली वस्तु के रूप में तीन विशेष लक्षण उत्पन्न होते है।

1. इसे मुद्रा के रूप में सामान्य स्वीकृति प्राप्त है।
2. यह स्वीकृति स्वतन्त्र तथा ऐच्छिक है।

3. यह सर्वग्राह्यता केवल वर्तमान लेन-देन व भुगतान के लिये नहीं बल्कि भविष्य के भुगतानों के लिये भी है। इसलिये इसका प्रयोग ऋणों की अदायगी व मूल्य के संचय के लिये किया जाता है।

सामान्य स्वीकृति पर आधारित यह परिभाषा अन्य परिभाषाओं की अपेक्षा अधिक उचित प्रतीत होती है। इस आधार पर सरकार तथा केन्द्रीय बैंक द्वारा जारी किये गये सिक्के तथा कागजी नोट, निःसन्देह, मुद्रा है। जिसे चलार्थ(Currency) कहा जाता है आज की आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा निश्चित करने के लिये चलार्थ की मात्रा के साथ- साथ देश में बैंकों की माँग जमा राशियों (Demand Deposits) को भी सम्मिलित किया जाता है। परन्तु सामान्य स्वीकृति पर आधारित परिभाषा के अनुसार इन राशियों को मुद्रा में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। इनका आधार तो केवल ऐच्छिक स्वीकृति है।

वहीं सामान्य स्वीकृति पर आधारित परिभाषाओं की मुख्य कमी यह है कि यह मुद्रा के सभी आवश्यक कार्यों पर (जिनसे सामान्य स्वीकृति प्रेरित होती है) समान रूप से प्रकाश नहीं डालती है। एक पूर्ण परिभाषा में मुद्रा के सभी कार्य सम्मिलित होने चाहिए।

अतः निष्कर्ष रूप में मुद्रा के गुणों का ध्यान रखते हुये यह कहा जा सकता है कि मुद्रा वह वस्तु है जिसे एक व्यापक क्षेत्र में विनिमय के माध्यम, ऋण मापक, ऋण भुगतान तथा मूल्य संचय के रूप में स्वतंत्र और सामान्य स्वीकृति प्राप्त हो।

1.5.2 विस्तार के आधार पर (On the basis of expansion)

विस्तार के आधार पर दी गयी मुद्रा की परिभाषाओं का वर्गीकरण

मुद्रा के विस्तार के आधार पर विभिन्न परिभाषाओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

- संकुचित दृष्टिकोण सम्बन्धित परिभाषाएं(Definitions related to narrow view)
- व्यापक दृष्टिकोण सम्बन्धित परिभाषाएं(Broad perspective related definitions)
- उचित दृष्टिकोण सम्बन्धित परिभाषाएं(Definitions related to proper approach)

- **संकुचित दृष्टिकोण सम्बन्धित परिभाषाएँ(Definitions related to narrow view)-**इस दृष्टिकोण पर आधारित परिभाषाएं मुद्रा के दो रूप स्पष्ट करती है।
  a. मुद्रा का अमूर्त रूप(Intangible form of money)
  b. मुद्रा का मूर्त रूप(tangible form of money)

मुद्रा का अमूर्त रूप मुद्रा के मूल्य मापक तत्व को व्यक्त करता है और मुद्रा को लेखा की इकाई के रूप में प्रस्तुत करता है। स्वीडिश अर्थशास्त्री गुस्ताव कैसल(Gustav Cassel) के अनुसार, *"मुद्रा वह वस्तु है जो अन्य वस्तुओं का मूल्यांकन करने के लिये सामान्य मापक का कार्य करती है। मुद्रा का प्रमुख और मौलिक कार्य एक ऐसी गणना के आधार का कार्य करना है जिसके द्वारा विनिमय योग्य वस्तुओं के मूल्य निर्धारित किये जा सके।"* मुद्रा का मूर्त रूप सभी प्रकार की पत्र मुद्राएं शामिल करता है जिन्हें विभिन्न भुगतानों के लिये प्रयोग में लाया जाता है। साधारणतया मुद्रा से तात्पर्य केवल उसके मूर्त रूप से ही लिया जाता है। किन्तु मुद्रा की उचित परिभाषा में मुद्रा के दोनों रूपों का सम्मिलित होना अनिवार्य है। संकुचित दृष्टिकोण अपनाने वाले विद्वान, मुद्रा के मूर्त रूप के अन्तर्गत केवल सिक्के तथा नोट को ही शामिल करते है। जबकि बैंक ड्राफ्ट , चेक, विनिमय-बिल आदि साख पत्रों को मुद्रा के रूप में शामिल नही करते है।

मुद्रा की सर्वमान्यता ही उसका आधार है। इसके लिये वैधानिक स्वीकृति का होना अनिवार्य नहीं है। वैधानिक स्वीकृति प्राप्त मुद्रा अथवा विधिग्राह्य को चलार्थ(Currency) कहा जाता है। जबकि मुद्रा में सर्वमान्य साख मुद्रा(Credit Money) भी सम्मिलित होती है।

"सभी चलार्थ मुद्रा है, परन्तु सभी मुद्रा चलार्थ नहीं है।" (All currency is money, but all money is not currency)

- **व्यापक दृष्टिकोण सम्बन्धित परिभाषाएँ(Broad perspective related definitions)-** इस दृष्टिकोण के अनुसार वे सभी वस्तुऐं जो मुद्रा का कार्य करती है , मुद्रा कहलाती है। जिस प्रकार प्रो.वॉकर (Prof. Walker) ने कहा, ***"मुद्रा वह वस्तु है जो मुद्रा का कार्य करे (Money is as money does)"*** और कार्ल हैलफरिक(Karl Halfrich) ने तो मुद्रा की इतनी व्यापक परिभाषा दी कि समस्त मौद्रिक प्रणाली का सम्बन्ध लगभग सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से स्थापित हो जाता है। उनके अनुसार *"मुद्रा से हमारा आशय उन सब वस्तुओं एवं संस्थओं से है, जो एक दिये हुये क्षेत्र तथा एक दी हुयी प्रणाली में, आर्थिक व्यक्तियों के बीच आर्थिक सहयोग में सुविधा पहुंचाती है।"*

वहीं कॉलबोर्न द्वारा दी गयी व्यापक दृष्टिकोण वाली परिभाषाओं को सामान्य स्वीकृति की व्यावसायिक विचारधारा के नाम से सम्बोधित किया जाता है। यह आवश्यक नहीं कि मुद्रा को परिभाषित करते समय उसे वैधानिकता के साथ जोड़ा जाए। आज के वर्तमान युग में जहां साख मुद्रा का महत्व लगातार बढ़ता जा रहा है वहां व्यापक दृष्टिकोण की परिभाषा अधिक उचित जान पड़ती है। अतः एक उचित परिभाषा वहीं होगी जो मुद्रा के वास्तवित रूप के साथ-साथ उसके आवश्यक कार्यों को भी उल्लेखित करें।

नोट: जिन देशों में बैंकिंग का अधिक विकास नहीं हुआ वहाँ करेन्सी अथवा चलार्थ भुगतान के माध्यम के रूप में सर्वाधिक सामान्य स्वीकृत है जैसे 1950 के दश के प्रारम्भिक में भारत देश जहाँ मुद्रा पूर्ति का 85 प्रतिशत के करीब करेन्सी के रूप में था। आज भी जहां भारत में करेन्सी का हिस्सा 20 प्रतिशत के लगभग रहा है वहीं पश्चिम के अधिकांश आद्यौगिक देशों में यह 6 प्रतिशत है।

जैसे जैसे बैंकों का विकास होता जाता है , वैसे-वैसे चैकों आदि का अधिक प्रयोग होने लगता है और उसके संलग्न क्रियाओं में सुधार होता जाता है। जैसे भारत में एम.आइ.सी.आर.(MICR- Magnetic Ink Character Recognition) चेकों के समाशोधन का विस्तार किया गया है तथा इलेक्ट्रॉनिक समाशोधन सेवा (Electronic Clearing Services) के अन्तर्गत जमा तथा नामे की प्रणाली लागू की गयी है। क्रेडिट कार्ड का प्रयोग भी बढ़ रहा है जिसे प्लास्टिक मुद्रा की संज्ञा दी गयी है और इनके लिए Visa तथा Master Card जैसे अर्न्तराष्ट्रीय ब्राण्डों का प्रयोग कर रहे हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि भारत में भी भुगतान प्रणाली का आधुनिकीकरण प्रारम्भ हो चुका है। त्वरित भुगतानों की व्यवस्था के लिए सैटेलाइट अधिक नेटवर्क कार्य कर रहा है।

- **उचित दृष्टिकोण सम्बन्धित परिभाषाएँ (Definitions related to proper approach)-** इस विचारधारा के अनुसार धातु के सिक्कों और कागज के नोटों को ही मुद्रा में शामिल किया गया है। प्रो. मार्शल एवं प्रो. एली इसके मुख्य समर्थक है।

मार्शल के अनुसार- *"मुद्रा में उन सभी वस्तुओं का समावेश होता है जो किसी भी समय या स्थान में बिना किसी संदेह के और बिना किसी जांच पड़ताल के वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने और भुगतान करने से साधन के रूप में स्वीकृति की जाती है।"*

प्रो. ऐली के अनुसार- *"मुद्रा ऐसी वस्तु है, जो विनिमय के माध्यम के रूप में हस्तान्तरित होती है और ऋणों के अंतिम भुगतान के रूप में सामान्य रूप से ग्रहण की जाती है।"*

उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि ऐसी वस्तु मुद्रा हो सकती है , जिसे विनिमय के माध्यम एवं ऋणों के अंतिम भुगतान के रूप में सामान्य स्वीकृति प्राप्त है। इस आधार पर हम साख पत्रों जैसे चेक, विनिमय-पत्र आदि को मुद्रा के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते। इस प्रकार केवल धातु के सिक्के एवं कागजी मुद्रा को ही मुद्रा में शामिल किया जाता है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर मुद्रा को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित करना उचित रहेगा कही जा सकती है। *"मुद्रा ऐसी वस्तु है , जिसे विस्तृत रूप में विनिमय के माध्यम , मूल्य के मापक ऋणों के अंतिम भुगतान तथा मूल्य के संचय के साधन के रूप में स्वतन्त्र एवं सामान्य रूप से स्वीकार किया जाता है।"*

1.6 मुद्रा के कार्य (Functions of money)

प्रो0 चैण्डलर का कथन है कि किसी आर्थिक प्रणाली में मुद्रा का एकमात्र मौलिक कार्य , वस्तुओं तथा सेवाओं के लेन-देन में लगने वाले समय तथा परिश्रम की बचत करना होता है।

मुद्रा के सभी कार्यो का वर्गीकरण अग्र प्रकार से किया जा सकता है-

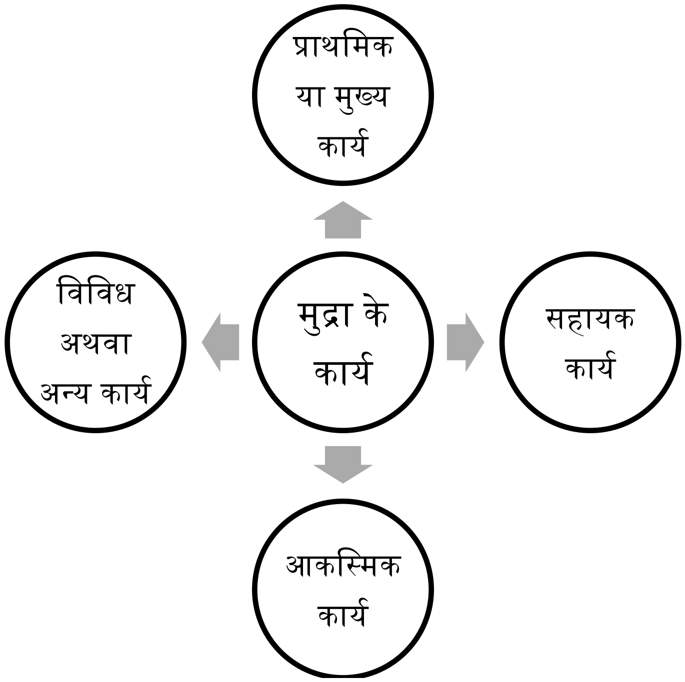

1.6.1 प्राथमिक कार्य (Primary function)

सहायक कार्य मुद्रा के कुछ ऐसे कार्य है , जो प्राथमिक कार्यों में मुद्रा के उन महत्त्वपूर्ण कार्यों को शामिल किया जाता है जो इसे प्रत्येक देश में करने होते है। इस श्रेणी में विनिमय का माध्यम व मूल्य मापक कार्य उल्लेखनीय है।

1.विनिमय का माध्यम(Medium of Exchange)-आधुनिक युग में जितना लेन-देन होता है, उसका भुगतान अधिकतर मुद्रा के द्वारा ही किया जाता है। एक उत्पादक द्वारा थोक विक्रेता को माल बेचकर मुद्रा प्राप्त की जाती है, आगे चलकर थोक विक्रेता फुटकर व्यापारी को बेचता है, और मुद्रा प्राप्त करता है, जिसे अब ग्राहक को मुद्रा के बदले बेचा जाता है। इस प्रकार समाज के सभी क्रेता-विक्रेता , उपभोक्ता और व्यापारी के बीच मुद्रा एक कड़ी है, जो प्रत्येक वर्ग को प्रतिफल दिलाती है।

अतः वर्तमान विनिमय व्यवस्था की कल्पना मुद्रा के बिना संभव नहीं है। मुद्रा का प्रयोग करने से क्रेताओं तथा विक्रेताओं को स्वतंत्र निर्णय करने की शक्ति प्राप्त हुई है। अब वे स्वतंत्र रूप से निर्णय ले सकते है कि वे कहाँ और कितनी मात्रा में क्रय-विक्रय करें। जहॉ उत्पति के साधनों को भी अब अपने योगदान का प्रतिफल

मुद्रा के रूप में प्राप्त हो जाता है। वहीं साधनों को भी अपने योगदान का प्रतिफल मुद्रा के रूप में प्राप्त हो जाता है। जिसे अब वे अपनी इच्छा से व्यय कर सकते है। विनिमय के माध्यम के रूप में मुद्रा सभी वस्तुओं का आवंटन करती है और अर्थव्यवस्था के पहिये को लगातार चलायमान बनाये रखती है।

2.मूल्य मापक (Measure of Value)- क्राउथर ने लिखा है कि, *"यह लेखे की इकाई के रूप में कार्य करती है, यह मूल्य के मापदण्ड अथवा सर्वमान्य मापक का जिसे अन्य सभी वस्तु ओं की तुलना की जा सकती है , कार्य करती है।"* मुद्रा में व्यक्त किया गया मूल्य कीमत कहलाता है। उल्लेखनीय है कि मूल्य मापक का कार्य ठीक प्रकार से सम्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि मुद्रा के अपने मूल्य में कोई उतार चढ़ाव न हो। मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन होने के कारण ही वस्तुओं की कीमतों में सार्थक परिवर्तन होता है।

1.6.2 सहायक कार्य (Auxiliary function)

सहायक कार्य, मुद्रा के कुछ ऐसे कार्य है जो प्राथमिक कार्य के सहायक होते है और अर्थव्यवस्था के विकास के साथ-साथ बढ़ते रहते है। इस श्रेणी में तीन कार्य उल्लेखनीय है।

1. भावी भुगतानों का आधार(Basis of future payments)
2. मूल्य संचय का साधन(Means of accumulation of value)
3. मूल्य हस्तान्तरण(value transfer)

1.भावी भुगतानों का आधार(Basis of future payments)-ऐसे भुगतान जिन्हें तत्काल न करने के स्थान पर भविष्य के लिये स्थगित कर दिया जाता है , उनके लिये मुद्रा ही आधार है। लेकिन यह तभी संभव हो पाता है , जब मुद्रा के मूल्य में सामान्यतः स्थिरता बनी रहे। इसमें टिकाऊपन भी अधिक होता है तथा इसमें सामान्य स्वीकृति का गुण भी विद्यमान होता है।

2.मूल्य संचय का साधन(Means of accumulation of value)-मुद्रा के प्रयोग द्वारा मूल्य संचय का कार्य अत्यन्त सरल हो गया है क्योंकि इसमें टिकाऊपन अथवा अक्षयशीलता का गुण भी विद्यमान होता है। इसे सुरक्षापूर्वक जमा किया जा सकता है , और इसके साथ-साथ इससे ब्याज भी कमाया जा सकता है। आधुनिक बैंकिग का विकास मुद्रा के इसी कार्य से सम्भव है। किसी देश में आर्थिक विकास के लिये यह अति आवश्यक हो जाता है कि वहाँ अधिक मात्रा में पूँजी संचय किया जाता हो। देश में अधिक मात्रा में पूँजी संचय के लिये मुद्रा का मूल्य स्थिर बनाये रखना आवश्यक है, ताकि लोग अपनी बचत को स्वर्ण, भूमि या किसी अन्य रूप में संचित करके ना रखने लगे। कीमतों की स्थिरता यह तय करती है, कि लोगों द्वारा मूल्य का संचय मुद्रा के रूप में किया जायेगा अथवा अमौद्रिक परिसम्पत्तियों के रूप में।

महत्ता की दृष्टि से, मुद्रा के उपरोक्त चार कार्य अति महत्वपूर्ण है। अन्य कार्य किसी न किसी रूप में इन्हीं चार कार्यो से जुड़े है। इनका भी सामान्य दृष्टि से महत्व है।

3.मूल्य हस्तान्तरण(transfer of value)- वहनीयता के गुण के कारण मुद्रा के रूप में क्रय-शक्ति अथवा मूल्य का हस्तान्तरण सुविधापूर्वक किया जा सकता है। इसी के फलस्वरूप आर्थिक जीवन में गतिशीलता बढ़ी है और आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है।

1.6.3 आकस्मिक कार्य (Incidental function)

किनले के अनुसार *"प्रत्येक उन्नत अर्थव्यवस्था में मुद्रा मुख्यतरू सहायक कार्यो के अतिरिक्त चार आकस्मिक कार्य भी करती है।"*

1.आय का वितरण(Distribution of income)- उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के सहयोग से ही उत्पादन करना संभव हो पाता है। अतः इन साध नों को उनका उचित प्रतिफल मिलना चाहिये। जो मुद्रा द्वारा ही सम्भव होता

है। मुद्रा में न केवल समस्त राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया जाता है। बल्कि प्रत्येक वर्ग को उसके योगदान के अनुपात में भुगतान भी मुद्रा में ही दिया जाता है।

2.साख का आधार(basis of credit)- बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं का व्यवसाय साख के आधार पर ही चलता है तथा साख-सृजन का कार्य भी बैंकों में जमा राशि के आधार पर ही किया जाता है , जो मुद्रा के रूप मे होती है। इस प्रकार मुद्रा ना केवल भुगतान के माध्यम के रूप में कार्य करती है बल्कि भुगतानों के साधनों के निर्माण का आधार भी है।

3.पूँजी की उत्पादकता बढ़ाना(increasing productivity of capital)- मुद्रा, पूँजी का सबसे बड़ा आधार है। मुद्रा के द्वारा ही पूँजी को ऐसे विनियोग में हस्तान्तरित किया जा सकता ,जहाँ उसकी उत्पादकता तुलनात्मक रूप से अधिक हो। इससे पूँजी की गतिशीलता एवं उत्पदकता में वृद्धि होती है।

4.सम्पत्ति की तरलता(liquidity of assets)- मवदे, सम्पत्ति को एक सरल रूप प्रदान करता है। नकद राशि को अधिकतम लाभ देने वाले स्थानों, केन्द्रों अथवा व्यवसायों में सरलता से भेजा जा सकता है। मुद्रा उत्पत्ति का एक साधन तो नहीं है, परन्तु पूँजी को सामान्य रूप देकर उत्पादन में बहुत अधिक सहायक होती है।

1.6.4 अन्य कार्य (Other functions)

उपर्युक्त कार्यो के अतिरिक्त मुद्रा के कुछ अन्य कार्य इस प्रकार है:-

1.निर्णय वाहक(Bearer of Option)- ग्राहक के मतानुसार मुद्रा के रूप में की गयी बचत भविष्य में किसी भी उद्देश्य के लिए काम में लायी जा सकती है। चँूॅकि मनुष्य के उद्देश्य बदलते रहते है , जिसके लिये मुद्रा सबसे उपर्युक्त वस्तु है, जो किसी भी निर्णय के अधीन उद्देश्य के लिये काम में लायी जा सकती है।

2.शोधन क्षमता का सूचक(Index of Solveney)- आर.पी. केन्ट के अनुसार, “किसी व्यक्ति के पास तरल मुद्रा उसकी भुगतान अथवा शोधन क्षमता की गारण्टी होती है , मुद्रा इस बात का सूचक है , कि शोधन क्षमता को कहाँ तक बनाये रखा जा सकता है।“

1.7 मुद्रा के स्थैतिक एवं प्रावैगिक कार्य (Static and dynamic functions of money)

पॉल एन्जिग (Paul Einzig) के अनुसार मुद्रा के कार्यो को स्थैतिक एवं प्रावैगिक कार्यों के आधार पर विभाजित किया जा सकता है।

स्थैतिक कार्य वे कार्य होते है जिनसे अर्थव्यवस्था संचालित होती है परन्तु उसमें वे गति अथवा वेग उत्पन्न नहीं करते है। इस आधार पर विनिमय माध्यम , मूल्य मापक, क्रय के संचय, हस्तांतरण अथवा स्थगित भुगतान के रूप में मुद्रा के मुख्य एवं सहायक कार्य है क्योंकि इनसे प्रत्यक्ष रूप से वेग उत्पन्न नहीं होता है। एक स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था में मवदे , कीमत प्रणाली के संचालन के माध्यम के रूप में भी कार्य करती है। *मुद्रा के स्थैतिक कार्यों को निष्क्रिय कार्य, परम्परागत कार्य, स्थिर कार्य तथा तकनीकी कार्य भी कहते हैं।*

दूसरी ओर, मुद्रा के वे कार्य जिनसे आर्थिक गतिविधियां सक्रिय रूप में प्रभावित होती है। वे कार्य मुद्रा के प्रावैगिक कार्य कहलाते है। मुद्रा का सबसे महत्वपूर्ण सक्रिय कार्य कीमत को प्रभावित करना है और जैसा की आप जानते है कि कीमत स्तर में परिवर्तन होने से ही आर्थिक परिस्थितयां प्रभावित होने लगती है। मुद्रा की मांग और पूर्ति में परिवर्तन होने से मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन होता है , जिसके परिणामस्वरूप रोजगार , उत्पादन, आय-स्तर आदि सभी प्रभावित होने लगते है। जब मौद्रिक विस्तार के फलस्वरूप लोगों के पास अधिक क्रय-शक्ति होती है , तब वस्तुओं की कीम ते बढ़ने लगती है , और इसके साथ-साथ उत्पादन विस्तार वृद्धि तथा आय-वृद्धि की प्रवृत्तियां उत्पन्न होने लगती है। इसकी गति तीव्र होने पर मुद्रा स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अर्थव्यवस्था की ब्याज दरें, बचत, निवेश, सरकारी व्यय तथा उत्पत्ति के साधनों का उपयोग प्रभावित होता है, जिनसे आर्थिक स्थिति सक्रिय रूप में प्रभावित होती है।

पॉल ऐन्जिग ने यह स्पष्ट किया कि मुद्रा की सहायता से ही सरकार घाटे के बजट बना पाती है। मुद्रा के रूप में व्यय करने से सरकार आर्थिक विकास एवं सामाजिक विकास के कार्यक्रमों को पूरा करती है।
पूँ ंजी को तरलता प्रदान करना साख के आधार के रूप में कार्य करना मुद्रा के प्रावैगिक कार्य ही है। वास्तव में मुद्रा के प्रावैगिक कार्य उतने ही महत्वपूर्ण है जितने उसके स्थैतिक कार्य है।

1.8 मुद्रा का आधारभूत कार्य (Basic function of money)

प्रो. चैण्डलर (Prof. Chandler) के अनुसार *“मुद्रा का आधारभूत उद्देश्य, ‘चलन के चक्के’ तथा ‘व्यापार के यंत्र’ के रूप में कार्य करता है। अधिकतर विनिमय माध्यम के कार्य को ही आधारभूत कार्य मानते है , क्योंकि अन्य कार्य इसी आधार पर कार्य करती है।“*
हैन्सन (Hansen) के अनुसार मुद्रा के सभी परम्परागत अथवा स्थैतिक कार्य उसके विनिमय माध्यम कार्य की ही शाखाएँ मात्र है।

1.9 सारांश (Summary)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि मुद्रा की विभिन्न परिभाषाएँ कौन-कौन सी है तथा इसके कार्यो के आधार पर इसका वर्गीकरण किस प्रकार किया जा सकता है।

मुद्रा की प्रकृति के आधार पर मुद्रा की परिभाषाओं को तीन वर्गो में विभाजित किया जाता है- वणर्नात्मक परिभाषाएं, वैधानिक परिभाषाएं, तथा समान्य स्वीकृति पर आधारित परिभाषाएं।
साधारणतया मुद्रा के चार कार्यो-विनियम का माध्यम , मूल्य का मापक, स्थगित भुगतानों का मान तथा संचय का ही उल्लेख किया जाता है। परन्तु यथार्थ में मुद्रा के कार्य बहुत व्यापक है। किनले द्वारा इन्हें तीन वर्गो में विभाजित किया गया है- 1. **मुख्य अथवा प्राथमिक कार्य** 2. **सहायक कार्य** 3.**आकस्मिक कार्य**। मुद्रा के कार्यो का विकास भी उसी क्रम में हुआ है , जिस क्रम में मनुष्य के आर्थिक जीवन का विकास हुआ है। यह कार्य आज भी नहीं रूका है। मुद्रा एक साधन है, साध्य नहीं। यह वह धुरी है, जिसके ओर चारों ओर अर्थविज्ञान केन्द्रित है। यह विशिष्ट अर्थव्यवस्था की उपज है। मुद्रा , आर्थिक विकास के लिए बचत तथा निवेश को प्रोत्साहित करने में योगदान करती है। मुद्रा के उपयोग के कारण ही वित्तीय संस्था ओं जैसे बैंक तथा अन्य गैर-बैंक वित्तीय संस्थाओं का सृजन हुआ है।

1.10 शब्दाबली (Glossary)

- **वस्तु विनिमय (Barter)** -वस्तुओं के बदले में वस्तुओं का आदा-प्रदान।
- **बैंक मुद्रा (Bank Money)** -व्यापारिक बैंकों द्वारा सृजित माँग जमा।
- **बाह्य मुद्रा (External currency)** -सरकारी ऋण पर आधारित मुद्रा।
- **आन्तरिक मुद्रा (Internal currency)** -आर्थिक इकाइयों के ऋण पर आधारित मुद्रा।
- **अर्द्ध मुद्रा (Semi currency)** -ऐसी परिसम्पतियॉ, जो तरलता का गुण रहते हुये भी स्पष्ट रूप में मुद्रा नहीं कही जा सकती।

1.11 वस्तुनिष्ठ प्रश्न व उनके उत्तर (Objective questions and their answers)

1. मुद्रा का सामान्य अर्थ है।
(क) करेन्सी
(ख) करेन्सी तथा बैंको की सम्पूर्ण जमा राशियॉ
(ग) करेन्सी तथा मंाग जमा राशियॉ

(घ) सम्पूर्ण चलनिधि

2. मुद्रा का अनिवार्य कार्य क्या है-

(क) मूल्यमापन

(ख) मूल्य संचय

(ग) मूल्य हस्तान्तरण

(घ) साख व्यवस्था का आधार

3. मुद्रा एक अच्छा.........................है, किन्तु बुरा......................।

4. नैप अर्थशास्त्री ने मुद्रा की...........................परिभाषा का प्रतिपादन किया।

5. मूल्य मापक मुद्रा का...........................कार्य है।

6. मूल्य संचय मुद्रा का.............................कार्य है।

7. वर्तमान समय में मुद्रा अर्थ विज्ञान की धुरी है। सही/गलत

8. राबर्टसन ने मुद्रा के लिये संकुचित दृष्टिकोण की परिभाषा दी। सही/गलत

उत्तर: 1.(ख) 2.(क) 3.सेवक,स्वामी 4.वैधानिक 5.प्राथमिक 6.सहायक 7.सही 8.सही

1.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

1. डा0 जे0सी0 पन्त एवं जे0पी0 मिश्रा - अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
2. डा0 टी0टी0 सेठी - मौद्रिक अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
3. डा0 टी0टी0 सेठी - समष्टि अर्थशास्त्र
4. डा0 एम एल झिंगन - मौदिक अर्थशास्त्र

1.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful/useful reading material)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Macro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Ahuja, H.L. (2010) ***Principles of Macro Economics***, S. Chand and Company Ltd. New Delhi.
- Colander, D. C., (2008) ***Economics***, McGraw Hill Education, New Delhi.
- Mishra, S.K. and V.K. Puri (2003) ***Modern Macro Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.

1.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type questions)

1. मुद्रा की परिभाषा दीजिए। वर्तमान में इसके महत्व की विवेचना कीजिए।

2. मुद्रा क्या है ? क्या आप ऐसा सोचते है , कि मुद्रा के कार्यो का विकास समय समय पर इससे चाहने वाली सेवाओं के अनुसार हुआ है?

3. मुद्रा के स्थैतिक तथा प्रावैगिक कार्यो की व्याख्या कीजिये ? एक विकासशील अर्थव्यवस्था में प्रावैगिक कार्यो की व्याख्या कीजिये?

4. मुद्रा के आविष्कार ने आर्थिक क्रियाओं को प्रयासरत् रूप में प्रोत्साहित किया है? विवेचना कीजिये?

इकाई - 2 मुद्रा का वर्गीकरण (Classification of Money)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

2.2 उद्देश्य (Objective)

2.3 मुद्रा का वर्गीकरण (Classification of currency)

2.3.1 प्रकृति के आधार पर मुद्रा का वर्गीकरण (Classification of currency on the basis of nature)

2.3.2 वैधानिक मान्यता के आधार पर मुद्रा का वर्गीकरण (Classification of currency on the basis of legal recognition)

2.3.3 पदार्थ के आधार पर मुद्रा का वर्गीकरण (Classification of currency on the basis of substance)

2.4 सारांश (Summary)

2.5 शब्दाबली (Glossary)

2.6 वस्तुनिष्ठ प्रश्न व उनके उत्तर (Objective questions and their answers)

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful/useful study material)

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay question)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

मुद्रा की स्वयं कोई उपयोगिता नही होती है। किन्तु मनुष्य को अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु जिन वस्तुओं एवं सेवाओं की आवश्यकता होती है उन्हें मुद्रा के बदले में प्राप्त किया जा सकता है। मुद्रा समाज में अनेक रूपों में प्रचलित है यथा वास्तविक मुद्रा एवं हिसाब की मुद्रा , विधि ग्राह्य मुद्रा और ऐच्छिक मुद्रा , धातु मुद्धा तथा पत्र मुद्रा आदि। मुद्रा पूर्ति के सामान्यतया जाने माने माप में क रेंन्सी, शुद्ध मांग निक्षेप , भारत के रिजर्व बैंक के पास अन्य निक्षेप शामिल किये जाते है।

2.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप मुद्रा का वर्गीकरण किस तरह से किया जाता है। मुद्रा को वर्गीकृत करने के लिये विभिन्न आधारों का प्रयोग किया जाता है। व इसकी विभिन्न अवधारणाओं से अवगत हो जाएगें।

2.3 मुद्रा का वर्गीकरण (Classification of currency)

मुद्रा का वर्गीकरण कई तरह से किया गया है। मुद्रा को वर्गीकृत करने के लिये विभिन्न आधारों का प्रयोग किया जाता है- (1) जिन वस्तुओं से मुद्रा बनाई जाती है (2) मुदा को जारी करने वाले की प्रकृति जैसे , सरकार, केन्द्रीय बैंक अथवा अन्य कोई।

2.3.1 प्रकृति के आधार पर मुद्रा का वर्गीकरण (Classification of currency on the basis of nature)

प्रकृति के आधार पर जे.एम.केन्स (J.M Keynes) ने मुद्रा का वर्गीकरण 'वास्तविक मुद्रा' तथा 'हिसाब की मुद्रा' में किया है।

समय-समय पर मुद्रा ने विविध रूप धारण किये हैं। मुद्रा के विभिन्न स्वरूपों को समझने के लिए मुद्रा का वर्गीकरण तीन प्रकार से किया जा सकता है।

1.वास्तविक मुद्रा (Real Money) से तात्पर्य उस मुद्रा से है जो किसी देश में विनिमय-माध्यम तथा भुगतान के आधार के रूप में प्रचलित होती है और क्रय-शक्ति का संचय करती है। चलन में विभिन्न सिक्के एवं करेन्सी नोट वास्तविक मुद्रा ही हैं। वास्तविक मुद्रा के कीन्स ने दो उपभेद बताये हैं:

वस्तु मुद्रा (Commodity Money) -लॉर्ड कीन्स के अनुसार, वस्तु मुद्रा किसी स्वतन्त्र रूप मे उपलब्ध वस्तु से बनी हुई इकाई है जिसे मुद्रा का कार्य करने के लिये चुना गया है। इसका अर्थ यह है कि कोई भी ऐसी वसतु जो सरलता से प्र्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो और जिसे जनता ने सुविधा की दृश्टि से मुद्रा का दर्जा दे दिया हो, वस्तु मुद्रा कहलाती है। इस प्रकार की मुद्रा का वास्तविक मूल्य (Real Value) उनके अंकित मूल्य (Face Value) के बराबर अथवा लगभग बराबर होता है। इसको पूर्णकाय मुद्रा (Full bodied money) भी कह सकते हैं। धातु-मुद्रा ही वस्तु-मुद्रा की श्रेणी में आ सकती है।

प्रतिनिधि-मुद्रा (Representative money)- यह मुद्रा विनिमय-माध्यम के रूप में कार्य करती है क्योंकि क्रय-शक्ति की प्रतिनिधि होती है। प्रतिनिधि मुद्रा का चलन धात्विक कोषों पर आधारित हो सकता है जो कि मुद्रा की मात्रा के शत-प्रतिशत मूल्य तक के बराबर हो सकते हैं। यह भी सम्भव है कि यह धात्विक कोषों के बजाय सरकार के विश्वास पर ही आधारित हो। चलन में घटिया धातुओं के सिक्के अथवा कागजी नोट ही होते हैं। इनका यथार्थ मूल्य कुछ न होने के कारण यह मुद्रा क्रय-शक्ति के संचय के लिए उपयुक्त नहीं होती। यह भी दो प्रकार की होती है-(1) परिवर्तनीय, और (2) अपरिवर्तनीय। परिवर्तनीय मुद्रा को वस्तु-मुद्रा से बदला जा

सकता है परन्तु अपरिवर्तनीय मुद्रा को (सिर्फ अपने में) अन्य किसी वस्तु-मुद्रा में बदलने के लिए निर्गम संस्थाएँ अथवा सरकार बाध्य नही होती है। इसे केन्स ने 'बलात् मुद्रा' (Fiat money) भी कहा है।

2.हिसाब की मुद्रा (Money of Account) वह है जिसमें ऋण और कीमतें तथा सामान्य क्रय-शक्ति व्यक्त की जाती है। इसी में सभी प्रकार के हिसाब रखे जाते हैं और इसका प्रायः स्थायी नाम होता है , जैसे रुपया भारत की हिसाब की मुद्रा है, जबकि इसका रूप अनेक बार बदल चुका है। इस प्रकार की मुद्रा के लिए बेन्हम ने गणना की (Unit of Account) शब्द का प्रयोग किया है। साधारणतः हिसाब की मुद्रा तथा वास्तविक मुद्रा भिन्न नहीं होती हैं, परन्तु ऐसे कई उदाहरण हैं जबकि यह दोनों भिन्न भी रही हैं। सन् 1923 में जर्मनी में मार्क वास्तविक मुद्रा थी और गणना की मुद्रा फ्रेंक तथा स्विस डालर। भारत में दशमलव मुद्रा के चलन के पूर्व हिसाब पाइयों में रखा जाता था जबकि पाई वास्तविक चलन में नहीं थी। हिसाब की मुद्रा एक सैद्धान्तिक रूप है और वास्तविक मुद्रा व्यावहारिक रूप। व्यावहारिक रूप में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं जबकि सैद्धान्तिक रूप स्थिर रहता है।

2.3.2 वैधानिक मान्यता के आधार पर मुद्रा का वर्गीकरण (Classification of currency on the basis of legal recognition)

वैधानिक मान्यता के आधार पर मुद्रा दो प्रकार की होती है:

(क) विधिग्राह्य मुद्रा (Legal tender money) - यह वह मुद्रा होती है जिसे भुगतान के साधन के रूप में देश की सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त होती है और जिसे अस्वीकार करना एक अपराध समझा जाता है। विधिग्राह्य मुद्रा दो प्रकार की होती है - सीमित विधिग्राह्य , जिसे एक निश्चित सीमा के बाद स्वीकार करना अनिवार्य नहीं होता, जैसे भारत में एक पैसे से पच्चीस पैसे तक के सिक्कों को 25 रुपये से अधिक स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत , असीमित विधिग्राह्य मुद्रा वह है जिसे कोई भी व्यक्ति किसी भी सीमा तक एक ही बार में भुगतान में स्वीकार करने के लिए बाध्य होता है।

असीमित विधिग्राह्य भी दो प्रकार का होता है - (1) 'बहुविधिग्राह्य प्रणाली' (Multiple Legal tender money) के अन्तर्गत दो या दो से अधिक तरह के धातु के सिक्के प्रामाणिक (Standard) रूप में चलन में होते हैं और इनका असीमित मात्रा में भुगतान किया जा सकता है। (2) 'मिश्रित' अथवा 'तालिका' प्रणाली (Composite or Tabular System) जिसके अन्तर्गत मुद्रा को वस्तुओं के मूल्य-स्तर के आधार पर लेन-देन में स्वीकार किया जाता है।

(ख) ऐच्छिक मुद्रा (Optional money) - यह वह मुद्रा है जिसे साधारणतः स्वीकार किया जाता है , परन्तु इसके लिए कानून किसी को विवश नहीं करता। विभिन्न प्रकार के साखपत्र, चेक, बिल इत्यादि ऐच्छिक मुद्रा ही हैं। इस प्रकार की मुद्रा की स्वीकृति बहुत कुछ भुगतान करने वाले की बाजार में साख पर निर्भर करती है।

रॉबर्टसन ने वैधानिकता के आधार पर मुद्रा का वर्गीकरण करते हुए विधिग्राह्य को 'साधारण मुद्रा' (common money) तथा ऐच्छिक मुद्रा को 'बैंक मुद्रा' (bank money) कहा है। साधारणतया मुद्रा (M)में चलन अथवा करेन्सी (C) तथा माँग जमाराशियाँ (demand deposite DD) सम्मिलित होती हैं। इस प्रकार , M = C + DD। बैंक-मुद्रा या साख-मुद्रा बैंकों की जमा राशि से सम्बन्धित होती है जिसके आधार पर चेक लिखे जाते हैं। इस प्रकार की जमाराशि दो प्रकार की होती है , नकदी अथवा साधारण मुद्रा के रूप में ग्राहकों द्वारा बैंकों में जमा की गयी राशि नकद जमा (cash deposit) अथवा प्रारम्भिक मुद्रा (Primary deposite) कहलाती है। जब बैंक किसी ग्राहक को ऋण देता है। तो ऋण की रकम प्रायः नकद मुद्रा में न देकर उसके खाते में जमा कर देता है। इसे साख (Credit deposite) अथवा व्युत्पन्न जमा (Derivative deposit) कहा जाता है। व्युत्पन्न

जमा का आकार प्रारम्भिक जमा के आकार द्वारा ही निर्धारित होता है। बैंकों को प्राप्त होने वाली प्रारम्भिक जमा का एक भाग नकद कोष के रूप में रखकर शेष ऋण अथवा अग्रिम के रूप में दे दिया जाता है। बैंकों द्वारा दिये जाने वाले ऋण व्युत्पन्न जमा और फिर बैंक-मुद्रा का रूप ले लेते हैं , क्योंकि इन्हें चेक द्वारा निकाला जा सकता है। मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन की प्रक्रिया समझने के लिए वृहदावर्धक मुद्रा (High Powered Money) अथवा H की जानकारी आवश्यक है। H का निर्माण सरकार तथा केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता है। इसे जनता करेन्सी अथवा नकदी (C) के रूप में अपने पास रखती है तथा बैंक नकद कोषों (R) के रूप में रखते हैं। इस प्रकार, $H = C + R$। वृहदावर्धक मुद्रा को 'आरक्षित मुद्रा' (Reserve money) भी कहा जाता है, क्योंकि बैंक अपने पास आरक्षित कोष रखते हैं और इन्हीं के आधार पर माँग जमाराशियों (DD) का निर्माण किया जाता है। चूँकि बैंकों के आरक्षित कोष साख अथवा माँग जमाराशियों के निर्माण की गुणक प्रक्रिया (multiple creation) आधार होते हैं और R की प्राप्ति H के एक भाग के रूप में होती है इसलिए H को वृहदावर्धक शक्ति प्राप्त होती है। क्क् के निर्माण की गुणक प्रक्रिया का आधार होने के कारण H को 'आधार मुद्रा' (Base money) भी कहा जाता है। आरक्षित मुद्रा (H) की मात्रा को निर्धारित करने वाले घटक (Components) भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार ये है-

(1) जनता के पास नकद मुद्रा,

(2) रिजर्व बैंक के पास अन्य जमाराशियाँ,

(3) बैंकों के पास नकदी, तथा

(4) रिजर्व बैंक के पास बैंकों की जमाराशियाँ।

2.3.3 पदार्थ के आधार पर मुद्रा का वर्गीकरण (Classification of currency on the basis of substance)

पदार्थ के आधार पर मुद्रा को दो वर्गों में बाँटा जाता है - (1) धातु-मुद्रा (2) पत्र-मुद्रा। चूँकि आज के युग में पत्र-मुद्रा ही मुख्यतः प्रचलित है , अतएव इस वर्गीकरण का अब कोई विशेष महत्व नहीं रहा है।

(1) धातु-मुद्रा (Metalic money) - जब मुद्रा किसी धातु की बनी होती है तो उसे धातु-मुद्रा (Metalic money) कहा जाता है। विकास के आरम्भिक काल में आरम्भ में धातुओं के टुकड़े अथवा सलाखें ही मुद्रा के रूप में प्रयोग किये जाते थे। परन्तु इनको बार-बार तोलना और परखना पड़ता था और इनकी शुद्धता की भी कोई गारण्टी नहीं थी। इन असुविधाओं से बचने के लिए जब निश्चित वजन एवं मूल्य के टुकड़ों पर चिन्ह अंकित किये जाने लगे तो सिक्कों का चलन आरम्भ हुआ। धीरे-धीरे सिक्के ढालने की कला का विकास हुआ और सुन्दर , सुदृढ़ तथा समरूप सिक्के ढाले जाने लगे। सिक्के की निर्माण-विधि अथवा ढलाई को टंकण (Coinage) कहा जाता है। टंकण के मुख्य उद्देश्य होते हैं-

1) सिक्के को समरूपता दी जाय ताकि लोग इन्हें बिना कठिनाई के पहचान सकें।
2) सिक्कों को ऐसा रूप दिया जाय कि जाली सिक्के न बन पायें।
3) इनको काट कर अथवा गलाकर निकृष्ट न किया जा सके।
4) घटिया धातुओं के मिश्रण द्वारा सिक्कों को कठोर बनाना ताकि उनकी अधिक घिसावट न हो।
5) सिक्कों को कलापूर्ण रूप प्रदान करना।

टंकण-प्रणालियाँ - टंकण की अनेक प्रणालियों को दो प्रमुख वर्गों में रखा जा सकता है -स्वतन्त्र टंकण एवं सीमित टंकण।

(1) स्वतन्त्र टंकण (Free or Unlimited Coinage)- इस प्रणाली के अधीन जनता को यह स्वतन्त्रता होती है कि वह टकसाल को धातु देकर उसके सिक्के ढलवा ले अथवा इसके बदले में सिक्के प्राप्त कर ले। इंगलैण्ड में 1931 तक और भारत में 1893 तक यह प्रणाली प्रचलित थी। चूँकि इस प्रणाली का प्रयोग प्रामाणिक (standard) अथवा पूर्ण-काय (full bodied) सिक्कों के ढालने में ही होता था अतः पूर्ण-काय सिक्कों का प्रचलन समाप्त होने के साथ ही स्वतन्त्र टंकण प्रणाली भी समाप्त हो गयी।

स्वतन्त्र टंकण के तीन उपभेद हैं:

(अ) निःशुल्क टंकण (Gratuitous Coinage)- जिसके अधीन सिक्कों की ढलाई सरकार जनता से बिना कोई शुल्क लिये करती है। अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में काफी प्रामाणिक सिक्कों की ढलाई निःशुल्क की जाती है।

(ब) सशुल्क टंकण (Brassage) जिसमें सरकार जनता से सिक्कों की ढलाई-व्यय के बराबर शुल्क लेती है।

(स) सलाभ टंकण (Seigniorage) जिसमें सरकार ढलाई-व्यय से अधिक शुल्क लेकर लाभ अर्जित करती है। ढलाई-शुल्क या तो नकद मुद्रा में वसूल किया जाता है अथवा शुल्क के बराबर मूल्य की धातु असली धातु से निकालकर उसकी जगह घटिया धातु मिला दी जाती है। जिस दर पर सरकार धातु के बदले में सिक्के देती है उसे धातु का 'टकसाली मूल्य' (Mint price) कहते हैं।

(2) सीमित टंकण (Limited Coinage) - इस प्रणाली के अधीन जनता को धातु के बदले सिक्के ढलवाने का अधिकार नहीं होता। सिक्कों के निर्माण की मात्रा स्वयं सरकार द्वारा निश्चित की जाती है , और फिर आवश्यकतानुसार सरकार धातुओं को धातु-बाजारों से खरीदकर सिक्के ढालती है। भारत में 1893 के पश्चात् हरशल समिति (Herschel committee) की सिफारिश पर टंकण सीमित कर दिया गया था। आधुनिक काल में सभी देशों में टंकण इसी प्रणाली के अनुसार होता है। स्वतन्त्र टंकण का केवल ऐतिहासिक महत्व रह गया है।

सिक्कों की निकृष्टता (Debasement of coins) - जब टंकण कानून में कोई संशोधन किये बिना सरकार सिक्कों की तोल, शुद्धता अथवा दोनों को ही कम करके सिक्के का आन्तरिक मूल्य (intrinsic value) कम कर देती है तो इस क्रिया को सिक्कों की 'निकृष्टता' (Debasement) और उन सिक्कों को 'निकृष्ट सिक्के' कहा जाता है। उदाहरणतः सन् 1940 में भारत सरकार ने रुपये में विशुद्ध चाँदी की मात्रा को घटाकर आधा कर दिया और उसके स्थान पर गिलट मिला दिया। जिससे रुपया निकृष्ट सिक्का हो गया।

मुद्रा के पदार्थ के आधार पर वर्गीकरण (Classification based on substance of Money)

मुद्रा का एक अति सरल वर्गीकरण , जिस वस्तु की वह बनी होती है उसके आधार पर किया जाता है। इस आधार पर मुद्रा को तीन मुख्य भागों में बाँटा जाता है - प्रथम , पदार्थ मुद्रा (Commodity money), द्वितीय, धात्विक मुद्रा (Metalic money) और तीसरी, पत्र मुद्रा (Paper money) । इनमें से प्रत्येक अगला, वर्ग मुद्रा के विकास के उच्चतर स्तर को इंगित करता है। वास्तव में, इस आधार पर मुद्रा का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया जाता है-

(क) वस्तु मुद्रा या पदार्थ मुद्रा (Commodity money) - प्राचीन काल में धात्विक सिक्कों के परिचलन से पूर्व विभिन्न जन-समूहों में अनेक प्रकार की वस्तुओं एवं पदार्थों को मुद्रा का स्थान दिया जाता था। साधारणतः हर

वर्ग किसी ऐसे पदार्थ को मुद्रा मान लेता था जो विशेष लोकप्रिय हो। इस प्रकार समय-समय पर कौड़ी , शंख, चमड़ा, हाथीदांत, अनाज, तम्बाकू, घरेलू पशु मवेशी , आभूषण जैसे अनेक पदार्थों को मुद्रा कहलाने का श्रेय मिल चुका है। यों , आज भी हो सकता है कि अत्यंत पिछड़े समाज में वस्तु-मुद्रा का चजन हो , परंतु मुद्रा के व्यापक प्रसंग में ऐसी मुद्रा का अब केवल ऐतिहासिक महत्त्व रह गया है और आधुनिक अर्थव्यवस्था में इसकी महत्ता नगण्य है।

(ख) धात्विक-मुद्रा (Metalic money)- जब मुद्रा किसी धातु की बनी होती है तो उसे धात्विक-मुद्रा कहा जाता है। अतः धात्विक-मुद्रा वह मुद्रा है जिसमें किसी धातु (जैसे सोना , चाँदी के बने सिक्के) प्रचलन में रहते हैं। धातु-मुद्रा को दो भागों में बांटा जाता है: (अ) धातु-मान (Metalic standard) (ब) धातु चलन

(अ) धातु-मान से आशय उन नियमों या व्यवस्थाओं से है जिनके अनुसार प्रामाणिक एवं अन्य मुद्राओं का प्रचलन होता है।

(ब) धातु-चलन से तात्पर्य उन धातु-मुद्राओं से होता है जो वस्तुओं एवं सेवाओं के भुगतान में विनियम की जाती हैं। धातु मान के तीन रूप हैं -

(1) एक धातु मान (Mono Metalism)

(2) द्वि धातु मान (Bi-Metalism) और

(3) मिश्रित-मान (Mixed Metalism)

धातु-चलन के तीन रूप हैं:

(1) प्रामाणिक अथवा पूर्णकाय सिक्के (Standard or full bodied)- यह देश की प्रधान मुद्रा होती है। इसका अंकित मूल्य एवं वास्तविक मूल्य दोनों बराबर होता है। यह असीमित विधि ग्राह्य होती है। संक्षेप में, इस मुद्रा की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं-

(अ) यह देश का प्रधान सिक्का होता है और विनिमय माध्यम के साथ-साथ लेखे की इकाई का कार्य करता है।

(ब) इसका अंकित मूल्य (face value) एवं वास्तविक मूल्य (real value) बराबर होता है।

(स) यह असीमित विधिग्राह्य (Unlimited Legal Tender) होता है।

(द) इसका स्वतंत्र टंकण होता है, अर्थात् कोई भी व्यक्ति जब चाहे तब धातु देकर सिक्कों को सरकारी टकसाल में ढलवा सकता है। सन् 1931 के पहले जब इंग्लैण्ड में प्रचलित सावरेन (Soverign) तथा 1893 तक भारत में प्रचलित चाँदी का रुपया था, तब वह प्रामाणिक सिक्का था।

प्रामाणिक सिक्कों में अनेक गुण थे, जैसे

- इनका अंकित मूल्य और धातु मूल्य बराबर होने के कारण इनमें जनता का पूर्ण विश्वास था।
- पूर्णकाय होने के कारण ये क्रय-शक्ति के संचय के उत्तम साधन थे।
- धातुओं की मात्रा सीमित होने के कारण इनकी अत्यधिक निकासी अथवा कीमत-स्फीति का भय नहीं रहता था।
- विदेशों में भुगतान में इन्हें स्वीकार कर लिया जाता था।

प्रामाणिक सिक्कों में अनेक अवगुण भी थे, जैसे-

- इनमें बहुमूल्य धातुओं का अपव्यय होता था और यह खर्चीली प्रणाली थी।
- इनमें लोच का अभाव था अर्थात् मुद्रा की माँग बढ़ने पर इनकी पूर्ति नहीं बढ़ाई जा सकती थी और
- इनमें बहुमूल्य धातुएँ अनावश्यक रूप से फँसी रहती थीं।

(2) सांकेतिक अथवा प्रतीक सिक्के (Token coin)- ये देश की प्रधान मुद्रा के सहायक के रूप में चलते हैं।इस सिक्के की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित होती है-

(अ) इसका अंकित मूल्य इसके वास्तविक मूल्य से अधिक होता है।

(ब) इसकी ढलाई स्वतन्त्र नहीं होती।

(स) यह सीमित विधि ग्राह्य होती है।

(द) यह प्रधान मुद्रा का सहायक होता है।

सांकेतिक सिक्कों में अनेक गुण हैं, जैसे

- इसमें धातु की बचत होती है,
- इनमें लोच होती है,
- इनकी निकासी अधिक हो सकती है, कारण यह है कि ये सुलभ धातुओं के बने होते हैं,
- इनका प्रचलन देश की सीमा में ही हो सकता है।

साथ ही इनमें अनेक अवगुण भी हैं, जैसे

- ये प्रामाणिक सिक्कों की तरह विश्वसनीय नहीं होते,
- ये क्रय-शक्ति के संचय के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं।
- क्रय-शक्ति सुलभ धातुओं की बनी होने के कारण इनकी अत्यधिक निकासी हो सकती है।
- इनका प्रचलन देश की सीमा के अन्दर ही होता है।

आधुनिक युग में संसार के सभी देशों में सांकेतिक सिक्के ही प्रचलन में हैं , क्योंकि किसी भी मुद्रा में शुद्ध धातु की मात्रा पर्याप्त नहीं है, साथ-ही-साथ सिक्कों का टंकण भी स्वतंत्र नहीं है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि हमारे देश में भारतीय रुपये में कुछ गुण सांकेतिक सिक्कों के तथा कुछ गुण प्रामाणिक सिक्कों के पाये जाते हैं। इसलिए भारतीय रुपया न तो पूर्णरूपेण प्रामाणिक है और न सांकेतिक ही। इसलिये भारतीय रुपये को सांकेतिक-प्रामाणिक-सिक्का (Token standard coin) तथा भारत में मौद्रिक मान को सांकेतिक मान (Token coin) कहा जाता है।

(3) गौण सिक्के (Minor coin) इस प्रकार के सिक्के रेज़गारी की सुविधा के लिए निकाले जाते हैं। इन सिक्कों की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- ये कम मूल्य के होते हैं।
- इनकी निकासी कम कीमत की वस्तुओं के विनिमय को सुविधाजनक बनाने के लिए की जाती है।
- ये सांकेतिक सिक्के होते हैं।
- इनका प्रामाणिक मुद्रा से एक अनुपात होता है।
- इनकी ढलाई स्वतंत्र नहीं होती।
- ये सीमित विधि ग्राह्य होते हैं।

(ग) पत्र-मुद्रा (Paper money)

पत्र-मुद्रा से आशय सरकार या केन्द्रीय बैंक-द्वारा निर्गमित काग़ज़ी नोटों से है , जो एक लिखित राशि देने का वचन देते है। क्राउथर के अनुसार पत्र मुद्रा चार अवस्थाओं से होकर गुजरी है- प्रथम अवस्था में जमा की हुई रकम के बदले में प्राप्त हुए प्रमाण पत्रों का प्रयोग आंरभ हुआ। दूसरी अवस्था में बैंकों द्वारा नोट जारी किये जाने लगे। तीसरी अवस्था में बैंकों ने अपनी जमा से अधिक नोट छापने शुरू किये और चौथी अवस्था वर्तमान व्यवस्था की है, जबकि नोट छापने का एकधिकार या तो सरकार को है फिर देश के केन्द्रीय बैंक अथवा दोनों को है।

वास्तव में, वर्तमान युग पत्र-मुद्रा का युग है। आज संसार के सभी देशों में पत्र-मुद्रा प्रचलित है जिसके अन्तर्गत सरकार या केन्द्रीय बैंक निर्धारित आकार के काग़ज़ के टुकड़ों पर अपनी मुहर अंकित करके उन्हें चलन में डालते हैं। इन नोटों के पीछे सोना या चाँदी एवं सरकारी प्रतिभूतियाँ धरोहर के रूप में रखी जाती हैं।

पत्र-मुद्रा को निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जाता है।

(1) प्रतिनिधि पत्र-मुद्रा (Representative Paper money) - इस मुद्रा के पीछे नोटों को निर्गमित करने वाली संस्था शत-प्रतिशत सोना तथा चाँदी कोष के रूप में रखती है।

उदाहरणार्थ, यदि 1,00,000 रुपये की पत्र-मुद्राएँ चलन में हैं , तो उतने ही मूल्य का सोना या चाँदी सरकारी कोष में रखा जायेगा। अमेरिकी सरकार का स्वर्ण एवं रजत प्रमाण-पत्र इसके उदाहरण हैं।

(2) परिवर्तनशील पत्र-मुद्रा (Convertible Paper money)- इस प्रकार की मुद्रा के पीछे शत-प्रतिशत धातु कोष में रखी जाती है और इनको निर्गमित करने वाली संस्था इनके बदले सोना या चाँदी देने की गारण्टी देती है। इस प्रकार की परिवर्तनशीलता की गारण्टी के फलस्वरूप जनता का इसमें पूर्ण विश्वास बना रहता है।

(3) अपरिवर्तनशील पत्र-मुद्रा (Inconvertible Paper money)- इसके पीछे प्रायः स्वर्ण या अन्य मूल्यवान वस्तुओं का कुछ कोष रखा जाता है। लेकिन इस धातु में परिवर्तनशीलता की गारन्टी नहीं दी जाती अर्थात् नोट निर्गमित करने वाली संस्था नोटों के बदले स्वर्ण या अन्य बहुमूल्य धातुओं को देने के लिए वचन बद्ध नहीं होती।

(4) प्रादिष्ट पत्र मुद्रा (Fiat Paper money)- कभी-कभी युद्ध अथवा अन्य आकस्मिक संकट-काल में सरकार अपने बढ़े हुए व्यय की पूर्ति अपनी आय के स्त्रोतों से कर सकने में असमर्थ हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में सरकार आवश्यक व्यय की पूर्ति नये नोट छापकर करती है। इन नोटों के पीछे कोई मूल्यवान धातु या सरकारी प्रतिभूतियाँ नहीं रखी जातीं हैं। यह मवदे केवल सरकार की साख पर चलती है। इसके बदले सरकार किसी प्रकार का मूल्य देने की गारण्टी नहीं देती। इसी पत्र-मुद्रा को प्रादिष्ट मुद्रा कहते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रादिष्ट मुद्रा बहुत कम खर्चीली है तथा सरकार के लिए संकट-काल में बहुत सहायक होती है। इसीलिए पॉल इन्जिंग तथा एल्विन एच. हेन्सन ने मुद्रा के इसी कार्य को क्रान्तिकारी या गतिशील कार्य बताया है। लेकिन प्रादिष्ट मुद्रा के प्रति जनता का विश्वास बहुत कम होता है तथा इससे कीमत-स्फीति हो जाने का भय बना रहता है।

अतः प्रादिष्ट मुद्रा से सावधान रहना आवश्यक है। पिछले दशक में दक्षिण अमेरिका तथा दुनिया के अन्य देशों में प्रादिष्ट मुद्रा के कारण मुद्रा -स्फीति उत्पन्न हुई है जिससे इन देशों की अर्थव्यवस्थाओं को गहरा धक्का लगा है। लारेल हैरिश का यह कथन है कि *"मुद्रा कुछ वायुयान जैसी है - क्रियाशील होने पर शानदार , विखण्डित होने पर दुःखदायी और नष्ट होने पर संकट उत्पन्न करने वाली है "* ,प्रादिष्ट मुद्रा के लिए यह कथन सर्वथा उपयुक्त है।

2.3.4 प्लास्टिक मुद्रा (Plastic Money)

आधुनिक बैंकिंग में भुगतान के लिये प्रयोग किये जाने वाले साधन के रूप में डेबिट कार्ड , क्रेडिट कार्ड, ऑटोमैटिक टेलरिंग मशीन आदि का प्रयोग ग्राहकों द्वारा किया जाता है यह कार्ड प्लास्टिक का बना हुआ होता है जिस कारण इसे प्लास्टिक मुद्रा कहा जाता है। इस कार्ड पर 18 अंका का कोड नम्बर अंकित होता है जिसे ए. टी. एम. (आटो मैटिक टेलरिंग मशीन) साफ्टवेयर के माध्यम से ग्राहक के द्वारा दिये गये आदेश को स्वीकृत करके उसका अनुपालन कर देता है। यह आदेश भुगतान के सन्दर्भ में , शेष राशि की जानकारी करने के सन्दर्भ , में एवं संक्षिप्त में लेन-देनों का विवरण भी प्रदान कर देता है। इस प्लास्टिक मुद्रा का प्रयोग हवाई जहाज यात्रा , टिकट लेन-देन, बिलों का भुगतान करने एवं माल का लेन-देन करने में किया जाता है। इस कार्ड की बढ़ती लोकप्रियता के कारण ही इसे प्लास्टिक मुद्रा कहते है। यद्यपि प्लास्टिक मुद्रा भुगतान करने का सबसे सरल एवं

सुविधाजनक साधन है लेकिन इसके गायब हो जाने, चोरी हो जाने तथा कोड नंबर की जानकारी अन्य व्यक्तियों को पता हो जाने की स्थिति में अत्यधिक खतरा बढ़ जाता है क्योंकि इस मुद्रा का प्रयोग अन्य व्यक्ति आसानी से कर सकता है अतः इसके प्रयोग में सुरक्षा एवं सावधानी बरतनी चाहिये।

2.4 सारांश (Summary)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि मुद्रा की विभिन्न प्रकार कौन-कौन से है तथा इसके कार्यो के आधार पर इसका वर्गीकरण किस प्रकार किया जा सकता है।

मुद्रा का वर्गीकरण को तीन भागों में किया जाता है- प्रकृति के आधार पर , वैधानिक मान्यता के आधार पर , तथा पदार्थ के आधार पर ।

2.5 शब्दाबली (Glossary)

- **वस्तु विनिमय (Barter)** - वस्तुओं के बदले में वस्तुओं का आदा-प्रदान।
- **बैंक मुद्रा (Bank Money)** - व्यापारिक बैंकों द्वारा सृजित माँग जमा।
- **बाह्य मुद्रा (External Money)** - सरकारी ऋण पर आधारित मुद्रा।
- **आन्तरिक मुद्रा (Internal Money)** - आर्थिक इकाइयों के ऋण पर आधारित मुद्रा।
- **अर्द्ध मुद्रा (Half Money)** - ऐसी परिसम्पतियॉं , जो तरलता का गुण रहते हुये भी स्पष्ट रूप में मुद्रा नहीं कही जा सकती।

2.6 वस्तुनिष्ठ प्रश्न व उनके उत्तर (Objective questions and their answers)

1. मुद्रा का सामान्य अर्थ है।

(क) करेन्सी

(ख) करेन्सी तथा बैंको की सम्पूर्ण जमा राशियॉं

(ग) करेन्सी तथा मंाग जमा राशियॉं

(घ) सम्पूर्ण चलनिधि

2. मुद्रा का अनिवार्य कार्य क्या है-

(क) मूल्य मापन

(ख) मूल्य संचय

(ग) मूल्य हस्तान्तरण

(घ) साख व्यवस्था का आधार

3. मुद्रा एक अच्छा..........................है, किन्तु बुरा.......................।

4. नैप अर्थशास्त्री ने मुद्रा की............................परिभाषा का प्रतिपादन किया।

5. मूल्य मापक मुद्रा का............................कार्य है।

6. मूल्य संचय मुद्रा का..............................कार्य है।

7. वर्तमान समय में मुद्रा अर्थ विज्ञान की धुरी है। सही/गलत

8. राबर्टसन ने मुद्रा के लिये संकुचित दृष्टिकोण की परिभाषा दी। सही/गलत

उत्तर- 1.(ख) 2.(क) 3.सेवक, स्वामी 4.वैधानिक 5.प्राथमिक 6.सहायक 7.सही 8.सही

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- डा0 जे0सी0 पन्त एवं जे0पी0 मिश्रा - अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
- डा0 टी0टी0 सेठी - मौद्रिक अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
- डा0 टी0टी0 सेठी - समष्टि अर्थशास्त्र
- डा0 एम एल झिंगन - मौदिक अर्थशास्त्र

2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful/useful study material)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Macro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Ahuja, H.L. (2010) ***Principles of Macro Economics***, S. Chand and Company Ltd. New Delhi.
- Colander, D. C., (2008) ***Economics***, McGraw Hill Education, New Delhi.
- Mishra, S.K. and V.K. Puri (2003) ***Modern Macro Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay question)

1. मुद्रा का वर्गीकरण कितने प्रकार से किया जा सकता हैं?
2. प्लास्टिक मुद्रा क्या हैं?

इकाई - 3 मौद्रिकमान, स्वर्णमान एवं पत्र मुद्रामान (Monetary standard, gold standard and paper currency standard)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

3.2 उद्देश्य (Objectives)

3.3 मौद्रिकमान (Monetary Standard)

- 3.3.1 मौद्रिकमान का आशय (Meaning of monetary standard)
- 3.3.2 मौद्रिकमान का वर्गीकरण (Classification of monetary standard)
  - 3.3.2.1 एक धातुमान (Monometallic Standard)
  - 3.3.2.2 द्वि धातुमान (Bimetallic Standard)
  - 3.3.2.3 बहु धातुमान (Multi metallic Standard)
  - 3.3.2.4 मिश्रित धातुमान (Mixed Metallic Standard)

3.4 स्वर्णमान का आशय (Meaning of Gold Standard)

- 3.4.1 स्वर्णमान के गुण (Merits of Gold Standard)
- 3.4.2 स्वर्णमान के दोष (Demerits of Gold Standard)

3.5 पत्र मुद्रामान से आशय (Meaning of Paper Currency Standard)

- 3.5.1 पत्र मुद्रामान के गुण (Merits of Paper Currency Standard)
- 3.5.2 पत्र मुद्रामान के दोष (Demerits of Paper Currency Standard)

3.6 सारांश (Summary)

3.7 शब्दाबली (Glossary)

3.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्न व उनके उत्तर (Objective Type Questions and their Answers)

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful/Useful Reading Material)

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

मुद्रा की स्वयं कोई उपयोगिता नहीं होती हैं। किन्तु मनुष्य को अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु जिन वस्तुओं एवं सेवाओं की आवश्यकता होती हैं उन्हें मुद्रा के बदले में प्राप्त किया जा सकता हैं। मुद्रा समाज में अनेक रूपों में प्रचलित हैं यथा वास्तविक मुद्रा एवं हिसाब की मुद्रा , विधि ग्राह्य मुद्रा और ऐच्छिक मुद्रा , धातु मुद्रा तथा पत्र मुद्रा आदि। मुद्रा पूर्ति के सामान्यतया जाने माने माप में करेंसी, शुद्ध मांग निक्षेप, भारत के रिजर्व बैंक के पास अन्य निक्षेप शामिल किये जाते हैं।

3.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- ✓ मुद्रा के वर्गीकरण से अवगत हो सकेंगे।
- ✓ मुद्रा को वर्गीकृत करने के लिये विभिन्न आधारों को समझ सकेंगे।
- ✓ मुद्रा की विभिन्न अवधारणाओं से अवगत हो सकेंगे।

3.3 मौद्रिकमान (Monetary Standard)

मौद्रिकमान का तात्पर्य एक व्यवस्था से हैं जिसके अन्तर्गत देश की मुद्रा का मूल्य किसी मूल्यवान वस्तु की इकाई में निश्चित कर दिया जाता हैं और उसे स्थिर रखने का प्रयत्न किया जाता हैं। उदाहरण के लिए , यदि कोई देश अपनी मुद्रा का मूल्य स्वर्ण में परिभाषित कर दे तो वह स्वर्णमान पर आधरित होगी।

3.3.1 मौद्रिकमान का आशय (Meaning of monetary standard)

मौद्रिकमान किसी भी देश की सम्पूर्ण मौद्रिक व्यवस्था को कहते हैं जिसके अन्तर्गत देश में चलने वाली मुद्राओं का प्रकार, उनकी पीछे रखी गयी कोषनिधि , उनकी परिवर्तनशीलता तथा उनसे सम्बन्धित समस्याओं की जानकारी सम्मिलित हैं।

3.3.2 मौद्रिकमान का वर्गीकरण (Classification of monetary standard)

मौद्रिकमान को दो वर्गों में बांटा जाता हैं धातुमान व पत्रमान।

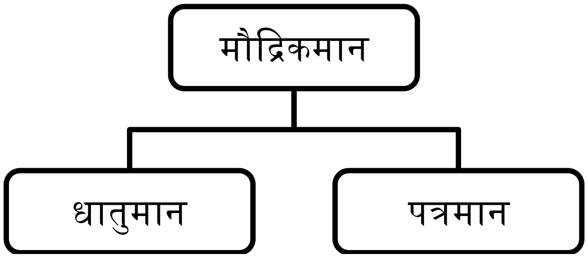

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता हैं कि धातुमान के अर्न्तगत देश में धातु की मुद्राएँ ही चलती हैं और सम्पूर्ण मुद्रा व्यवस्था स्वर्ण या चाँदी की धातु पर आधरित होती हैं। पत्रमान में कागज के नोट चलते हैं और सहायक रुप में छोटी मुद्राएँ प्रचलित होती हैं। इसके बारे में आप विस्तार से इस इकाई के अन्तिम खण्ड में जानेगें। आइये पहले धातुमान को जाननें का प्रयास करतें हैं।

धातुमान को भी चार वर्गों में बांटा जाता हैं।

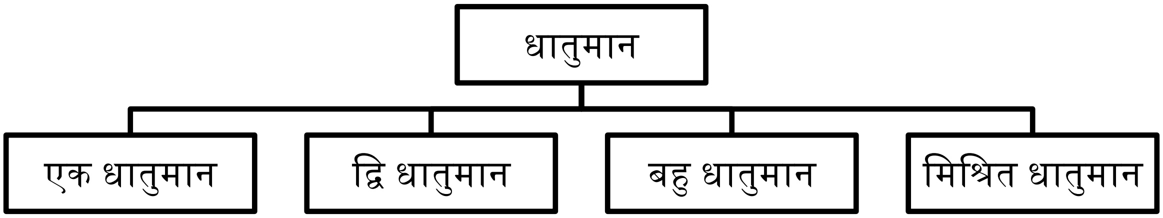

3.3.2.1 एक धातुमान (Monometallic Standard)

एक धातुमान से आशय एवं इसकी विशेषताएँ (Meaning ofcharacteristics of Mono-Metalism)-

एक धातुमान वह मौद्रिक प्रणाली हैं जिसमें किसी देश में एक ही धातु , स्वर्ण अथवा चाँदी के सिक्के चलन में रहते हैं जो असीमित विधिग्राह्य होते हैं एवं उनका स्वतंत्र टंकण होता हैं। एक धातुमान की विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1. इसमें एक धातु की प्रधान मुद्रा चलन में होती हैं। प्रधान मुद्रा प्रायः सोने या चाँदी की होती हैं तथा सहायक मुद्राएँ हल्की धातु की बनी होती हैं।
2. उस धातु की मुद्रा का स्वतंत्र टंकण होता हैं।
3. उस धातु की मुद्राएँ असीमित विधिग्राह्य होती हैं।

व्यवहार में यदि स्वर्ण मुद्राएँ चलन में होती हों तो स्वर्णमान और रजत मुद्राएँ प्रचलित हों तो मुद्रा व्यवस्था को रजतमान के नाम से पुकारा जाता हैं।

एक धातुमान के गुण (Merits of Mono-Metalism)

एक धातुमान व्यवस्था सोना या चाँदी की मुद्रा के रुप में संसार के विभिन्न देशों में बहुत समय तक प्रचलित रहती हैं। इस व्यवस्था में निम्नलिखित गुण थे:

1. सुविधजनक (Convenient) - एक धातुमान व्यवस्था में सोना या चाँदी के प्रधान सिक्के चलन में होते हैं जिनके द्वारा लेन-देन करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

2. जनता का विश्वास (Public confidence) - एक धातुमान में किसी मूल्यवान धातु के सिक्के चलन में रहते हैं जिनका धात्विक मूल्य अंकित मूल्य से कम नहीं होता। अतः इस व्यवस्था में जनता का मुद्रा में विश्वास रहता हैं।

3. मुद्रा प्रसार का भय नहीं (No fear of currency expansion) - धातु की मुद्राएँ चलन में रहने के कारण इस व्यवस्था में बहुत अधिक मुद्रा चलन में डालना सम्भव नहीं होता। अतः मुद्रा प्रसार होने का भय नहीं रहता।

4. ग्रेशम का नियम सीमित रुप से लागू (Limited applicability of Gresham's Law) - एक धातुमान व्यवस्था में एक धातु के प्रायः समान सिक्के चलन में रहते हैं। अतः सभी सिक्के चलन में बने रहते हैं और ग्रेशम का नियम लागू होने का भय नहीं होता। एक धातुमान के अन्तर्गत यदि एक साथ घटिया और बढ़िया सिक्के चलन में रहते हैं तो ग्रेशम का नियम अवश्य लागू हो जाता हैं।

5. विदेशी भुगतान की सुविधा (Foreign Payment Facility) - एक धातुमान व्यवस्था के अन्तर्गत विदेशी भुगतान करना अत्यन्त सरल होता हैं जिससे विदेशी व्यापार में सरलता रहती हैं।

एक धातुमान के दोष (Demerits of Mono-Metalism)

उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त एक धातुमान व्यवस्था में निम्नलिखित दोष हैं -

1. महंगी व्यवस्था (Costly System) - आधुनिक युग में कोई भी मुद्रा व्यवस्था , जिनमें सोने या चाँदी की आवश्यकता हो, नहीं अपनायी जा सकती , क्योंकि संसार के अधिकांश देश विकासशील हैं जिनके पास पर्याप्त मात्रा में न तो सोना हैं न चाँदी।

2. लोच का अभाव (Lack of flexibility) - एक धातुमान व्यवस्था में लोच का दो कारणों से अभाव होता हैं। प्रथम इसमें एक ही धातु के सिक्के चलन में रहते हैं। अतः मुद्रा ढालने में उस धातु की कमी आ सकती हैं। इसलिए मुद्रा की मात्रा में वृद्धि करना कठिन होता हैं और दूसरे , संसार के अधिकांश देशों के पास एक धातु भी पर्याप्त मात्रा में नहीं हैं जिसे धातु मुद्रा द्वारा पूरा करना सम्भव नहीं हैं।

3. वस्तु मूल्यों के उतार-चढ़ाव (Changes in Price level) - जिस मुद्रा प्रणाली में धातु का प्रयोग होता हैं उसकी सबसे बड़ी कमी यह होती हैं कि मुद्रा के मूल्य में उतार-चढ़ाव होने का भय बना रहता हैं क्योंकि धातु की मात्रा में कमी या वृद्धि हो सकती हैं।

3.3.2.2 द्वि धातुमान (Bimetallic Standard)

द्वि धातुमान से आशय एवं इसकी विशेषताएँ (meaning and characteristics of Bi - metalism)

जब किसी देश में दो धातुओं सामान्यतः सोना और चाँदी , के प्रामाणिक सिक्के एक साथ चलन में रहते हैं तो ऐसी व्यवस्था को द्वि-धातुमान कहा जाता हैं। इसकी विशेषताएँ निम्न हैं-

1. इसमें दो धातुओं, सोना और चाँदी, की प्रधान मुद्राएँ चलन में रहती हैं।
2. इसमें दोनों ही मुद्राओं की ढलाई स्वतंत्र होती हैं।
3. यह दोनों मुद्राएँ असीमित विधिग्राह्य होती हैं।
4. इन दोनों मुद्राओं के लिखित तथा धत्विक मूल्यों में समानता होती हैं। अर्थात् दोनों सिक्के पूर्णकाय मुद्रा होते हैं।
5. दोनों धातुओं के सिक्कों को एक-दूसरे से बदलेने की विनिमय दर सरकार द्वारा पहले से ही घोषित कर दी जाती हैं।
6. द्वि-धातुमान व्यवस्था में सोने और चाँदी का आयात और निर्यात स्वतंत्रा होता हैं।

द्वि-धातुमान के गुण (Merits of Bi - Metalism)

द्वि-धातुमान व्यवस्था अनेक दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण मानी गयी हैं। इस व्यवस्था में निम्नलिखित गुण थे

1. विदेशी भुगतानों में सुविधा (Convenience in Foreign Payments) - चूँकि द्वि-धातुमान वाले देश में सोने व चाँदी दोनों ही प्रकार की धातुओं के प्रामाणिक सिक्के प्रचलन में होते हैं , ऐसे देश दोनों ही प्रकार के , अर्थात् स्वर्णमान अथवा रजतमान मे भुगतान कर सकता हैं।

2. विनिमय दरें निर्धारण (Exchange Rate Assessment) - इस व्यवस्था के अन्तर्गत स्वर्ण अथवा रजतमान अपनाने वाले दोनों ही वर्ग के देशों की मुद्रा विनिमय दरें ज्ञात करने में बड़ी सरलता रहती हैं। अतः मुद्राओं में मूल्य के अनुसार पारस्परिक अनुपात निकाल लिया जाता हैं और भुगतान कर दिया जाता हैं।

3. धातुओं की क्षतिपूर्ति (Metal Compensation) - द्वि-धातुमान में धातु की कमी के कारण मुद्रा की मात्रा में कमी आने की आशंका नहीं रहती , क्योंकि दो धातुओं की मुद्राएँ चलन में रहती हैं। अतः यदि एक की कमी आ जाये तो दूसरी से उसकी पूर्ति की जा सकती हैं।

4. मूल्यों में स्थायित्व (Stability in Prices) - जब द्वि-धातुमान अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनाया जाता हैं तो दो धातुओं अथवा स्वर्ण अथवा चाँदी में से किसी एक की कमी को दूसरी धातु के उत्पादन से पूरा किया जा सकता हैं और उनके मूल्य में स्थिरता लायी जा सकती हैं।

5. धातुओं के मूल्यों में स्थायित्व (Stability in Prices of Metal) - द्वि-धातुमान का पांचवां गुण यह हैं कि स्वर्ण तथा चाँदी के पारस्परिक मूल्यों में भी उतार-चढ़ाव कम होते हैं।

इस प्रकार द्वि-धातुमान धातु मूल्य तथा मुद्राओं की विनिमय दर स्थिर रखने तथा विदेशी भुगतानों को सरल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान कर सकता हैं , परन्तु यह सारे गुण प्रायः व्यवहार की कसौटी पर खरे नहीं उतरते।

द्वि-धातुमान के दोष (Demerits of Bi - Metalism)

द्वि-धातुमान व्यवस्था में निम्नलिखित दोष रहे हैं -

1. ग्रेशम का नियम लागू होना (Application of Gresham's law) - द्वि-धातुमान का सबसे महत्वपूर्ण दोष ग्रेशम के नियम का लागू होना हैं। यह नियम बताता हैं कि अन्य बातें समान रहने पर जब किसी देश में एक ही साथ दो या दो से अधिक धातुओं की मुद्राएँ चलन में रहती हैं , तो बुरी मुद्रा अच्छी मुद्रा को चलन से बाहर निकाल देती हैं।'

2. खर्चीला (Expensive) - द्वि-धातुमान भी स्वर्णमान की तरह खर्चीला हैं , क्योंकि मुद्राओं के टंकण के लिए सोने या चाँदी की खानें खोदने में पूंजी तथा श्रम का विनियोजन करना पड़ता हैं और धातु मुद्रा चलन में रहने के कारण दोनो धातुओं की अनावश्यक रुप से घिसावट होती हैं।

3. क्षतिपूर्ति नियम लागू न होना (Compensation Rule not Applicable) - द्वि-धातुमान का क्षतिपूरक नियम यह हैं कि एक धातु के मूल्य में वृद्धि होने अथवा उसकी मात्रा में कमी आने से दूसरी धातु से मुद्रा की आवश्यकता की पूर्ति होती रहती हैं, यह सिद्धान्त व्यवहार में खरा नहीं उतरता।

4. सट्टेबाजी में वृद्धि (Increase in Speculation) - जब स्वर्ण अथवा चाँदी के मूल्य में कमी या वृद्धि हो जाती हैं तो इन धातुओं में तीव्र गति से सट्टेबाजी होने लगती हैं।

5. अधिकृत तथा बाजार दरों में भिन्नता (Difference between the Authorised and Market Rates) - द्वि-धातुमान बनाये रखने के लिए स्वर्ण और चाँदी की मुद्राओं की जो दरें सरकार द्वारा निश्चित की जाती हैं उन्हें बनाये रखना आवश्यक होता हैं, परन्तु व्यवहार में यह बहुत कठिन होता हैं।

3.3.2.3 बहु धातुमान (Multi metallic Standard)

बहु धातुमान से आशय एवं इसकी विशेषताएँ (Meaning and characteristics of multi - metalism) -

बहु-धातुमान के अन्तर्गत कई धातुओं का एक ही साथ मूल्यमान के रुप में प्रयोग किया जाता हैं। इसमें सभी धातुओं के सिक्कों का टंकण स्वतंत्र ढलाई प्रणाली के अन्तर्गत किया जाता हैं। सभी सिक्के प्रामाणिक होने के साथ ही असीमित विधिग्राह्य भी होते हैं। इन सब सिक्कों के बीच विनिमय दर सरकार द्वारा निश्चित कर दी जाती हैं।

बहु-धातुमान की सबसे बड़ी समस्या यह हैं कि इसमें सोना और चांदी के अतिरिक्त अन्य कौन-सी धातुओं को प्रधान मुद्रा के लिए चुना जाये। तांबा , लोहा, जस्ता आदि बहुत सस्ती धातुएं हैं। अतः उनकी सहायक मुद्रा बनाना ही अधिक युक्तिसंगत हैं। दूसरी समस्या यह हैं कि बहु-धातुमान के अन्तर्गत विभिन्न मुद्राओं की पारस्परिक विनिमय दर बनाये रखना और कठिन होगा, क्योंकि द्वि-धातुमान में ही ग्रेशम का नियम

लागू हो जाता हैं, फिर बहु-धातुमान में ग्रेशम के नियम को कैसे रोका जा सकेगा? इन कठिनाईयों के कारण ही सम्भवतः संसार के किसी भी देश में बहु-धातुमान का प्रयोग नहीं किया जाये।

3.3.2.4 मिश्रित धातुमान (Mixed Metallic Standard)

मिश्रित धातुमान से आशय एवं इसकी विशेषताएँ (Meaning and characteristics of symmetalism) -

सबसे पहले प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मार्शल ने 1881 में मिश्रित धातुमान का सुझाव प्रस्तुत किया। जैसा कि हमने पिछले पृष्ठों में विवेचन किया हैं, द्वि-धातुमान की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि उसमें शीघ्र ही ग्रेशम का नियम लागू हो जाता था। मार्शल ऐसा मान लागू करने के पक्ष में थे जिसमें द्वि-धातुमान के सारे गुण विद्यमान हों, किन्तु उस पर ग्रेशम का नियम लागू न हो। इसे दृष्टि में रखकर मार्शल ने मिश्रित धातुमान का विचार रखा जिसकी निम्न विशेषताएँ थी-

1. सोने और चांदी दोनों ही धातुओं का मूल्यमान के रुप में प्रयोग किया जाये, लोगों को मुद्रा को स्वर्ण तथा चांदी में बदलेने की सुविधा नहीं होनी चाहिए।
2. सोने और चांदी को एक निश्चित अनुपात में मिलाकर धातु की दर तैयार की जाये तथा साधारण जनता को मुद्रा के बदले वही छड़ बदलेने की सुविधा मिले। इस प्रकार व्यक्ति को मुद्रा के बदले दोनों ही धातुओं को लेना पड़ेगा। अतः ग्रेशम का नियम क्रियाशील नहीं होगा। इसका कारण यह हैं कि सोने और चांदी की कीमतों में होने वाले परिवर्तनों का इस मान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

3.4 स्वर्णमान का आशय (Meaning of Gold Standard)

स्वर्णमान के सम्बन्ध में सामान्य धारणा यह हैं कि इस व्यवस्था में सोने की मुद्राएँ चलन में रहना आवश्यक हैं, किन्तु वास्तविक स्थिति ऐसी नहीं हैं। नीचे दी गयी परिभाषाओं से यह बात स्पष्ट हो जायेगी:

रॉबर्टसन (Robertson) – "स्वर्णमान एक ऐसी स्थिति हैं जिसके अन्तर्गत एक देश अपनी मुद्रा की एक इकाई तथा स्वर्ण की एक निश्चित मात्रा का मूल्य समान रखता हैं। (Gold standard is a state of affairs in which a country keeps the values of its monetary units and the value of a defined weight of gold at an equality with one another)"

हाट्रे (Hawtrey)- ''स्वर्णमान के अन्तर्गत स्वर्ण का मूल्य मुद्रा में निश्चित कर दिया जाता हैं और इस प्रकार स्वर्ण तथा मुद्रा का सम्बन्ध स्थापित हो जाता हैं। (The foundation of the gold standard is the laying of the value of monetary units to the value of gold by fixing of price of gold)

कौलबोर्न (Coulborn) "स्वर्णमान एक ऐसी व्यवस्था हैं जिसके अन्तर्गत देश की मुख्य मुद्रा की इकाई एक निश्चित किस्म के स्वर्ण की एक निश्चित मात्रा में परिवर्तनशील होती हैं। (The gold standard is an arrangement where by the chief piece of money of a country is exchangeable with a fixed quantity of gold of a specific quality)"

क्राउथर (Crowther) के अनुसार, "जब मुद्रा किसी कानून द्वारा स्वर्ण में परिवर्तनशील होती हैं तो ऐसी मुद्रा व्यवस्था को स्वर्णमान कहते हैं। (When this money is made by law freely interchangeable with gold at a fixed ratio, the currency is on the gold standard)"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्वर्णमान के निम्नलिखित मौलिक तत्व उभरकर सामने आते हैं -

1. स्वर्णमान में स्वर्ण मुद्राएँ चलन में रहना आवश्यक नहीं हैं।

2. देश की मुद्रा का सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार से स्वर्ण से जुड़ा रहता हैं।

3. देश की मुद्रा स्वर्ण में परिवर्तनशील नहीं होती हैं।

4. जनता सरकार से निश्चित कीमत पर असीमित मात्रा में या निर्धारित सीमा में सोना खरीद भी सकती हैं और बेच भी सकती हैं।

5. अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन के लिए स्वर्ण का आयात-निर्यात स्वतंत्र होता हैं।

स्वर्णमान के दो मुख्य कार्य (The two main function of gold standard)

1. आन्तरिक कीमत स्तर में स्थिरता बनाये रखना: चूँकि स्वर्ण का स्टॉक अपरिमित मात्रा (Unlimited Quantity) में उपलब्ध नहीं होता , इसलिए मुद्रा के अतिरिक्त निर्गमन का भय नहीं होता और देश में मुद्रा प्रसार की दशा पैदा नहीं हो सकती।

2. विदेशी विनियम दरों में स्थायित्व बनाये रखना: जब देश का भुगतान शेष (BoP) प्रतिकूल होता हैं, तब जनता विदेशों को भुगतान विदेशी मुद्रा के बजाए सोने के रुप में करना पसन्त करेगी, क्योंकि सोना उसे निश्चित मूल्यों पर ही सरकार से प्राप्त हो जायेगा। इस प्रकार विदेशी मुद्रा के लिए माँग में वृद्धि नहीं होती और फलस्वरुप विनिमय दरों में स्थिरता बनी रहती हैं।

स्वर्णमान के स्वरुप (Form of Gold Standard)

समय एवं परिस्थितियों के अनुसार स्वर्णमान का स्वरुप बदलेता रहता हैं। आ धुनिक समय तक इसके निम्नलिखित रुप प्रचलित हो चुके हैं -

1. स्वर्ण मुद्रामान (Gold Currency Standard)

2. स्वर्ण धातुमान (Gold Bullion Standard)

3. स्वर्ण विनिमयमान (Gold Exchange Standard)

4. स्वर्ण निधिमान (Gold Reserve Standard)

5. स्वर्ण समतामान (Gold Parity Standard)

इन सबका वर्णन नीचे किया जा रहा हैं-

स्वर्ण मुद्रामान (Gold Currency Standard)

स्वर्ण मुद्रामान स्वर्णमान का सबसे पुराना रुप हैं। इसको स्वर्ण टंकमान (Gold Coin Standard), परम्परागत स्वर्णमान (Traditional Gold Standard), कट्टर स्वर्णमान (Orthodox Gold Standard) और पूर्ण स्वर्णमान (Full Gold Standard) भी कहा गया हैं।

स्वर्ण मुद्रामान की विशेषताएँ (Characteristics of Gold Currency Standard)

इस व्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

1. चलन में सोने की मुद्रा (Gold currency in circulation) - इस व्यवस्था के अन्तर्गत देश में सोने के सिक्के चलन में रहते हैं। इन सिक्कों में एक निश्चित मात्रा में स्वर्ण होता हैं।

2. स्वतंत्रा टंकण (Free Coinage) - सोने की मुद्राओं का मुक्त टंकण होता हैं, अर्थात् कोई भी व्यक्ति टकसाल में सोना ले जाकर मुद्राएँ प्राप्त कर सकता हैं या ढलवा सकता हैं।

3. असीमित विधिग्राह्यता (Unlimited Legal Capacity) - सोने की मुद्राएँ कानून द्वारा असीमित ग्राह्य घोषित की जाती हैं अर्थात् उनके द्वारा चाहे जितनी रकम का भुगतान किया जा सकता हैं।

4. सहायक मुद्राएँ (Supporting Currencies) - स्वर्ण की प्रधान मुद्राओं की सहायता के लिए देश में हल्की तथा सस्ती धातु की छोटी सहायक मुद्राएँ चलन में रहती हैं जिनके द्वारा छोटे लेन-देन सम्पन्न किये जाते हैं।

5. कागज के नोट (Paper Notes) - अधिक बड़े भुगतान करने के लिए कागज के नोट भी चलन में रहते हैं जो स्वर्ण में परिवर्तनशील होते हैं। इन नोटों की परिवर्तनशीलता के लिए कोष में शत-प्रतिशत स्वर्ण रखा जाता हैं।

6. स्वतंत्रा आयात-निर्यात (Free Import-Export) - विदेशी भुगतान तथा अन्य प्रकार के लेन-देन के लिए स्वर्ण के आयात तथा निर्यात में कोई बाध नहीं रहती।

7. स्वर्ण का महत्व (Importance of Gold) - स्वर्ण मुद्रामान के अन्तर्गत स्वर्ण ही सम्पूर्ण मुद्रा प्रणाली का आधार रहता हैं। स्वर्ण के गलाने , खरीदने, बेचने अथवा स्वर्ण के स्तंत्रा व्यवसाय पर किसी प्रकार का बन्ध न नहीं रहता। इस दृष्टि से सम्पूर्ण लेन-देन का आधार स्वर्ण रहता हैं।

3.4.1 स्वर्णमान के गुण (Merits of Gold Standard)

स्वर्ण मुद्रामान में निम्नलिखित गुण रहे हैं -

1. स्वर्ण के मूल्य में समानता तथा स्थायित्व (Equality and Stability in the Price of Gold) - स्वर्ण मुद्रामान अपनाने वाले देशों में स्वर्ण का मूल्य अन्य देशों के समान रहता हैं , क्योंकि ज्यों ही स्वर्ण एक देश में महंगा होता हैं वह दूसरे देशों से आयात होना आरम्भ हो जाता हैं, जिससे स्वर्ण के कोषों में वृद्धि होने के कारण स्वर्ण के मूल्य फिर सामान्य स्तर पर आ जाते हैं। इस प्रकार सभी देशों में स्वर्ण का मूल्य समान रहता हैं और स्वर्ण के मूल्य में उतार-चढ़ाव भी नहीं होते।

2. वस्तु मूल्यों में स्थायित्व (Stability in Commodity Prices) - स्वर्ण के मूल्यों में स्थायित्व रहने के कारण, स्वर्ण मुद्रामान अपनाने वाले देशों में वस्तुओं के मूल्य में भी स्थायित्व रहता हैं। क्योंकि मुद्रा का आधार स्वर्ण होता हैं, इसलिए स्वर्ण मूल्य में स्थायित्व रहने के कारण मुद्रा के मूल्य में स्थायित्व रहना स्वाभाविक हैं।

3. जनता का विश्वास (Public Confidence) - स्वर्ण तथा वस्तुओं के मूल्य में स्थायित्व रहने के कारण जनता का मुद्रा व्यवस्था में विश्वास बना रहता हैं।

4. सरल व्यवस्था (Simple Arrangement) - स्वर्ण मुद्रामान में सोने की मुद्राएँ चलन में रहती हैं और कागज के नोट, आदि अन्य प्रचलित मुद्राएँ स्वर्ण-मुद्राओं में बदली जा सकती हैं। अतः यह व्यवस्था जटिल अथवा उलझन भरी नहीं हैं, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जानता हैं कि स्वर्ण मुद्रा का देश-विदेश में समान उपयोग हैं।

5. विनिमय दरों के निर्धारण में सुगमता (Ease of Determining Exchange Rates) - स्वर्ण मुद्रामान अपनाने से सभी देशों की मुद्राओं की आपसी विनियम दरें निश्चित करना सरल होता हैं और यह दरें प्रायः एक स्तर पर बनी रह सकती हैं, क्योंकि स्वर्ण के मूल्यों में परिवर्तन हुए बिना विनिमय दरों में भी उतार-चढ़ाव नहीं होते।

6. स्वयं संचालित (Self Driven) - स्वर्ण मुद्रामान के अन्र्तगत मुद्रा की दर तथा स्वर्ण का मूल्य अपने आप सामान्य स्तर पर बने रहते हैं, क्योंकि यदि किसी देश के स्वर्ण का मूल्य बढ़ जाये तो उसमें स्वर्ण का आयात होने लगता हैं जिससे स्वर्ण की मात्रा बढ़कर उसके मूल्य कम हो जाते हैं। इसी प्रकार किसी देश में स्वर्ण के मूल्य में कमी आने पर उस देश से स्वर्ण निर्यात होने लगता हैं जिससे स्वर्ण की मात्रा कम हो जाती हैं और मूल्य तथा मुद्रा की विनिमय दर उचित स्तर पर आ जाते हैं। यह कार्य बिना सरकारी हस्तक्षेप के सम्पन्न होता हैं। इसे ही **'स्वर्णमान की स्वयंचालकता' (Auto Mobility of the Gold Standard)** कहा गया हैं। कैनन ने स्वर्णमान को

इस गुण (स्वयं चालकता) के कारण ही **'मूर्ख सिद्ध और मक्कार सिद्ध'** (Fool-Proof and Knave-Proof) कहा हैं।

3.4.2 स्वर्णमान के दोष (Demerits of Gold Standard)

स्वर्ण मुद्रामान के निम्नलिखित दोष हैं-

1. महंगी और बेलोचदार व्यवस्था (Expensive and Inelastic System)- स्वर्ण मुद्रामान एक महंगी व्यवस्था हैं जिसे विकासशील अथवा गरीब देश नहीं अपना सकते। इसके तीन स्पष्ट कारण हैं - 1. स्वर्ण मुद्रामान के अन्तर्गत मुद्राओं के लिए स्वर्ण की बहुत आवश्यकता होती हैं , 2. स्वर्ण की मुद्रा चलन में रहने के कारण मुद्राओं में घिसाव (Depreciation) होने से बहुत सा स्वर्ण व्यर्थ नष्ट होता हैं , 3. यदि किसी देश की अर्थव्यवस्था विकासशील हो और वहाँ अधिक मुद्रा की आवश्यकता पड़े तो उसकी पूर्ति करना कठिन हो जाता हैं।

2. संकुचनशील (C ontractionary)- स्वर्ण मुद्रामान व्यवस्था में स्वर्ण कोषों के बिना मुद्रा ढालना या निकालना सम्भव नहीं होता। अतः स्वर्ण के अभाव में मुद्रा की कमी रहती हैं। इसलिए स्वर्ण मुद्रामान व्यवस्था को अवस्फीतिकारक कहा गया हैं।

3. संकट काल में साथ नहीं होता (Not together in times of crisis)- स्वर्ण मुद्रामान व्यवस्था केवल शान्तिकाल की मित्र (Fair Weather Friend)) हैं। जब कभी समाज में आर्थिक या राजनैतिक अशान्ति उत्पन्न होने लगती हैं, जनता तथा सरकार स्वर्ण का संग्रह करने लगती हैं और मुद्रा की स्वर्ण में परिवर्तनशीलता समाप्त कर देनी पड़ती हैं। इस दृष्टि से स्वर्ण मुद्रामान केवल अच्छे समय का मित्रा (Fair Weather Friend) होता हैं।

4. मूल्य स्थिरता काल्पनिक (Price stability hypothetical)- स्वर्ण मुद्रामान को केवल इसलिए श्रेष्ठ माना गया हैं कि इसमें वस्तु मूल्यों में स्थापित रहता हैं। किन्तु आलोचकों के अनुसार स्वर्णमान में कीमत की स्थिरता काल्पनिक होती हैं क्योंकि सोने की कीमत में परिवर्तन हो जाने से कीमत स्तर में भी परिवर्तन हो जाता हैं।

5. स्वयं-संचालकता काल्पनिक (Self-driving hypothetical)- स्वर्णमान में स्वयं चालकता का गुण तभी तक विद्यमान रहता हैं जब तक इसे बनाये रखने में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त होता रहे। चूंकि प्रथम विश्व-युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग नहीं मिल पाया, स्वर्णमान की स्वयं-चालकता समाप्त हो गयी।

6. स्वर्ण मुद्रामान अनावश्यक (gold currency standard unnecessary)- स्वर्ण मुद्रामान को मुद्रा की विनिमय की दर तथा वस्तु मूल्यों में स्थिरता बनाये रखने के लिए आवश्यक समझा गया हैं , परन्तु मूल्यों में स्थिरता तो सरकार की आर्थिक नीति पर निर्भर करती हैं। यदि शासन व्यवस्था में स्थिरता और कुशलता हैं और उचित विकास नीति का पालन किया जाता हैं तो अर्थव्यवस्था में कोई संकट उत्पन्न नहीं होने पाता। अतः मूल्य तथा विनियम दर में स्थायित्व लाने के लिए स्वर्ण मुद्रामान जैसे महंगी व्यवस्था काम में लाना उचित नहीं हैं।

स्वर्णमान के उपर्युक्त दोषों के कारण इसकी कुछ अर्थशास्त्रियों ने कटु आलोचना की हैं , जैसे प्रो. रॉबर्टसन ने इसे 'जंगली लोगों की रुचि को सन्तुष्ट करने वाला और प्रो. हाट्रे ने इसे 'साख जगत में अराजकता उत्पन्न करने वाला' कहा हैं।

स्वर्ण धातुमान (Gold Bullion Standard)

जब किसी देश में स्वर्ण मुद्रा चलन में नहीं रहती, किन्तु देश की सरकार अपनी मुद्रा के बदले एक निश्चित मात्रा में स्वर्ण उपलब्ध कराने का वचन देती हैं तब इस व्यवस्था को स्वर्ण धातुमान अथवा स्वर्ण प त्रमान कहा जाता हैं। स्वर्ण धातुमान में सरकार स्वर्ण का मूल्य प्रायः निश्चित कर देती हैं और फिर उसी दर पर सोने की खरीद

और बिक्री करती हैं। प्रथम वि श्व युद्ध के बाद , विदेशी विनिमय की स्थिरता को बनाये रखने के लिए स्वर्ण धातुमान को अपनाया गया।

स्वर्ण धातुमान की विशेषताएँ (characteristics of Gold Bullion Standard)

स्वर्ण धातुमान की निम्नलिखित विशेषताएँ रही हैं-

1. सोने के सिक्कों का प्रचलन नहीं होता(Gold coins do not circulate)- स्वर्ण धातुमान के अन्तर्गत सोने के सिक्कों का प्रचलन नहीं होता। विनिमय की सुविधा के लिए हल्की धातुओं के सिक्के तथा कागजी नोट चलन में रहते हैं, किन्तु इन नोटों तथा सिक्कों की कीमत स्वर्ण में परिभाषित की जाती हैं।

2. स्वतंत्रा ढलाई नहीं होती (No free casting)- स्वर्ण मुद्राएँ चलन में न रहने के कारण उनकी स्वतंत्रा ढलाई या टंकण का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

3. कोष निधि (Treasury fund)- कागज के नोटों के पीछे स्वर्ण का केवल आनुपातिक कोष ही रखा जाता हैं। वास्तव में, इस प्रणाली की यह मान्यता हैं कि सब लोग अपने नोटों को स्वर्ण में परिवर्तित करने के लिए प्रस्तुत नहीं करेंगे।

4. स्वर्ण का मूल्य निर्धारण तथा मुद्रा की परिवर्तनशीलता (Gold pricing and currency variability)- स्वर्ण धातुमान में सोने का मूल्य सरकार द्वारा निश्चित कर दिया जाता हैं और निश्चित दर पर ही देश की कागजी मुद्रा स्वर्ण में परिवर्तनशील होती हैं।

5. स्वर्ण की उपलब्धि (Gold achievement)- स्वर्ण धातुमान में सरकार निश्चित दर पर किसी भी कार्य के लिए सोना देने का वचन देती हैं। अतः चाहे स्वर्ण की आवश्यकता अपने देश में काम में लाने के लिए हो अथवा विदेशी भुगतान के लिए, दोनों दशाओं में जनता निश्चित दर पर सभी कार्यों के लिए स्वर्ण प्राप्त कर सकती हैं।

स्वर्ण धातुमान के गुण (Properties of Gold Metal)

इस व्यवस्था के निम्नलिखित गुण रहे हैं-

1. मितव्ययता (Thrift)- स्वर्ण धातुमान में स्वर्ण मुद्राएँ चलन में डालना आवश्यक नहीं हैं। अतः इसमें मुद्रा ढालने का खर्च बच जाता हैं। इसके अतिरिक्त स्वर्ण मुद्राएँ चलन में रहने से जो घिसाई (Depreciation) होती, उसकी भी बचत हो जाती हैं।

2. स्वर्ण की बचत (Saving gold)- चूंकि इस मुद्रामान में सोने के सिक्के नहीं चलते , अतः सोने के प्रयोग में बचत हो जाती हैं और स्वर्ण का प्रयोग अन्यथा किया जा सकता हैं।

3. सरल प्रणाली (Simple system)- यह भी सरल प्रणाली हैं। इसमें जनता को यह पता रहता हैं कि उनके पास जो मुद्रा हैं उसके बदले एक निश्चित मात्रा में स्वर्ण मिल सकता हैं।

4. जनता का विश्वास (Public confidence)- स्वर्ण धातुमान व्यवस्था में स्वर्ण मुद्राएँ चलन में नहीं होती , किन्तु सरकार जनता द्वारा मांगे जाने पर कागजी मुद्रा तथा संकेतिक सिक्कों को सदैव स्वर्ण में बदलेने के लिए तैयार रहती हैं, अतः स्वर्णमान में लोगों का विश्वास बना रहता हैं।

5. स्वयं चालकता का गुण (Self conductivity property)- इस मुद्रामान में यदि स्वर्णमान के नियमों का पालन किया जाये तो इसमें भी स्वर्ण धातुमान के समान स्वयं चालकता का गुण बना रहता हैं क्योंकि मुद्रा की माँग और पूर्ति अपने आप सन्तुलित हो जाती हैं।

6. लोचदार (Elasticity)- स्वर्ण धातुमान में मुद्रा के पीछे शत-प्रतिशत स्वर्ण कोष नहीं रखा जाता। अतः मुद्रा में कमी या वृद्धि करने में कोई कठिनाई नहीं होती। इस दृष्टि से यह व्यवस्था स्वर्ण मुद्रामान से अधिक लोचदार हैं।

7. विनिमय दरों में स्थिरता (Stability in Exchange Rates)- स्वर्ण धातुमान में मुद्रा के पीछे स्वर्ण की धरोहर या आड़ रहती हैं, अतः मुद्रा की मात्रा से अधिक विस्तार नहीं हो सकता। इसके परिणामस्वरुप मुद्रा की विनिमय दर में भी गिरावट आने की आशंका नहीं रहती। इस प्रकार चलन में मुद्रा की मात्रा बहुत कम भी नहीं रह सकती। अतः विनियम दर में भी विशेष वृद्धि नहीं हो सकती।

स्वर्ण धातुमान के दोष (Demerits in gold standard)

स्वर्ण धातुमान में निम्नलिखित दोष रहे हैं-

1. अनावश्यक कोष (U nnecessary Reserves)- स्वर्ण धातुमान के आलोचकों का कथन हैं कि इसके अन्तर्गत जो स्वर्ण कोष रखे जाते हैं , वे बेकार पड़े रहते हैं , उनका कोई उपयोग नहीं होता। अतः यह व्यवस्था भी विशेष मितव्ययतापूर्ण नहीं हैं।

2. परिवर्तनशीलता का भ्रम होना (Confusion of Variability)- स्वर्ण पिण्डमान में जो कोष रखे जाते हैं वे मुद्रा के बदले सोना देने के लिए होते हैं , किन्तु जब भी लोग स्वर्ण मांगने लगते हैं , तब ही सरकार इन्कार कर देती हैं। क्योंकि मुद्रा के पीछे शत-प्रतिशत सोना नहीं रखा जाता। अतः सारी पत्र मुद्रा के बदले सोना नहीं दिया जा सकता। दूसरा कारण यह हैं कि सोने की मांग के कारण सरकार भयग्रस्त हो जाती हैं और कुछ समय पश्चात् ही सोना देने से इन्कार कर देती हैं। इस प्रकार मुद्रा के बदले सोना देने की बात केवल सैद्धान्तिक हैं। अतः मुद्रा की परिवर्तनशीलता एक धोखामात्र हैं।

3. स्वयं-संचालकता भी एक भ्रम हैं (Self-Conduct is also an illusion)- स्वर्ण पिण्डमान का एक गुण यह बताया जाता हैं कि मुद्रा की मात्रा में कमी या वृद्धि अपने आप होती रहती हैं। यह धारणा भी सही नहीं हैं। इस मुद्रामान में सरकारी हस्तक्षेप के कारण ही मुद्रा प्रणाली कार्यशील होती हैं। चूंकि सिक्कों की स्वतंत्रा ढलाई नहीं होती। अतः स्वयं-चालकता का गुण कम हो जाता हैं। अतः स्वर्ण पिण्डमान की स्वयं-चालकता (जिसका अर्थ हैं मुद्रा का मूल्य, विनिमय दर तथा स्वर्ण के मूल्यों का अपने आप ठीक स्तर पर आना) भी भ्रमपूर्ण ही हैं।

4. जनता का कम विश्वास (Low public confidence)- स्वर्ण धातुमान व्यवस्था में न तो सोने की मुद्राएँ चलती हैं, न ही प्रचलित मुद्राओं की परिवर्तनशीलता के लिए पर्याप्त शत-प्रतिशत सोना रहता हैं। अतः इस व्यवस्था में जनता का बहुत विश्वास नहीं रहता। यह विश्वास उस समय बिल्कुल टूट जाता हैं जबकि सरकार कुछ समय मुद्रा के बदले स्वर्ण देने के पश्चात् सोना देना बन्द कर देती हैं।

5. जनता को स्वर्णमान का भुलावा (The public was made to forget the gold standard) - कहने को तो देश में स्वर्णमान होता हैं , परन्तु व्यवहार में जनता को नोटों के बदले सोना नहीं मिलता , जिस कारण वास्तविक रुप से पत्रामान ही प्रचलित होता हैं।

6. अनुकूल परिस्थितियों में सम्भव (possible under favorable circumstances) - संकटकाल में स्वर्ण पिण्डमान को बनाये रखना कठिन हो जाता हैं , क्योंकि स्वर्णकोषों की कमी के कारण इसका किसी भी सीमा तक विस्तार नहीं किया जा सकता। यही कारण हैं कि इसे अनुकूल परिस्थितियों का मित्रा कहा जाता हैं।

स्वर्ण मुद्रामान तथा स्वर्ण धातुमानमें तुलना (Comparison between Gold Currency Standard and Gold Metal Standard)

स्वर्ण मुद्रामान	स्वर्ण धातुमान
1. इसमें स्वर्ण मुद्राएँ चलन में रखना अनिवार्य हैं जिनका स्वतंत्रा टंकण होता हैं।	इसमें स्वर्ण मुद्राएँ चलन में रखना आवश्यक नहीं हैं।
2. इसके अन्तर्गत स्वर्ण तथा पत्रा मुद्राएँ चलती हैं जो	इसमें मुख्य रुप से पत्रा मुद्राएँ चलन में रहती हैं जो

स्वर्ण में परिवर्तनशील होती हैं। पत्र मुद्रा के पीछे शत-प्रतिशत कोष रखा जाता हैं।	स्वर्ण में परिवर्तनशील होती हैं। पत्रा मुद्रा के पीछे केवल आनुपातिक कोष रखा जाता हैं।
3. इस व्यवस्था में स्वर्ण मूल्य का मापक भी होता हैं और विनिमय का माध्यम भी।	इस व्यवस्था में स्वर्ण केवल मूल्य का मापक होता हैं , विनिमय का माध्यम नहीं होता।
4. इस व्यवस्था में आन्तरिक मूल्य स्तर तथा विदेशी विनिमय दर दोनों में स्थायित्व रहता हैं।	इस पद्धति में विदेशी विनिमय दरों के स्थायित्व पर विशेष बल दिया जाता हैं।
5. स्वर्ण मुद्रामान अधिक स्वचालित व्यवस्था हैं क्योंकि इसमें स्वर्ण की मात्रा में वृद्धि होते ही मुद्रा की मात्रा में वृद्धि कर दी जाती हैं।	इस व्यवस्था में स्वर्ण कोष केवल आनुपातिक होता हैं , अतः स्वर्ण कोषों में वृद्धि होने पर भी मुद्रा की मात्रा की वृद्धि करना आवश्यक नहीं हैं। अतः यह व्यवस्था कम स्वचालित हैं।
6. इसमें स्वर्ण मुद्राएँ चलन में रहती हैं जिनकी घिसावट होती हैं। अतः यह एक महंगी व्यवस्था हैं।	इसमें स्वर्ण मुद्राँ चलन में नहीं रहतीं , इससे स्वर्ण की घिसावट बच जाती हैं। अतः वह अपेक्षाकृत कम खर्चीली व्यवस्था हैं।
7. इस व्यवस्था में जनता का विश्वास अधिक होता हैं, क्योंकि स्वर्ण मुद्राएँ स्वयं में भी मूल्यवान होती हैं।	इस व्यवस्था में जनता का कम विश्वास रहता हैं , क्योंकि स्वर्ण मुद्राएँ तो चलन में रहती नहीं और संकटकाल में प्रायः सरकार मुद्रा के बद ले स्वर्ण देने से इन्कार कर देती हैं।

स्वर्ण विनिमयमान (Gold Exchange Standard)

स्वर्ण विनिमयमान का आशय

स्वर्ण विनिमयमान स्वर्णमान का वह स्वरुप हैं जिसमें एक देश अपनी मुद्रा का सम्बन्ध स्वर्णमान अपनाने वाले किसी देश की मुद्रा से जोड़ देता हैं। देश में आन्तरिक उपयोग के लिए सांकेतिक मुद्राएँ चलन में रहती हैं जो अपरिवर्तनीय होती हैं। विदेशी भुगतानों के लिए देशी मुद्रा के बदले स्वर्णमान वाले देश की मुद्रा प्रदान की जाती हैं।

क्राउथर के अनुसार, “स्वर्ण विनिमयमान के अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक का वैधानिक उत्तरदायित्व मुद्रा को स्वर्ण में बदलने का नहीं, वरन् किसी अन्य ऐसी मुद्रा में बदलने का होता हैं , जो कि स्वयं स्वर्ण में परिवर्तनीय हैं।“

स्वर्ण विनिमयमान की विशेषताएँ (characteristics of Gold Exchange Standard)

स्वर्ण विनिमयमान की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. स्वर्ण मुद्रा चलन में नहीं रहती- स्वर्ण पिण्डमान की भाँति ही स्वर्ण विनिमयमान में भी सोने की मुद्रा चलन में रहना आवश्यक नहीं हैं। प्रायः कागज के नोट तथा सहायक सिक्के ही चलन में रहते हैं।

2. मुद्रा का मूल्य स्वर्ण या विदेशी मुद्रा में निश्चित- स्वर्ण विनिमयमान में मुद्रा का मूल्य स्वर्ण में निश्चित किया जाता हैं, किन्तु अनेक बार किसी अन्य देश की मुद्रा में निश्चित किया जाता हैं जो कि स्वर्ण में परिवर्तनीय होती हैं।

3. विदेशों में स्वर्ण कोष - स्वर्ण विनिमयमान के अन्तर्गत स्वर्ण या विदेशी मुद्रा के कोष किसी अन्य देश में रखे जाते हैं। यदि मुद्रा के विदेशी मूल्य में कमी आती हैं तो इस कोष से स्वर्ण निकालकर घाटे की पूर्ति की जाती हैं। अपने देश में भी सरकार एक कोष रखती हैं जिसमें विदेशी मुद्राएँ रखी जाती हैं।

4. विदेशी भुगतान के लिए सोना या विदेशी विनिमय - जनता को केवल विदेशी भुगतान के वास्ते ही सोना दिया जाता हैं। अनेक बार विदेशी भुगतान के लिए सोना देने के बजाये विदेशी मुद्रा ही देने की व्यवस्था कर दी जाती हैं। यह व्यवस्था विदेश में रखे गये कोष में से की जाती हैं।

5. स्वर्ण के आयात-निर्यात स्वतंत्रा नहीं - स्वर्ण विनिमयमान में स्वर्ण न तो विनिमय का माध्यम होता हैं न मूल्य का मापक ही रहता हैं। स्वर्ण के आयात-निर्यात पर भी सरकारी नियंत्राण रहता हैं।

स्वर्ण विनिमयमान की कार्यप्रणाली -

इस मान के अन्तर्गत यदि देश के किसी व्यक्ति को विदेशों का भुगतान करना हैं , वह अपने देश की मुद्रा (कागजी या धत्विक) को अपनी सरकार या केन्द्रीय बैंक के समक्ष प्रस्तुत करता हैं। तब सरकार अथवा बैंक उसको विदेश स्थित स्वर्णकोष के ऊपर एक ड्राफ्ट दे देती हैं , जिसे वह विदेश भेज देता हैं। विदेशी व्यक्ति इस ड्राफ्ट का भुगतान अपने देश की सरकार या केन्द्री बैंक से ले लेता हैं।

यदि कोई विदेशी व्यक्ति स्वर्ण विनिमय मान अपनाने वाले देश के किसी व्यक्ति को भुगतान करना चाहता हैं, तो वह आवश्यक मात्रा में स्वर्ण अपने (विदेशी के) देश के स्वर्ण कोष में जमा करायेगा और उस व्यक्ति के पक्ष में ड्राफ्ट प्राप्त करेगा। तत्पश्चात् वह इस ड्राफ्ट को उस व्यक्ति के पास भेज देगा , जिसे वह व्यक्ति अपने देश की सरकार या केन्द्रीय बैंक से भुना लेगा।

स्वर्ण विनिमयमान की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

स्वर्ण विनिमयमान के गुण (Merits of Gold Exchange Standard)

1. कम खर्चीला- इस मान में बहुत कम सोना कोष में रखना पड़ता हैं , क्योंकि सोना केवल विदेशी भुगतान के वास्ते दिया जाता हैं। इस दृष्टि से यह मान सस्ता हैं और गरीब एवं विकासशील देशों के लिए उपयुक्त हैं।

2. लोचदार- इस व्यवस्था में कोष में बहुत सोना नहीं रखना पड़ता , क्योकि मुद्रा की मात्रा स्वर्ण पर आश्रित नहीं होती। अतः मुद्रा की मात्रा में वृद्धि करना आसान हैं।

3. विनिमय दर में स्थायित्व- स्वर्ण विनिमयमान में मुद्रा का सम्बन्ध किसी शक्तिशाली विदेशी मुद्रा से जोड़ा जाता हैं। अतः मुद्रा की विनिमय दर में अधिक उतार-चढ़ाव होने का भय नहीं रहता।

4. विदेशी भुगतान में सुविधा- इसके अन्तर्गत विदेशों में सोना और विदेशी विनिमय कोष रखे जाते हैं। इसलिए विदेशी भुगतान करना बहुत सरल हो जाता हैं।

5. स्वर्ण के प्रयोग में बचत- चूंकि इस मान में स्वर्ण का बहुत कम प्रयोग होता हैं, यह प्रणाली कापफी सस्ती हैं। प्रो. केण्ट के अनुसार ,"स्वर्ण विनिमयमान का विशेष लाभ स्वर्ण की मांग को कम करना तथा उसके प्रयोग में मितव्ययता करना था।"

स्वर्ण विनिमयमान के दोष (Demerits of Gold Exchange Standard)

स्वर्ण विनिमयमान के दोष निम्नलिखित हैं-

1. जटिल प्रणाली - यह प्रणाली काफी जटिल हैं। इसकी कार्य पद्धति को एक साधरण व्यक्ति नहीं समझ सकता और कभी-कभी तो पढ़े-लिखे व्यक्ति भी उसे समझने में असमर्थ रहते हैं।

2. प्रबन्ध में कठिनाई - स्वर्ण विनिमयमान का सबसे बड़ा दोष यह हैं कि इसमें मुद्रा की विनिमय दर बनाये रखने के लिए निरन्तर प्र यत्न करना पड़ता हैं। विदेशी भुगतानों के लिए भी सरकार को विशेष व्यवस्था करनी पड़ती हैं।

3. विदेशों में कोष - इस प्रणाली में सोना या विदेशी विनिमय विदेशों में रखने पड़ते हैं। कुछ व्यक्तियों की मान्यता हैं कि इन कोषों पर प्रायः बहुत कम ब्याज मिलता हैं। यह बात सही भी हैं। विकासशील देशों में प्रायः

पूँजी का अभाव रहता हैं और उन्हें विदेशों में मंहगी पूँजी आयात करनी पड़ती हैं। इस दृष्टि से स्वर्ण विनिमयमान इन देशों के लिए बहुत उपयोगी नहीं हैं।

4. एक देश का दूसरे पर निर्भर हो जाना - स्वर्ण विनिमयमान में देश की मुद्रा का किसी विदेशी मुद्रा से गठबन्धन करना पड़ता हैं। यदि उस विदेशी मुद्रा के मूल्य में उतार-चढ़ाव होते हैं तो देश की मुद्रा के मूल्य में भी उतार-चढ़ाव होने लगते हैं। यदि आधार देश स्वर्णमान का परित्याग करता हैं तो स्वर्ण विनिमयमान वाले देश का सम्बन्ध भी स्वर्ण के साथ टूट जाता हैं।

5. मुद्रा स्फीति का भय - स्वर्ण विनिमयमान में मुद्रा-व्यवस्था बहुत लोचदार होती हैं, किन्तु उसमें मुद्रा-स्फीति का भय सदा बना रहता हैं।

6. जनता का अविश्वास - स्वर्ण विनिमयमान में मुद्रा के पीछे साधरण कोष ही होते हैं और केवल विदेशी भुगतान के लिए ही स्वयं दिया जाता हैं। अतः इस व्यवस्था में जनता का विश्वास साधरण ही रहता हैं।

स्वर्ण विनिमयमान का प्रयोग (Use of Gold Exchange Standard)

यह मान सर्वप्रथम जावा ने अपनाया , तत्पश्चात् हॉलैण्ड, रुस और आस्ट्रिया आदि देशों ने अपनाया। भारत में यह मान 1900 से 1917 तक प्रचलित रहा। इसके अन्तर्गत रुपये को ब्रिटिश पौण्ड से जोड़ दिया गया और भारतीय रुपये की विनिमय दर 1रु = 16 पैंसा निर्धारित की गयी थी।

स्वर्ण निधिमान (Gold Reserve Standard)

स्वर्ण निधिमान का आशय एवं उद्देश्य

स्वर्ण निधिमान एक ऐसी व्यवस्था हैं जिसकी स्थापना 1936 में हुई। जब अन्तर्राष्ट्रीय स्वर्णमान का पतन हो गया, तब किसी अन्य ऐसी व्यवस्था की स्थापना करना आवश्यक था जिससे बड़े-बड़े देशों की मुद्राओं में आपसी सम्बन्ध बने रह सकें। इस उद्देश्य से सन् 1936 में अमरीका, फाँस और ब्रिटेन में एक समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत इन देशों में आपसी भुगतान करने की व्यवस्था की गयी। इस समझौते में हॉलैण्ड , बेल्जियम तथा स्विट्जरलैण्ड बाद में शामिल हो गये। इस समझौते के द्वारा जिस नये मुद्रामान की स्थापना की गयी , वह 'स्वर्ण निधिमान' कहलाता हैं, इसे अपनाने वाले देशों में अपनी मुद्रा के विदेशी मूल्य को स्थिर रखने के लिए विनिमय समानीकरण कोष की स्थापना की गयी। विनिमय की स्थिरता प्राप्त करने के लिए ये कोष विदेशी मुद्रा को बेचने एवं खरीदने का कार्य करते थे तथा स्वर्ण का आयात-निर्यात कर सकते थे। स्वर्ण निधिमान एक सीमित स्वर्णमान था और इस मुद्रामान का मुख्य उद्देश्य विनिमय दरों में होने वाले उतार-चढ़ाव को रोककर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं भुगतान की समस्याओं का निराकरण करना था।

स्वर्ण निधिमान की विशेषताएँ (characteristics of Gold Reserve Standard)

स्वर्ण निधिमान की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. स्वर्ण का मूल्य - समझौता करने वाले देशों ने स्वर्ण का मूल्य अपनी-अपनी मुद्राओं में निश्चित कर दिया। इस मूल्य में सबकी सहमति के बिना परिवत्रन नहीं हो सकता था।

2. विनिमय दरें निश्चित - समझौते में शामिल देशों ने अपनी मुद्राओं को विनिमय दरें भी आपस में निश्चित कर दी। इन दरों में भी आपसी सहमति से ही परिवर्तन हो सकता था।

3. स्वर्ण का आयात-निर्यात नियंत्रित - इन देशों में स्वर्ण का आयात-निर्यात भी स्वतंत्रा नहीं था। सोने का कुल भण्डार अपने-अपने देश के केन्द्रीय बैंक में सुरक्षित रहता था और स्वर्ण में लेन-देन सरकारी आदेश द्वारा ही हो सकता था।

4. मुद्रा की परिवर्तनशीलता - स्वर्ण निधिमान में मुद्राओं के मूल्य स्वर्ण में निर्धारित अवश्य थे , किन्तु मुद्रा के बदले स्वर्ण देने की व्यवस्था नहीं थी। इस प्रकार स्वर्ण न तो विनिमय का माध्यम था और न ही मूल्य का मापक।

5. स्वर्ण कोषों की गोपनीयता - स्वर्ण निधिमान में केन्द्रीय बैंक के पास जो स्वर्ण कोष रखे जाते थे उन्हें भी गुप्त रखा जाता था। जनता को उनकी राशि की जानकारी नहीं दी जाती थी। स्वर्ण के विदेशी लेन-देन के बारे में भी जनता को पता नहीं चलता था।

स्वर्ण निधिमान के संचालन की विधि

प्रायः सभी देशों ने अपनी मुद्राओं की विनिमय दरों में स्थायित्व लाने की दृष्टि से ऐसे कोषों का निर्माण किया जिनमें विदेशी मुद्रा के भण्डार सुरक्षित रखे जाते थे , इन्हें विनिमय सामान्यकरण कोष कहते थे। जब भी किसी देश की मुद्रा के लिए माँग बढ़ती और इसके फलस्वरुप विनिमय दर में ऊँचा होने की प्रवृत्ति प्रकट होती , तब ही इन भण्डारों से उस मुद्रा को बेचकर उसकी पूर्ति बढ़ा दी जाती और इस प्रकार विनिमय दर को ठीक स्तर पर रखा जाता था। इसके विपरीत, यदि किसी देश के लिए माँग कम होने के कारण विनिमय दर गिरने की प्रवृत्ति दिखती तो कोष से उस देश की मुद्रा को खरीद लिया जाता था और इस प्रकार बाजार में उस मुद्रा की पूर्ति को कम करके विनिमय दर को नीचे गिरने से रोका जाता था। वह थी कोष की कार्य प्रणाली जिसके द्वारा विभिन्न देशों की मुद्राओं की विनिमय दरों में स्थायित्व रखा जाता था।

यदि किसी देश के पास अन्य देश की मुद्रा का कोष बढ़ जाता था , तो वह इसकी सूचना उस देश को देता था, जो फिर स्वर्ण देकर अपनी मुद्रा वापस ले लेता था। प्रथम देश प्राप्त हुए स्वर्ण को कोष में रख देता था और अपनी मुद्राएँ जारी कर देता था। (इसी के कारण इस मान का नाम स्वर्ण निधिमान रखा गया था।)

स्वर्ण निधिमान के गुण-दोष (Merits-Demerits of Gold Reserve Standard)

गुण – (i) स्वर्ण का आयात-निर्यात सरकार के हाथों में रहने के कारण स्वर्ण का मूल्य स्थिर रहता था , (ii) विनिमय दरों को आन्तरिक अर्थव्यवस्था में हेर-फेर किये बिना ही , विनिमय समानीकरण कोष द्वारा , स्थिर रखा जा सकता था , (iii) देश की अर्थव्यवस्था विदेशी प्रभावों से मुक्त रहती थी , जबकि स्वर्णमान के अन्तर्गत यह बात नहीं थी, (iv) यह मुद्रा व्यवस्था लोचपूर्ण थी, एवं (v) स्वर्ण का प्रयोग मौद्रिक कार्य में न होने के कारण यह मुद्रामान अत्यधिक मितव्ययी था।

दोष – (i) यह प्रणाली कोष में पर्याप्त स्वर्ण रहने पर कार्यशील रह सकती थी, (ii) इसकी सहायता के लिए देशों में सहयोग रहना आवश्यक था, (iii) कोष गोपनीय रहने से जनता को वास्तविक स्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता था, इसलिए इस प्रणाली में उसका विश्वास कम था।

स्वर्ण निधिमान का पतन

स्वर्ण निधिमान एक अजीब ढंग का मान था जिसमें स्वर्णमान के अधिकांश नियमों का पालन नहीं किया गया था। यह मान केवल कुछ देशों में आपसी लेन-देन को सुविधाजनक बनाने के लिए अपनाया गया था। यह कोई अन्तर्राष्ट्रीय मान नहीं था। इस मान का प्रयोग सन् 1939 तक हुआ क्योंकि इस वर्ष सितम्बर में द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध प्रारम्भ होने से विभिन्न दे शों में हुआ समझौता टूट गया और स्वर्ण निधिमान समाप्त हो गया।

स्वर्ण समतामान (Gold Parity Standard)

वर्तमान युग में कोई भी ऐसी मुद्रा व्यवस्था नहीं अपनायी जा सकती जो प्रत्यक्ष रुप से स्वर्ण पर आधरित हो। इसका कारण यह हैं कि संसार के सभी देशों के पास स्वर्ण की कमी हैं। स्वर्ण का वार्षिक उत्पादन भी मुद्रा की आवश्यकता को पूरा करने के लिए काफी नहीं हैं। इस बात को ध्यान में रखकर ही अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के द्वारा

एक नये मुद्रामान की स्थापना की गयी , जो सब प्रकार के स्वर्णमानों से संस्था था और जिसमें सब प्रकार के स्वर्णमानों के गुण मौजूद थे।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और समतामान

स्वर्ण समतामान के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund) के सभी सदस्य देश उसके पास अपने कुछ स्वर्ण कोष रखते थे , जिसकी मात्रा मुद्रा कोष ने निर्धारित की हुई थी। इसके अतिरिक्त, सभी सदस्य देशों की मुद्राओं का मूल्य स्वर्ण तथा डॉलर में निश्चित किया गया था। देश की मुद्रा के स्वर्ण मूल्य के आधार पर अन्य देशों की मुद्राओं से उसकी विनिमय दर निश्चित की जाती थी। चूंकि विनिमय दरों में और मुद्रा के स्वर्ण मूल्य में समता रखी जाती थी इसलिए यह व्यवस्था 'स्वर्ण समतामान' कहलायी। इस व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ समय तक विनिमय दरों में पर्याप्त स्थिरता रही। यदि किसी देश की विनिमय दर में एक सीमा से अधिक परिवर्तन होता था , तो मुद्रा कोष अपने अनुशासनात्मक उपायों के द्वारा सुधारने में मद्द करता था।

स्वर्ण समतामान की विशेषताएँ (characteristics of Gold Parity Standard)

स्वर्ण समतामान की निम्नलिखित विशेषताएँ रही हैं-

1. देशी मुद्रा का स्वर्ण से सम्बन्ध न होना - इस मुद्रामान के अन्तर्गत स्वर्ण देश में विनिमय का माध्यम नहीं होता न वह मूल्य मापक का ही कार्य करता हैं। देश में जो पत्र मुद्रा और धातु मुद्राएँ चलन में होती हैं ये भी स्वर्ण में परिवर्तनशील नहीं होती।

2. विभिन्न देशों की मुद्राओं का मूल्य स्वर्ण में शामिल - मुद्रा कोष के सभी देशों की मुद्राओं के मूल्य स्वर्ण में निश्चित कर दिये गये। सदस्य देशों द्वारा जमा किया गया स्वर्ण केवल कोष के रुप में रहता था तथा इसे किसी देश को भुगतान के लिए नहीं दिया जा सकता था।

3. विनिमय दरों का निर्धारण - अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा सब देशों की मुद्राओं के मूल्य आपस में निर्धारित किये गये। इस प्रकार सब देशों की मुद्राओं की विनिमय दरें आपस में निश्चित की गयी। इन दरों पर ही सारा विदेशी लेन-देन होता था।

4. मुद्रा कोष में सहायता - जब किसी सदस्य देश के सामने विदेशी भुगतान की समस्या उत्पन्न होती, तब उसके द्वारा याचना करने पर मुद्रा कोष भुगतान के लिए व्यवस्था कर देता था , अर्थात् विदेशी भुगतान के लिए मुद्रा कोष से किसी भी मुद्रा में मिल जाता था।

5. मौद्रिक सहयोग - स्वर्ण समतामान में मुद्रा कोष के सदस्य देश मिल-जुलकर या एक-दूसरे की सहमति से मुद्रा तथा भुगतान नीति अपनाते थे। इससे विदेशी लेन-देन तथा भुगतान में कोई विदेशी समस्या उत्पन्न नहीं हो पाती थी।

6. आन्तरिक मुद्रा व्यवस्था में स्वतंत्रता - देश की आन्तरिक मुद्रा व्यवस्था में अन्य देशों का कोई हस्तक्षेप नहीं होता था। मुद्रा कोष भी हस्तक्षेप करने से बचता था।

7. स्वर्ण का आयात-निर्यात स्वतंत्र न होना- विभिन्न देशों के बीच स्वर्ण का आयात-निर्यात स्वतंत्र नहीं था।

स्वर्ण समतामान के गुण (Merits of Gold Parity Standard)

1. यह मान पर्याप्त लोचपूर्ण था क्योंकि इसके अन्तर्गत सदस्य देशों को विशेष परिस्थितियों में अपनी विनिमय दरों में परिवर्तन करने की छूट थी।

2. इस मान के अन्तर्गत विभिन्न सदस्य देशों में सहयोग और सद्भावना का विस्तार हुआ।

3. विनिमय दरें भी, 1971 के पूर्व तक काफी स्थिर बनी रही।

क्या स्वर्ण समतामान स्वर्ण विनिमयमान का ही अन्तर्राष्ट्रीय रुप था?

कुछ अर्थशास्त्रियों की मान्यता हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सहयोग से जिस मुद्रामान की व्यवस्था हुई थी, वह सही अर्थों में अन्तर्राष्ट्रीय स्वर्ण विनिमयमान था। इसके निम्नलिखित कारण दिये जाते हैं-

1. मुद्रा का मूल्य निर्धारण- स्वर्ण समतामान में भी मुद्रा का मूल्य स्वर्ण में निश्चित किया गया जैसे स्वर्ण विनिमयमान में होता हैं।

2. स्वर्ण एवं विदेशी विनिमय कोष- स्वर्ण विनिमयमान में स्वर्ण और विदेशी विनिमय के कोष विदेश में रखे जाते थे ताकि भुगतान में सुविधा रहे। स्वर्ण समतामान में स्वर्ण तथा अनेक मुद्राओं के कोष अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के पास रखे गये जिनका प्रबन्ध अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा होता था।

3. विदेशी भुगतान- मुद्रा कोष द्वारा रखे गये इन कोषों का प्रयोग सदस्य देशों की विदेशी भुगतान सम्बन्धी आवश्यकता को पूरा करने के लिए किया जाता था। स्वर्ण विनिमयमान में भी विदेश में रखे गये , कोष विदेशी भुगतान के काम में लिये जाते थे।

इस प्रकार स्वर्ण समतामान स्वर्ण विनिमयमान से बहुत मिलता-जुलता था , इसमें अन्तर केवल यह था कि इसका प्रबन्ध सब देश अलग-अलग नहीं करते थे। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एक केन्द्रीय स्थान से इसका संचालन करता था।

स्वर्ण समतामान का पतन-

सन् 1971 में अमरीका ने डॉलर की स्वर्ण में परिवर्तनशीलता का समाप्त कर दिया। इससे समता दरों का जो ढाँचा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने बड़े प्रयत्नपूर्वक अनेक वर्षों में तैयार किया था , टूट गया। डॉलर का दो बार अवमूल्यन हुआ। अन्य प्रभावशाली देशों ने भी अपनी मुद्राओं की विनिमय दरों को स्वतंत्रा रुप से निर्धारित होने के लिए छोड़ दिया। मुद्रा कोष ने भी अपने हिसाब-किताब के लिए डॉलर के बजाय SDR का प्रयोग करना शुरु किया। SDR (विशेष आहरण अधिकार या Special Drawing Rights) की एक इकाई का मूल्य 01 जनवरी,1981 से पांच देशों की मुद्राओं पर आधरित कर दिया गया। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के तत्वाधन में स्वर्ण समतामान के बजाय SDR मान कायम हो गया।

3.5 पत्र मुद्रामान से आशय (Meaning of Paper Currency Standard)

पत्र मुद्रामान आज के युग में सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था हैं , क्योंकि यह सरल, लोचदार तथा मितव्ययतापूर्ण हैं। पत्र मुद्रामान के अन्तर्गत देश में पत्र मुद्रा ही मुख्य मुद्रा होती हैं और धातु की अनेक सहायक मुद्राएं चलन में रहती हैं। पत्र मुद्रामान के अन्तर्गत कागज के नोट किसी भी धातु में परिवर्तनशील नहीं होते और न ही उसके पीछे कोष रखने की आवश्यकता होती हैं। यह मुद्रा व्यवस्था सरकार की साख पर चलती हैं और इसे प्रायः आर्थिक अथवा राजनीतिक संकट की अवस्था में अपनाया जाता हैं। इसीलिए इसे साख मान , प्रादिष्ट मान अथवा प्रबन्धित मान भी कहा जाता हैं।

3.5.1 पत्र मुद्रामान के गुण (Merits of Paper Currency Standard)

पत्र-मुद्रामान के निम्नलिखित गुण हैं-

1. **सस्ती मुद्रा प्रणाली** - पत्र मुद्रामान बहुत सस्ता होता हैं , क्योंकि कागज के नोट निकालना सरल हैं , उनकी घिसावट होने पर नये नोट निकालने में विशेष खर्च नहीं होता हैं।

2. **धातु की बचत** - कागजी नोटों का दैनिक जीवन में प्रयोग करने से सोने-चांदी की बचत हो जाती हैं और सोने-चांदी का प्रयोग कोष रखने या विदेशी भुगतान करने में हो सकता हैं।

3. लोचपूर्ण होना - पत्र मुद्रामान बहुत लोचपूर्ण हैं , क्योंकि इस व्यवस्था में मुद्रा की मात्रा में सुगमता से परिवर्तन किया जा सकता हैं।

4. विकास योजना में सहायक - पत्र मुद्रामान एक सस्ती और सरल व्यवस्था हैं जिससे विकास के लिए राशि प्राप्त की जा सकती हैं। इस दृष्टि से पत्रमान आर्थिक विकास मे सहायक हैं।

5. भुगतान में सुविधा - पत्र मुद्रामान व्यवस्था भुगतान की दृष्टि से बहुत सुविधाजनक हैं , क्योंकि गणना करने, एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने तथा जमा रखने में पत्र मुद्रा बहुत सुविधा प्रदान करती हैं।

6. बैंकिंग विकास को बल - पत्र मुद्रामान व्यवस्था के कारण ही संसार में बैंकिंग व्यवस्था का विकास हुआ हैं , क्योंकि कागजी नोटों में लेन-देन, गिनती तथा जमा आदि करने की बहुत सुविधा रहती हैं।

7. एकरुपता - एक ही वर्ग की मुद्रा का रुप , रंग और आकार-प्रकार समान होता हैं , जैसे कि एक रुपये के नोट अलग आकार व रंग के , दो रुपये के नोट दूसरे आकार-प्रकार , रंग आदि के होते हैं। इससे मुद्रा व्यवस्था बहुत वैज्ञानिक बन जाती हैं और सभी लोग भुगतान करने में सुविधा अनुभव करते हैं।

8. जालसाजी से रक्षा - नोट का कागज प्रायः बढ़िया कागज व विशेष प्रकार की प्रेस मे छपते हैं और उन पर विशेष चिन्ह रहता हैं जो साधारण प्रेसों द्वारा अंकित नहीं हो सकता। अतः जाली नोटों का पकड़ा जाना बहुत सरल होता हैं।

9. उत्पत्ति साधनों का पूर्ण उपयोग सम्भव होना - धातुमान की प्रवृत्ति संकुचन की होती हैं। चूंकि धातुमान के अन्तर्गत धातु की उपलब्धि सीमित होने के कारण मुद्रा की न्यूनता रहती हैं। इसलिए उत्पादन बढ़ाने के लिए , बनाये गये कार्यक्रम के लिए वित्त का अभाव होता हैं और फलस्वरुप उत्पत्ति के साधनों का पूर्ण प्रयोग नहीं हो पाता। लेकिन पत्र मुद्रामान के अन्तर्गत घाटे की वित्त व्यवस्था के द्वारा उत्पादन कार्यक्रमों के लिए पर्याप्त धन जुटा लिया जाता हैं, जिससे साधनों का पूर्ण उपयोग करना सम्भव होता हैं।

3.5.2 पत्र मुद्रामान के दोष (Demerits of Paper Currency Standard)

पत्र-मुद्रामान के निम्नलिखित दोष भी हैंः

1. सीमित कार्य-क्षेत्र - पत्र मुद्रामान के अन्तर्गत निकाले गये नोट अपने-अपने देश में ही लेन-देन के लिए उपयोगी होते हैं। ये विदेशों में उपयोगी नहीं होते।

2. स्वयं संचालकता नहीं - पत्र मुद्रामान प्रायः एक प्रबन्धित मान हैं अर्थात् देश के केन्द्रीय बैंक को कागजी मुद्राएं निकालने में सरकार द्वारा बनाये गये नियमों का पालन करना पड़ता हैं और मुद्रा की मात्रा , समय आदि का भी ध्यान रखना होता हैं।

3. एक देश की अस्थिरता का दूसरे देशों पर प्रभाव - स्वर्णमान की भांति ही प्रबन्धित पत्र मुद्रामान के अन्तर्गत भी एक देश का आर्थिक संकट दूसरे देशों की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता हैं।

4. विमुद्रीकरण का भय - पत्र मुद्रामान का एक गम्भीर दोष यह हैं कि सरकार जब चाहे किसी वर्ग के नोटों को रद्द करने की घोषणा कर सकती हैं , जैसा कि भारत सरकार ने 1946, 1978 और 2016 में किया था। इससे अनेक लोगों को बहुत हानि उठानी पड़ती हैं।

5. मूल्य में कमी के दुष्परिणाम - पत्र मुद्रा की अधिक निकासी कर दिये जाने पर मुद्रा का मूल्य देश में और देश से बाहर कम हो जाता हैं , जिसके कई दुष्परिणाम होते हैं , जैसे (1) जनता का मुद्रा पर से विश्वास घटना , (2) वस्तुओं के मूल्यों में निरन्तर उतार-चढ़ाव होना , (3) बचत-प्रवृत्ति घटना एवं (4) विदेशी व्यापार में बा धा पड़ना।

6. विदेशी विनिमय दरों में घट-बढ़- चूंकि इस मुद्रा व्यवस्था में देश की मुद्रा का सम्बन्ध किसी भी धातु से नहीं होता, इसलिए विदेशी विनिमय दरों में उतार-चढ़ाव की कोई सीमा नहीं होती , जैसे कि स्वर्णमान के अन्तर्गत स्वर्ण बिन्दुओं की सीमा में ही उतार-चढ़ाव होते हैं।

7. आन्तरिक कीमत स्तर स्थिर न रहना - पत्र मुद्रा का अपना कोई मूल्य स्वतंत्र या निहित मूल्य नहीं होता। अतः इसका मूल्य घटने की कोई सीमा नहीं होती और संकटकाल में तो वह शून्य तक घट सकता हैं। इस प्रकार , आन्तरिक कीमत स्तर में भी बहुत उथल-पुथल रहती हैं और वह स्थिर नहीं रह पाता।

8. मुद्रा प्रसार का भय - पत्र मुद्रामान का सबसे गम्भीर दोष यह हैं कि इसमें मुद्रा प्रसार का भय रहता हैं। मुद्रा के पीछे सरकार के कोई कोष तो रखना नहीं पड़ता। अतः अनेक बार सरकारी अपनी गलत नीतियों को छिपाने के लिए या अपनी उचित-अनुचित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिक मात्रा में मुद्रा निकाल देती हैं। इस प्रकार के मुद्रा प्रसार से मूल्यों में वृद्धि हो जाती हैं और जनता को कष्ट होता हैं।

यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये तो मुद्रा प्रसार का कारण पत्र-मुद्रामान नहीं बल्कि गलत सरकारी नीतियाँ होती हैं। यदि सरकार मुद्रा की मात्रा पर उचित नियंत्रण रखने का प्रयत्न करे तो मुद्रा प्रसार नहीं हो सकता। अतः मुद्रा प्रसार के लिए पत्र मुद्रामान नहीं सरकारी नीति दोषी होती हैं।

9. विदेशी भुगतान में कठिनाई - पत्र मुद्रामान का एक दोष यह बताया जाता हैं कि इससे विदेशी भुगतान में कठिनाई रहती हैं। यह बात सही हैं कि पत्र मुद्रामान विदेशी भुगतान के लिए उपयोगी नहीं हैं , किन्तु किसी भी मुद्रामान का मूल उद्देश्य अपने देश में लेन-देन को सुविधजनक बनाना होता हैं। विदेशी भुगतान की व्यवस्था व्यापारिक बैंकों की कुशलता तथा विदेशी मुद्रा की आय पर निर्भर करती हैं , मुद्रामान पर नहीं। यदि देश से पर्याप्त माल निर्यात होता रहे तो विदेशी भुगतान में कोई कठिनाई नहीं होगी।

3.6 सारांश (Summary)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि मुद्रा की विभिन्न प्रकार कौन-कौन से हैं तथा इसके कार्यो के आधार पर इसका वर्गीकरण किस प्रकार किया जा सकता हैं।
मुद्रा का वर्गीकरण को तीन भागों में किया जाता हैं- प्रकृति के आधार पर , वैधानिक मान्यता के आधार पर , तथा पदार्थ के आधार पर।

3.7 शब्दाबली (Glossary)

- **वस्तु विनिमय (Barter)** - वस्तुओं के बदले में वस्तुओं का आदा-प्रदान।
- **बैंक मुद्रा (Bank Currency)** - व्यापारिक बैंकों द्वारा सृजित माँग जमा।
- **बाह्य मुद्रा (External Money)** - सरकारी ऋण पर आधारित मुद्रा।
- **आन्तरिक मुद्रा (Internal Money)** - आर्थिक इकाइयों के ऋण पर आधारित मुद्रा।
- **अर्द्ध मुद्रा (Semi Currency)** - ऐसी परिसम्पतियॉ , जो तरलता का गुण रहते हुये भी स्पष्ट रूप में मुद्रा नहीं कही जा सकती

3.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्न व उनके उत्तर (Objective Type Questions and their Answers)

1. मुद्रा का सामान्य अर्थ हैं।

(क) करेन्सी

(ख) करेन्सी तथा बैंको की सम्पूर्ण जमा राशियॉ

(ग) करेन्सी तथा मंाग जमा राशियॉ

(घ) सम्पूर्ण चलनिधि

2. मुद्रा का अनिवार्य कार्य क्या हैं-

(क) मूल्य मापन

(ख) मूल्य संचय

(ग) मूल्य हस्तान्तरण

(घ) साख व्यवस्था का आधार

3. मुद्रा एक अच्छा.........................हैं, किन्तु बुरा......................।

4. नैप अर्थशास्त्री ने मुद्रा की............................परिभाषा का प्रतिपादन किया।

5. मूल्य मापक मुद्रा का............................कार्य हैं।

6. मूल्य संचय मुद्रा का..............................कार्य हैं।

7. वर्तमान समय में मुद्रा अर्थ विज्ञान की धुरी हैं। सही/गलत

8. रावर्टसन ने मुद्रा के लिये संकुचित दृष्टिकोण की परिभाषा दी। सही/गलत

उत्तर - 1.(ख) 2.(क) 3.सेवक, स्वामी 4.वैधानिक 5.प्राथमिक 6.सहायक 7.सही 8.सही

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- डा0 जे0सी0 पन्त एवं जे0पी0 मिश्रा - अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
- डा0 टी0टी0 सेठी - मौद्रिक अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
- डा0 टी0टी0 सेठी - समष्टि अर्थशास्त्र
- डा0 एम एल झिंगन - मौदिक अर्थशास्त्र

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful/Useful Reading Material)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Macro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Ahuja, H.L. (2010) ***Principles of Macro Economics***, S. Chand and Company Ltd. New Delhi.
- Colander, D. C., (2008) ***Economics***, McGraw Hill Education, New Delhi.
- Mishra, S.K. and V.K. Puri (2003) ***Modern Macro Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1.मुद्रा का वर्गीकरण कितने प्रकार से किया जा सकता हैं?

2.मौद्रिकमान किसे कहते हैं?

3.धातुमान के प्रकार बताइए?
4.स्वर्णमान किसे कहते हैं?
5.पत्रमान किसे कहते हैं?

इकाई-4 मुद्रा के मूल्य निर्धारण के परम्परागत सिद्धान्त (फिशर एवं कैम्ब्रिज आदि)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)
4.2 उद्देश्य (Objectives)
4.3 मुद्रा के मूल्य का अर्थ (Meaning of Value of Money)
4.4 मुद्रा का मूल्य के निर्धारण तत्व (Basis of Value of Money)
  4.4.1 मुद्रा की मांग (Demand for Money)
  4.4.2 मुद्रा की पूर्ति (Supply of Money)
4.5 मुद्रा के मूल्य निर्धारण सम्बन्धी सिद्धान्त (Theories Related to Value of Money)
4.6 मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त (Quantity Theory of Money)
  4.6.1 फिशर का लेन-देन समीकरण (Fisher's Transaction Coefficient)
  4.6.2 फिशर समीकरण की मान्यताएँ (Assumption of Fisher's Equation)
  4.6.3 समीकरण की व्याख्या (Explanation of Equation)
  4.6.4 फिशर सिद्धान्त की आलोचानाएँ (Criticisms of Fisher's Theory)
4.7 कैम्ब्रिज समीकरण या नकद शेष समीकरण (Cambridge Equation or Cash Balance Equation)
  4.7.1 कैम्ब्रिज अर्थशास्त्रि यों द्वारा दो मौलिक परिवर्तन (Two basic Changes made by Cambridge Economists)
  4.7.2 नकद शेष समीकरण के विभिन्न रूपांतर (Different Variations of Cash Balance Equation)
4.8 फिशर एवं कैम्ब्रिज समीकरण की तुलना (Comparison of Fisher and Cambridge Equations)
4.9 कैम्ब्रिज सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of Cambridge Theory)
4.10 सारांश (Summary)
4.11 शब्दावली (Glossary)
4.12 अभ्यास प्रश्न उत्तर (Practice Question Answer)
4.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
4.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful / Usefull Reading Materials)
4.15 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

मुद्रा वस्तुतः एक ऐसी वस्तु है जिसके माध्यम से अन्य वस्तुओं का क्रय किया जा सकता है। वस्तुओं के क्रय के साथ-साथ ऋणों का भुगतान भी बिना किसी बाधा के संभव हो जाता है। मुद्रा की क्रयशक्ति उसके द्वारा क्रय किये गये वस्तुओं से निर्धारित होती है। प्रस्तुत इकाई में मुद्रा के मूल्य एवं उसके निर्धारण सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्तों को विस्तृत रूप से समझाने का प्रयास किया गया है।

यह कहना उचित होगा कि मुद्रा का मूल्य उसकी क्रय शक्ति होती है। प्रस्तुत इकाई में मुद्रा का मूल्य , वस्तु का मूल्य एवं मुद्रा की मात्रा के मध्य सम्बन्ध को दृष्टिगत किया गया है। मुद्रा के मूल्य निर्धारण सिद्धान्तों को विस्तृत रूप से समझने के लिए है विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दिये गये समीकरणों का उल्लेख किया गया है। परन्तु इन सिद्धान्तों से पूर्व मुद्रा के आन्तरिक एवं बाह्य मूल्य के मध्य अन्तर का उल्लेख भी महत्वपूर्ण है।

4.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- ✓ मुद्रा के मूल्य से अवगत हो सकेंगे।
- ✓ मुद्रा के आन्तरिक एवं बाह्य मूल्य को समझ सकेंगे।
- ✓ मुद्रा के मूल्य निर्धारक तत्वों से अवगत हो सकेंगे।
- ✓ मुद्रा की चलन गति से को समझ सकेंगे।
- ✓ मुद्रा के मूल्य निर्धारण सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्तों से अवगत हो सकेंगे।
- ✓ फिशर एवं कैंब्रिज सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।

4.3 मुद्रा के मूल्य का अर्थ (Meaning of Value of Money)

अर्थशास्त्रियों द्वारा मुद्रा के मूल्य के सम्बन्ध में दो मत प्रस्तुत किये गये है। पहले मत के अनुसार जो एण्डरसन (Anderson) एवं उनके समर्थकों द्वारा पुष्ट किया गया है , मुद्रा के निरपेक्ष मूल्य पर जोर किया गया है। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार मुद्रा के दो स्वरूप है- धातु मुद्रा एवं पत्र मुद्रा। अतः सोने , चाँदी और बहुमूल्य धातु से बनी मुद्रा का मूल्य अधिक होगा जबकि पत्र मुद्रा या कागज मुद्रा का मूल्य न के बराबर ही होगा।

वही दूसरी ओर कुछ अथ्रशास्त्रियों का मत है कि मुद्रा का मूल्य उसकी क्रयशक्ति (Purchasing Power) के द्वारा निर्धारित होगा। अर्थात मुद्रा की इकाई के बदले में कितनी वस्तुओं और सेवाओं का क्रय किया जा सकता है, यही मुद्रा की क्रयशक्ति है और यही मुद्रा का मूल्य है।

प्रो. रॉबर्टसन ने अपने पुस्तक ”Money” में मुद्रा के मूल्य के सम्बन्ध में लिखा है , *“मुद्रा की अपनी कोई उपयोगिता नहीं होती है। इसकी उपयोगिता इसके विनिमय मूल्य (Exchange Value) से उत्पन्न होती है। (By value of money, we mean the amount of things is general which will be given in exchange for a unit of money)”*

सामान्य रूप से सबसे प्रचलित अर्थ मुद्रा के मूल्य की मुद्रा की क्रयशक्ति ही है अर्थात् मुद्रा की एक इकाई के बदले में कितनी वस्तुएँ तथा सेवाएँ प्राप्त की जा सकती है। मुद्रा के मूल्य के विभिन्न वर्षो के तुलनात्मक अध्ययन से माप सूचकांकों के अध्ययन में सहायता मिलती है। यही क्रय शक्ति ही मुद्रा का मूल्य है।

मुद्रा के मूल्य के संकुचित अर्थ से अभिप्राय मुद्रा का आन्तरिक मूल्य ही है। परन्तु विस्तृत अर्थ में मुद्रा के मूल्य का तात्पर्य मुद्रा के इस आन्तरिक मूल्य के साथ-साथ उसके बाह्य मूल्य (External Value) से भी है। इसे दृष्टिगत रखते हुए मुद्रा के मूल्य को दो भागो में बांटा जा सकता है।

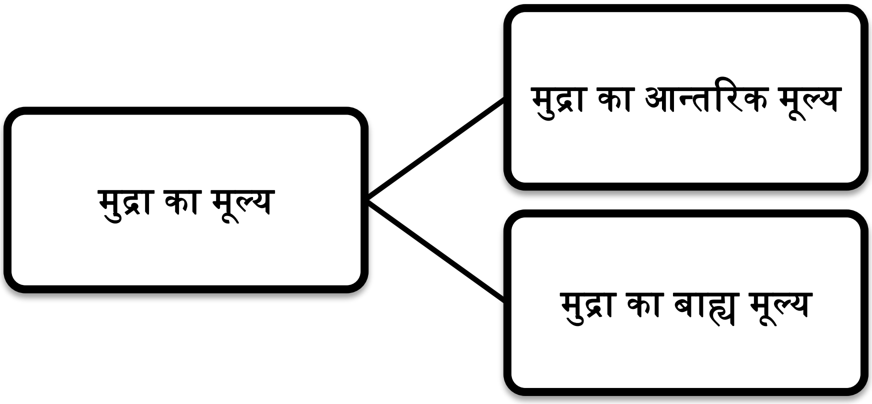

- **मुद्रा का आन्तरिक मूल्य-** जब अर्थव्यवस्था में मूल्य या कीमत स्तर के आधार पर वस्तुओं व सेवाओं की खरीदी गयी मात्रा का उल्लेख होता है तो सार रूप में यह मुद्रा का आन्तरिक मूल्य है। यदि मुद्रा की एक इकाई से वस्तुओं एवं सेवाओं की अधिक मात्रा का क्रय कर सकते है तो हम यह कहते है कि मुद्रा का मूल्य अधिक है और विलोमशः। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मुद्रा के मूल्य एवं वस्तुओं एवं सेवाओं के सामान्य मूल्य में विपरीत संबंध है। कीमत स्तर बढ़ने पर मुद्रा का मूल्य गिरता है और कीमत स्तर कम होने पर मुद्रा का मूल्य बढ़ता है। इस सम्बन्ध को प्रतीकात्मक रूप से इस प्रकार भी प्रस्तुत किया जा सकता है-

$$M_V = \frac{1}{P}$$

यहाँ M_V = मुद्रा का मूल्य एवं P = सामान्य कीमत स्तर।

- **मुद्रा का बाह्य मूल्य-** मुद्रा के बाह्य मूल्य से आशय मुद्रा की एक इकाई के बदले किसी देश की कितनी मुद्रा प्राप्त हो जाने से है अर्थात किसी देश की मुद्रा की एक इकाई अन्य देश के मुद्रा की कितनी इकाई खरीद सकती है। अन्य शब्दों में इसे **विदेशी विनिमय दर** कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि डालर की एक इकाई प्राप्त करने के लिए 60 रूपये देने पड़ते है। तो विनिमय दर होगी $1 = Rs. 60। यह भी कहा जा सकता है कि एक डालर का मूल्य 60 रूपये है। अतः अमेंरिका का 1 डालर भारत में 60 रूपये की वस्तुओ एवं सेवाओं का क्रय कर सकता है। इससे यह भी स्पष्ट हो गया है कि मुद्रा के बाह्य एवं आन्तरिक मूल्य में कोई मौलिक अंतर नहीं है।

उपरोक्त विभिन्न मतों के अतिरिक्त मुद्रा के मूल्य का एक अन्य प्रचलित अर्थ है- **ब्याज की दर** अर्थात मुद्रा को , एक निश्चित अवधि, प्रायः एक वर्ष के लिए, उधार देने पर कितनी रकम मिल सकती है। प्रायः इस अर्थ को बहुत कम प्रयोग किया जाता है।

विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा मुद्रा के मूल्य की विभिन्न परिभाषाएं दी गयी है-

किनले (Kinley) के अनुसार *"मुद्रा का मूल्य सीमान्त विनिमय द्वारा प्राप्त हुयी सेवाओं के पंजीकृत मूल्य के बराबर होता है। (The value of money is the capitalized value services rendered in the marginal exchange)"*

प्रो. चैण्डलर (Prof. Chandler) के अनुसार *"मुद्रा के मूल्य का अर्थ है- मुद्रा की क्रय शक्ति- प्रत्येक इकाई की वस्तुओं व सेवाओं को प्राप्त करने की क्षमता। (By the term the value of money is meant the purchasing power of money- the ability of each unit to command goods and excesses in exchange)"*

सारांश रूप में जैसा कि केन्स ने कहा है कि किसी विशेष दशा में मुद्रा की क्रय शक्ति वस्तु ओं और सेवाओं की उस मात्रा पर निर्भर करता है, जो मुद्रा की एक इकाई से क्रय की जा सकती है। कुछ अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा एवं अन्य वस्तुओं में कोई अंतर नहीं माना और अन्य वस्तुओं की ही भांति वे मुद्रा को भी एक वस्तु के रूप में मानते थे। उनके अनुसार जिस प्रकार एक वस्तु का मूल्य उसकी मांग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है उसी प्रकार मुद्रा का मूल्य भी उसकी मांग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है।

4.4 मुद्रा का मूल्य के निर्धारण तत्व (Basis of Value of Money)

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि मुद्रा के मूल्य के दो निर्धारक तत्व है

- **मुद्रा की मांग**
- **मुद्रा की पूर्ति**

4.4.1 मुद्रा की मांग (Demand for Money)

मुद्रा की मांग विनिमय के माध्यम के लिए की जाती है। यह एक **स्थैतिक** विचारधारा है। **प्रावैगिक** विचारधारा के अनुसार मुद्रा की मांग मूल्य संचय के लिए की जाती है।

स्थैतिक दशाओं के अन्तर्गत *"मुद्रा की लेन देन मांग पर राष्ट्रीय आय के आकार का दो आयो के मध्य अवधि का भुगतान प्रणाली का और साख के प्रयोग की सीमा जैसे तत्वो का प्रभाव पड़ता है।"*

उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय आय का आकार जितना बड़ा होगा, मुद्रा की सौदा मांग उतनी हो अधिक होगी। प्रावैगिक दशाओं में मुद्रा की माँग से आशय उस नकद राशि से है जो व्यक्ति अपने पास रखना चाहता है। **लार्ड कीन्स** के अनुसार, मुद्रा की मांग से अभिप्राय तरलता अथवा नकदी की मांग से है। इस दृष्टिकोण को नकद शेष दृष्टिकोण (Cash Balance Approach) भी कहा जाता है जिसे आगे विस्तृत रूप से सिद्धान्त के रूप में समझाया भी गया है।

4.4.2 मुद्रा की पूर्ति (Supply of Money)

मुद्रा की पूर्ति से आशय राष्ट्रीय मुद्रा के उस कुल स्टॉक से है, जिस पर देश की जनता का स्वामित्व होता है। इस दृष्टि से केन्द्रीय बैंक, व्यापारिक बैंकों, केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकारों की नकद राशियों को मुद्रा पूर्ति का अंग नहीं माना जाता क्योंकि ये देश में वास्तविक प्रचलन में नहीं होती।

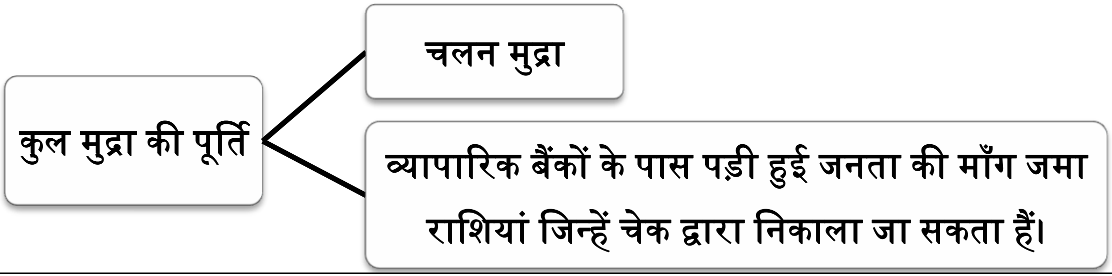

4.5 मुद्रा के मूल्य निर्धारण सम्बन्धी सिद्धान्त (Theories Related to Value of Money)

मुद्रा के मूल्य निर्धारण को लेकर विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अलग-अलग सिद्धान्त प्रस्तुत कि ए। इसे एक चित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है-

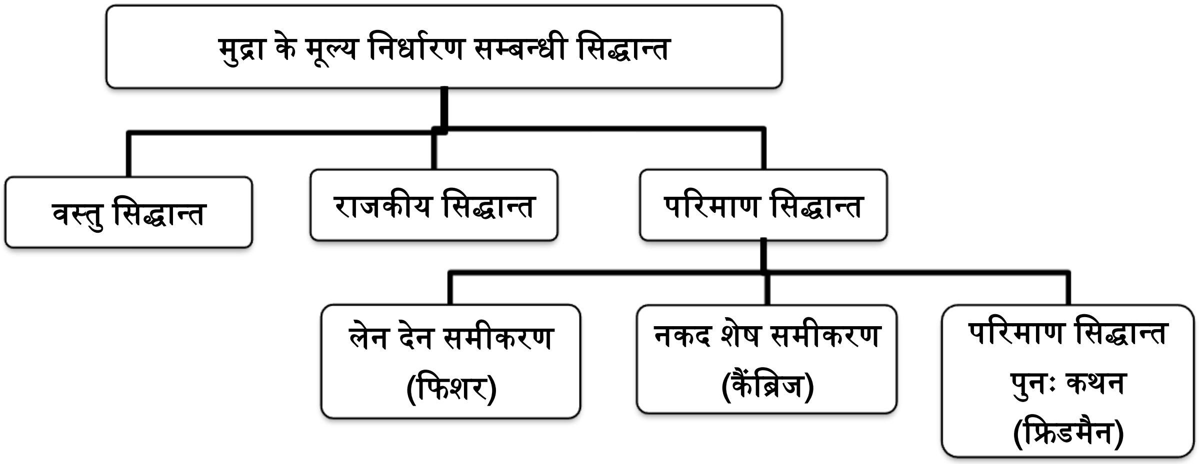

4.6 मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त (Quantity Theory of Money)

प्रस्तुत इकाई में हम मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को दो दृष्टिकोणों का अध्ययन करेगें।

- **लेन-देन समीकरण - फिशर**
- **नकदी शेष समीकरण- कैम्ब्रिज**

मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन क्यों होते है ? इस सिद्धान्त के माध्यम से इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है। मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त बहुत पुराना है। कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार इसका विवेचन जॉन बोडिन (Jean Bodin 1530-1596) द्वारा किया गया। कुछ का विचार है कि 15 वीं सदीं के इटली के विचारक डेवन जट्टी (Davan Zatti) ने इस सिद्धान्त को जन्म दिया, किन्तु इस सिद्धान्त की क्रमबद्ध व्याख्या एक अंग्रेजी विचारक जॉन लॉक द्वारा 1691 की गयी। 1752 में **डेविड हयूम (David Hume)** द्वारा इसकी व्याख्या की गयी। तत्पश्चात् अनेक अर्थशास्त्री जैसे एडम स्मिथ, रिकार्डो, जे.एस. मिल ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों में फिशर ने इस सिद्धान्त को एक समीकरण का रूप प्रदान कर प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के मत का समर्थन किया। इसके बाद पीगू और मिल्टन फ्रीडमैन ने इस सिद्धान्त की नवीन रूप में व्याख्या की। इन प्राचीन वर्णनों में मुद्रा की मात्रा तथा मूल्य में पारस्परिक संबंध की व्याख्या की गयी थी, परन्तु यह नहीं बताया गया था कि मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन के परिणामस्वरूप मुद्रा के मूल्य का परिवर्तन किस अनुपात में होगा। सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि मुद्रा का मात्रा और मूल्य के पारस्परिक संबंध को आनुपातिक संबंध नहीं समझा गया था।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो (Classical Economists) ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को स्पष्ट रूप प्रदान किया। उन्होंने यह बातया कि मुद्रा की मात्रा मूल्य के बीच विपरीत सम्बन्ध है साथ ही यह संबंध समानुपातिक भी है।

जे.एस. मिल (J.S. Mill) के अनुसार *"यदि अन्य बातें यथा स्थिर रहें तो मुद्रा के मूल्य में इसके परिमाण की विपरीत दशा में परिवर्तन होते है। परिमाण की प्रत्येक वृद्धि मूल्य को उसी अनुपात में घटाती है और परिमाण की प्रत्येक कमी उसी अनुपात में बढ़ाती है। (The value of money, other things being the same, varies inversely as its quantity; every increase of quantity lowers the value and every dimunition raising it in a ratio exactly equivalent)"*

एफ. डब्लू. टॉसिंग (F.W. Taussig) के अनुसार, यदि मुद्रा की मात्रा दुगुनी कर दी जाय तो अन्य बातों के समान रहने पर कीमते भी पहले की तुलना में दुगुनी हो जायेगी और मुद्रा का मूल्य पहले की तुलना में आधा ही जायेगा। इसके विपरीत, यदि मुद्रा की मात्रा आधी कर दी जाय तो अन्य बातें समान रहने पर कीमते भी पहले की तुलना में आधी हो जायेगी और मुद्रा का मूल्य पहले की तुलना में दुगुना हो जायेगा।

4.6.1 फिशर का लेन-देन समीकरण (Fisher's Transaction Coefficient)

मुद्रा परिमाण सिद्धान्त के नकद लेन-देन दृष्टिकोण की व्याख्या अमेरिका के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **इरविंग फिशर (Irving Fisher)** द्वारा की गयी है। मुद्रा को वस्तुओं और सेवाओं के लेन-देन में सर्वमान्य भुगतान के रूप में देखने के कारण इस दृष्टिकोण को नकद लेन-देन दृष्टिकोण कहा गया है।

फिशर ने मुद्रा को वस्तु के रूप में माना है। अतः मुद्रा का मूल्य भी वस्तु के मूल्य की भांति ही निर्धारित होता है। अतः इस विचित्र वस्तु के रूप में मुद्रा का मूल्य भी उसकी मांग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। मुद्रा की पूर्ति से तात्पर्य अर्थव्यवस्था में मुद्रा की कुल मात्रा के प्रचलन से है जबकि मुद्रा के मांग से तात्पर्य उन समस्त वस्तुओं व सेवाओं की उस मात्रा से है , जो किसी समय क्रय-विक्रय के लिए प्रस्तावित की जाती है। अतः वस्तुएं तथा मुद्रा की मात्रा एक रूप में एक दूसरे की पूर्ति व मांग है।

मुद्रा की पूर्ति (Supply of Money)- फिशर के अनुसार मुद्रा की पूर्ति का अर्थ अर्थव्यवस्था में किसी समय मुद्रा की उस कुल मात्रा से है जो वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने के लिए प्रचलन में विद्यमान है। मुद्रा की पूर्ति में मुद्रा की कुल मात्रा के साथ उसका प्रचलन वेग विद्यमान है। मुद्रा की पूर्ति में मुद्रा की कुल मात्रा के साथ उसके प्रचलन वेग (Velocity of Circulation) को भी सम्मिलित किया जाता है।

मुद्रा का प्रचलन वेग (Velocity of Money)- मुद्रा के प्रचलन वेग से तात्पर्य है कि एक निश्चित समयवधि (सामान्य रूप में एक वर्ष) में वस्तुओं वे सेवाओं को खरीदने में औसतन मुद्रा की किसी निश्चित मात्रा का कितनी बार प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि एक 10 रूपये का नोट एक वर्ष में 20 बार प्रयोग किया गया तो उसकी चलन वेग 200 होगा। चूँकि आर्थिक क्रियाओं के चक्रीय प्रवाह (Circular Flow) में मुद्रा की कोई एक निश्चित इकाई एक से अधिक बार प्रयुक्त होती है तो उस मुद्रा का चलन वेग होना स्वाभाविक है। फिशर के अनुसार मुद्रा के प्रचलन वेग के संबंध में विशेष ध्यान देने की बात यह है कि यह मुद्रा की विभिन्न इकाइयों के अलग-अलग प्रचलन वेग को न दिखाकर अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण मुद्रा के औसत प्रचलन वेग को दिखाती है।

अतः

मुद्रा की पूर्ति = मुद्रा की मात्रा × मुद्रा का चलन वेग

$$\mathbf{M_s = M \times V}$$

जहां

M_s = मुद्रा की पूर्ति

M = मुद्रा की मात्रा,

V = मुद्रा का चलन वेग

मुद्रा की मांग (Demand for Money)- मुद्रा की मांग से तात्पर्य उस मात्रा से है , जो बाजार में विक्रय हेतु प्रस्तावित की जाती है। मुद्रा की मांग अर्थव्यवस्था की कुल व्यापारिक वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा के रूप में दिखायी जा सकती है। अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण वस्तुओं ओर सेवाओं के मूल्य को ज्ञात करके मुद्रा की मांग का सही माप निकाला जा सकता है। यदि कुल लेन-देन की मात्रा के लिए T का उपयोग किया जाए तथा इनकी औसत कीमत के लिए P का तो किसी समयावधि में मुद्रा की मांग को निम्न रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है-

मुद्रा की मांग = सामान्य कीमत स्तर × वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग

$$\mathbf{M_D = P \times T}$$

जहां

M_D = मुद्रा की मांग

P = सामान्य कीमत स्तर,

T = वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग,

PT वस्तुओं एवं सेवाओं के कुल लेन-देन से विक्रेता की कुल मौद्रिक प्राप्ति को भी दर्शाता है।

फिशर का विनिमय समीकरण (Fisher's Equation of Exchange)

मुद्रा के मूल्य के निर्धारण के लिए फिशर ने मुद्रा की पूर्ति तथा मांग से सम्बन्धित विनिमय का समीकरण प्रस्तुत किया। समीकरण यह दिखाता है कि मुद्रा का मूल्य वहां निर्धारित होता है जहां उसकी पूर्ति उसकी मांग के बराबर होती है।

इस प्रकार मुद्रा की पूति = मुद्रा की मात्रा

$$\mathbf{M \times V = P \times T}$$

M = प्रचलन में मुद्रा की मात्रा

V = मुद्रा का चलन वेग

P = सामान्य कीमत स्तर

T = वस्तुओं और सेवाओं की कुल मात्रा या व्यापार की कुल मात्रा

फिशर का संशोधित समीकरण (Fisher's Improved Equation) -उपर्युक्त समीकरण की एक अपूर्णता है कि इसमें साख मुद्रा को सम्मिलित नहीं किया गया। वर्तमान में साख मुद्रा विनिमय माध्यम के रूप में महत्वपूर्ण स्थान रखते है। अतः फिशर ने अपने समीकरण को संशोधित करते हुए निम्नलिखित समीकरण प्रस्तुत किया।

$$\mathbf{MV + M^1V^1 = PT}$$

$$\mathbf{\frac{MV + M^1V^1}{T} = P}$$

$\mathbf{M^1}$ = साख मुद्रा की मात्रा

$\mathbf{V^1}$ = साख मुद्रा का चलन वेग

मुद्रा मूल्य का उपर्युक्त समीकरण वास्तव में एक स्वयंसिद्ध (Axiom) है जो प्रत्येक दशाओ में लागू होता है।

4.6.2 फिशर समीकरण की मान्यताएँ (Assumption of Fisher's Equation)

फिशर के परिमाण सिद्धान्त की प्रमुख मान्यताएं इस प्रकार से है-

1. व्यापार की मात्रा अथवा मुद्रा की मांग में कोई परिवर्तन न हो।
2. वस्तु विनिमय द्वारा सम्पन्न होने वाले सौदो में कोई परिवर्तन न हो।
3. साख मुद्रा तथा चलन मुद्रा के अनुपात में कोई परिवर्तन न हो।
4. मुद्रा की चलन गति में कोई परिवर्तन न हो।
5. मूल्य स्तर (P) निष्क्रिय रहता है। अर्थात M, M^1, T को प्रभावित करने की अपेक्षा स्वयं उनके द्वारा प्रभावित होता है।
6. मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन होने पर केवल और केवल P में परिवर्तन होता है।

4.6.3 समीकरण की व्याख्या (Explanation of Equation)

फिशर द्वारा दिया गया संशोधित समीकरण $MV + M^1V^1 = PT$ मुद्रा के मूल्य निर्धारण पर प्रकाश डालता है। इस समीकरण में V, V^1 और T को स्थिर मान लिया गया है। स्वयं फिशर के ही शब्दों में अल्पकाल में व्यवसाय अथवा मुद्रा द्वारा किया गया कार्य यथास्थिर रहता है। वस्तु विनिमय तथा मुद्रा विनिमय के अनुपात में कोई परिवर्तन नहीं होता और वस्तुओं की चलन गति भी परिवर्तित नहीं होती।

फिशर द्वारा दी गयी मान्यताओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि

M = P

$\Delta M \rightarrow P$

$\Delta M = \Delta P$

अतः यह स्पष्ट है कि P में होने वाले परिवर्तन केवल M परिवर्तनों के कारण ही होते है। P एवं M में सीधा एवं आनुपातिक संबंध है।

$$2MV = 2PT$$

अर्थात् यदि मुद्रा की पूर्ति से बढ़कर दुगुनी होते हुए 2MV हो जाती है तो मुद्रा की मांग (PT) भी दुगुनी होकर 2PT हो जायेगी। चूंकि (वस्तुओं एवं सेवा ओं का मात्रा) स्थिर है , अतः मुद्रा की मांग बढ़ने का एक मात्र अर्थ है कि मूल्य स्तर बढ़ जायेगे।

M तथा P में सीधा संबंध है जबकि मुद्रा के मूल्य में विपरीत संबंध है। तात्पर्य कि मुद्रा की मात्रा बढ़ने पर कीमत स्तर (P) बढ़ जाता है जबकि मुद्रा का मूल्य घट जाता है। मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर में प्रत्यक्ष तथा आनुपातिक संबंध है (Direct and Proportional) जबकि मुद्रा के मुल्य में ठीक उसी रूप में विपरीत संबंध है। यदि मुद्रा की मात्रा दुगुनी हो जाय तो कीमत स्तर भी दुगुना हो जायेगा और मुद्रा का मूल्य आधा रह जायेगा और विलोमशः। वस्तु ओं ओर सेवा ओं (T) की मात्रा बढ़ने से मूल्य स्तर गिर जाता है और मुद्रा का मूल्य बढ़ जाता है। T के कम होने पर ठीक उसका उलटा प्रभाव होगा। गैर मौद्रिक शक्तियों का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इन निष्कर्षो को एक रेखाचित्र के माध्यम से भी प्रदर्शित किया जा सकता है मुद्रा की मात्रा एवं कीमत स्तर के बीच आनुपातिकता का नियम दिखाया जा सकता है।

चित्र में OX अक्ष पर मुद्रा का मात्रा एवं OY अक्ष पर कीमत स्तर लिया गया है। मुद्रा की मात्रा M_1 होने पर कीमत स्तर OP_1 है। मुद्रा की मात्र में वृद्धि OM_2 होने पर कीमत स्तर भी उतना ही बढ़कर OP_2 हो जाता है यह वृद्धि पूर्णतः आनुपाति क है। इसी प्रकार मुद्रा की मात्रा OM_1 से घटकर उसी अनुपात में OP हो जाती है। A, B, C बिन्दुओं कीमत देने पर हमें OL रेखा प्राप्त होती है जो मुद्रा की मात्रा एवं कीमत के पारस्परिक संबंध को दर्शाती हैं

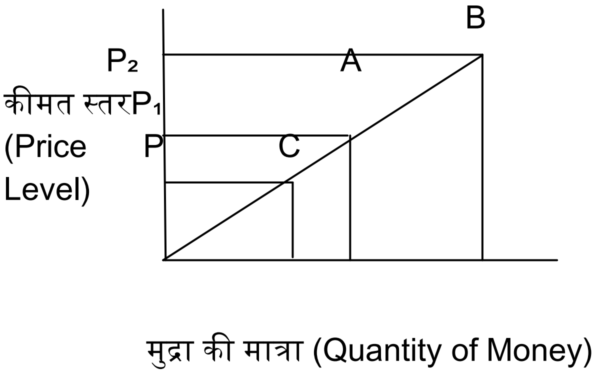

चित्र

4.6.4 फिशर सिद्धान्त की आलोचानाएँ (Criticisms of Fisher's Theory)

केन्ज एवं केन्जोन्तर अर्थशास्त्रियों जैसे **क्राउथर, हॉम** आदि अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न प्रकार से आलोचनाएँ की-

- **एक समानार्थक धारणा (A Tautological Concept)**- केन्ज के शब्दों में, "मुद्रा का परिमाण सिद्धांत एक स्वयंसिद्ध सत्य है, जो सभी परिस्थितियों में लागू होता है, यद्यपि इसका कोई महत्व नहीं है।" यह सिंद्धान्त ऐसी कोई बात नहीं बताता जिसे लोग पहले से नहीं जानते। परन्तु यह सिद्धान्त हमें यह नहीं

बताता कि मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन होने के कारण कीमत स्तर में होने वाले परिवर्तन की वास्तविक प्रक्रिया क्या है तथा इन तत्वों में से कौन सा तत्व कारण है और कौन सा परिणाम ? यह तो केवल एक समानता ही बताता है।

- **अवास्तविक मान्यताएँ (Unrealistic Assumptions)-** यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि कीमत स्तर पर केवल मुद्रा की मात्रा में होने वाले परिवर्तन का ही प्रभाव पड़ता है। V, V^1 एवं T जैसे तत्वों को समीकरण में स्थिर मान लिया गया है। कीमत स्तर पर उसका कोई प्रभाव न पड़ने की मान्यता अवास्तविक लगती है। वास्तविक जीवन में ये तत्व कभी नहीं रहते। और इनका कीमत स्तर में भी परिवर्तन होता है।
- **एक पक्षीय सिद्धान्त (One Sided Theory)-** इस सिद्धान्त में मुद्रा की मांग की अपेक्षा मुद्रा की पूर्ति पर अधिक बल दिया गया है। फिशर ने मुद्रा की मांग को स्थिर मान लिया है। उसके अनुसार मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन करने से कीमत स्तर में परिवर्तन हो जाता है। अतः यह एकपक्षीय सिद्धान्त है।
- **विनिमय का माध्यम (Medium of Exchange)-** इस सिद्धान्त ने मुद्रा के केवल विनिमय के माध्यम कार्य को ही महत्व दिया गया है। मुद्रा के मूल्य संचय (Store of Value) कार्य की अवहेलना की गयी है।
- **चर स्वतन्त्र नहीं है (Variables not Independent)-** फिशर ने अपने सिद्धान्त में यह माना है कि V, V^1, T, M, M^1 स्वतंन्त्र चर है अर्थात् एक का दूसरे पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
- **कीमत स्तर एक निष्क्रिय तत्व नहीं है (Price level not a passive element)-** कीमत स्तर निष्क्रिय तत्व नहीं वरन् एक सक्रिय तत्व है। कीमतों में होने वाली वृद्धि से मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होती है क्योंकि जब कीमत स्तर में परिवर्तन होता है तो इसका प्रभाव व्यापार की मात्रा (T) पर पड़ता है। कीमतों में वृद्धि लाभों में वृद्धि लाती हैं परिणामस्वरूप व्यापार एवं मुद्रा की मात्रा दोनों में वृद्धि होती है।
- **व्यापार चक्रो की व्याख्या करने में असफल (Fails to explain Trade Cycles)-** क्राउथर (Crowther) के अनुसार *"परिमाण सिद्धान्त अधिक से अधिक व्यापार चक्रो के कारणों का अपूर्ण मार्गदर्शक है। (The quantity theory is at best an imperfect guide to the cause of trade cycle)"* यह सिद्धान्त यह बताने में असफल है कि तेजी के दिनों में बिना मुद्रा की मात्रा में वृद्धि किये कीमत क्यों बढ़ जाती है और मन्दी के दिनों में मुद्रा की चलन गति को स्थिर मान लेता है। पर वास्तव में मुद्रा की चलन गति में भी परिवर्तन होता है।
- **केवल पूर्ण रोजगार की स्थिति में ही लागू (Applicable only in case of full employment)-** यह सिद्धांत केवल पूर्ण रोजगार में ही लागू होता है। किन्तु केन्ज के अनुसार, अर्थव्यवस्था में अपूर्ण रोजगार की भी स्थिति पायी जा सकती है। ऐसी दशा में मुद्रा की मात्रा में वृद्धि करने पर कीमतों में नहीं , वरन् उत्पादन में वृद्धि होती है।
- **ब्याज की दर के प्रभाव की अवहेलना (It ignores the effect of rate of interest)-** यह सिद्धान्त कीमतों पर ब्याज की दर के प्रभाव को स्वीकार नहीं करता। केन्ज , हेयक, हॉट्रे के अनुसार यह धारणा गलत है कि मुद्रा की मात्रा एवं कीमत स्तर में सीधा प्रत्यक्ष संबंध है। वास्तव में मुद्रा की मात्रा में होने वाला परिवर्तन ब्याज दर को प्रभावित करता है तथा ब्याज की दर में होने वाले परिवर्तन कीमत स्तर में परिवर्तन उत्पन्न करता है। अतः मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर में प्रत्यक्ष नहीं वरन् परोक्ष संबंध है।

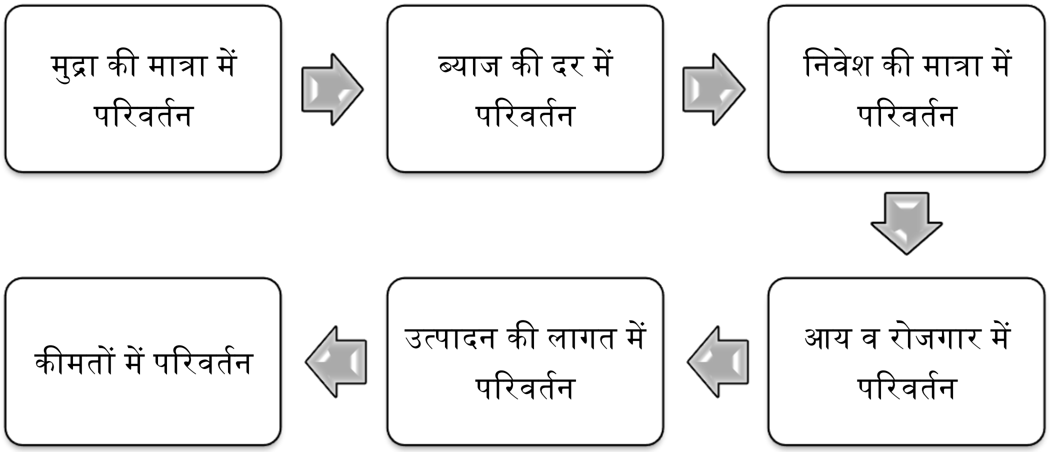

श्रीमती रॉबिन्सन के अनुसार, *"मुद्रा की मात्रा में होने वाले परिवर्तनों का बहुत अधिक महत्व है। उनका महत्व ब्याज की दर पर उनके पड़ने वाले प्रभाव पर निर्भर करता है। किन्तु जो मुद्रा का सिद्धान्त ब्याज की दर का वर्णन नहीं करता मुद्रा का सिद्धान्त कहलाने के योग्य नहीं है।"*

- **चलन गति को मापना कठिन है (Difficult to measure velocity)-** फिशर के अनुसार मुद्रा की चलन गति है मुद्रा की एक इकाई एक निश्चित समय में कितने हाथों में प्रयुक्त होती से है। परन्तु मुद्रा की चलन गति को मापना अत्यन्त जटिल है। इसकी गणना करना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त मुद्रा की कुल मात्रा जानने के लिए निजी कोषों में संचित मुद्रा को जानना आवश्यक है। जहां काला धन भी अर्थव्यवस्था में विद्यमान है यह समस्या और कठिन हो जाती है। अल्पकाल में तो चलन गति स्थिर मानी जा सकती है, परन्तु दीर्घकाल में इसमें परिवर्तन अवश्य होता है।
- **समीकरण में अमौद्रिक तत्वों का समावेश न होना- (Does not included the non Monetary factors)-** आलोचको के अनुसार, कीमत स्तर को केवल मुद्रा की मात्रा ही प्रभावित नहीं करती वरन् अनेक अमौद्रिक तत्व जैसे राजनैतिक , मनोवैज्ञानिक तत्वों का भी प्रभाव पड़ता है। इन तत्वों की इस सिद्धान्त में अवहेलना की गयी है।

उपरोक्त आलोचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि फिशर का समीकरण वास्तविक रूप से कई स्थानों पर कभी मुद्रा की मात्रा एवं कीमत स्तर के बीच सीधा संबंध को स्थापित किया और मुद्रा के मूल्य एवं कीमत स्तर के बीच विपरीत संबंध को स्थापित किया। मुद्रा के कार्य में विनिमय के माध्यम को लेते हुए परम्परावादी सिद्धान्त को प्रतिपादित किया।

4.7 कैम्ब्रिज समीकरण या नकद शेष समीकरण (Cambridge Equation or Cash Balance Equation)

कैंम्ब्रिज विश्वविद्यालय , इंग्लैड के कई अर्थशास्त्रियों जैसे मार्शल , पी.रोबर्टसन, कीन्स ने मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त के नकद शेष समीकरण का प्रतिपादन किया। इसे कैम्ब्रिज समीकरण भी कहते है।
कैम्ब्रिज अर्थशास्त्रियों ने फिशर के सिद्धान्त में आवश्यक सुधार करके उसे अधिक मान्य बनाया और प्राप्त निष्कर्षो को अधिक दृढ़ता से सिद्ध किया। परम्परावादी सिद्धान्त की "आनुपातिकता नियम" को मानते हुए वे अपने विश्लेषण से इस बात को सिद्ध भी करते है कि मुद्रा की मात्रा दुगुनी करने पर उसका मूल्य आधा रह जाता है कीमत स्तर दुगुना हो जाता है।

4.7.1 कैम्ब्रिज अर्थशास्त्रियों द्वारा दो मौलिक परिवर्तन (Two basic Changes made by Cambridge Economists)

1. मुद्रा की पूर्ति को नकद शेष रूप में प्रदर्शित किया। अतः मुद्रा को किसी एक समयावधि के ऊपर (over a period of time) न दिखाकर उसे एक निश्चित समय (At a point of time) पर दिखाया। MV के स्थान पर केवल नकद शेष के रूष के रूप में मुद्रा की मात्रा के M लिया पर दिखाया। MV के स्थान पर केवल नकद शेष के रूप में मुद्रा की मात्रा का M लिया।

मुद्रा की पूर्ति की अपेक्षा मुद्रा की मांग को अधिक महत्व दिया। जबकि फिशर के सिद्धान्त में मुद्रा की मांग (PT) को मुद्रा के मूल्य निर्धारण में अधिक महत्वपूर्ण दिखाया गया है।

अतः इस सिद्धान्त को मुद्रा की मांग का सिद्धान्त (Demand Theory of Money) भी कहा जाता है।

मुद्रा की पूर्ति (M) मुद्रा की मांग (K)

↓ ↓

नोट + सिक्के + मांग जमांए नकद शेष का जोड़

(एक निश्चित समय बिन्दु पर जनता के पास में उपलब्ध नोट, सिक्को तथा बैंक में जमाए) (मुद्रा को नकद शेष के रूप रखने की लोगों की इच्छा)

नकद शेष क्या है- नकद शेष वार्षिक वास्तविक आय का वह अनुपात है जिसे मुद्रा के विनिमय के माध्यम कार्य को न लेकर मूल्य के संचय को आधार लिया गया है। मुद्रा की मांग या नकद शेष में वृद्धि होने पर कीमत घटेंगी क्योंकि लोग अपनी आय का बड़ा भाग नकद रूप में अपने पास रखना चाहेंगे तथा वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए उनकी मांग कम होगी। ओर विलोमशः।

4.7.2 नकद शेष समीकरण के विभिन्न रूपांतर (Different Variants of Cash Balance Equation)

नकद शेष समीकरण के विभिन्न रूप है। इनमें से महत्वपूर्ण की व्याख्या निम्नलिखित है-

मॉर्शल का समीकरण (Marshall's Equation)-

$$M = KPY$$

M = बहिजात रूप से निर्धारित मुद्रा की पूर्ति

K = आय का वह भाग जिसे लोग अपने पास नकद रूप में रखते है।

Y = मौद्रिक आय।

P = सामान्य कीमत स्तर

इस प्रकार-

$$P = \frac{M}{KY}$$

अथवा $V_m = \frac{KY}{M}$

(V_m = मुद्रा का मूल्य)

पीगू का समीकरण (Pigou's Equation)-

$$P = \frac{KR}{M}$$

P = मुद्रा की क्रय शक्ति अथवा मुद्रा का मूल्य

R = कुल वास्तविक आय
K = वास्तविक आय का वह भाग जिसे लोग नकद रूप में रखना चाहते है।
बाद में पीगू ने बैंक शेषों तथा जमाओं को मुद्रा की मांग में सम्मिलित करते हुए निम्न समीकरण बनाया-

$$P = \frac{KR}{M\{C + L(1 - C)\}}$$

यहाँ, C = लोगों द्वारा बैंक मुद्रा एवं प्रतीक सिक्कों के रूप में रखी हुयी कुल वास्तविक आय का अनुपात है।
(1-C) = बैंक नोटों का बैंक शेषों से अनुपात
वास्तविक वैध मुद्रा का वह अनुपात है जिसे बैंक अपने ग्राहकों द्वारा धारित नो टो तथा कोषों के बदले में रखते हैं।

रॉबर्टसन का समीकरण (Robertson's Equation)-

रार्बटसन के अनुसार,

$$M = PKT$$

या

$$P = \frac{M}{KT}$$

यहाँ
P = कीमत स्तर
M = मुद्रा की पूर्ति
T = समय के एक निश्चित बिन्दु पर वस्तुओं तथा सेवाओ की खरीदी गयी मात्रा
K = T का वह भाग जिसे लोग नकद रूप में रखना चाहते है।

केन्ज का समीकरण (Keynes's Equation)-

केन्ज ने अपनी पुस्तक "A Tract on Monetary Reforms 1923" में अपना वास्तविक शेष समीकरण (Real Balance Equation) दिया। जो कैम्ब्रिज समीकरण का संशोधित रूप है। केन्स के अनुसार

$$n = PK$$

K = नकदी के रूप में उपभोग इकाईयों की संख्या
n = प्रचलन में कुल करेंसी
P = उपभोग इकाई की कीमत
बाद में केन्ज ने अपने वास्तविक शेष समीकरण में विस्तार किया

$$n = P(K + rk^1)$$

जहां
r = बैंको के नकद कोष का इनकी जमाओं से अनुपात
k^1 = उपभोग इकाइयों की संख्या जिन्हे समाज बैंक जमाओं के रूप में रखना चाहता है।
इस समीकरण को P के रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है।

$$P = \frac{n}{k} + rk^1$$

केन्ज के अनुसार यदि K, k^1 तथा r स्थितंक हो तो P ठीक उसी अनुपात में परिवर्तित होगा जिस अनुपात में n में परिवर्तन होगा।
केन्ज का समीकरण कैम्ब्रिज समीकरण के समान है। क्योंकि इसके परिवर्तित रूप $P = \frac{n}{k} + rk^1$ तथा $P = \frac{M}{KR}$ में कोई अंतर नहीं है।

4.8 फिशर एवं कैम्ब्रिज समीकरण की तुलना (Comparison of Fisher Equation and Cambridge Equations)

फिशर एवं कैम्ब्रिज समीकरणों के विश्लेषण के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि दोनों ही-नकदी लेन -देन एवं नकदी शेष समीकरणों में कोई आधारभूत या मौलिक अंतर नहीं है। मात्र विश्लेषण विधि में ही अंतर है। इस पर भी कैम्ब्रिज समीकरण को फिशर समीकरण से अधिक श्रेष्ठ एवं मान्यता प्राप्त दिया गया है।

व्यवहार में V एवं K में एक विपरीत संबंध पाया जाता है-

$$V = \frac{1}{K}$$

$$K = \frac{1}{V}$$

MV = PT (फिशर समीकरण)

जहां

PT = राष्ट्रीय आय (Y) है।

अतः

$$PT = Y$$

एवं

$$V = \frac{1}{K}$$

अतः

$$K = \frac{MPT}{} = \frac{1M}{V}$$

अब यदि फिशर के समीकरण में V के स्थान पर 1/K रखे तो हमें कैम्ब्रिज समीकरण प्राप्त हो जाता है-

$$MV = PT$$

$$M \times \frac{1}{K} = PT$$

$$\frac{M}{K} = PT$$

M = PKT (कैम्ब्रिज का रॉबर्टसन समीकरण)

कैम्ब्रिज के K को स्थान पर 1/V रखे तो फिशर समीकरण प्राप्त हो जाता है।

$$M = PKT$$

$$M = \frac{PT}{V}$$

MV = PT (फिशर समीकरण)

फिशर का MV तथा कैम्ब्रिज का M समान है। दोनों समी करणों में मुद्रा की मात्रा को मूल्य निर्धारण के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व माना गया है।

1. जहाँ मुद्रा को फिशर ने बहाव (Flow) के रूप में अभिव्यक्त किया है वहीं कैम्ब्रिज ने मुद्रा के संचित (Stock) रूप का अधिक महत्व दिया।
2. जहाँ फिशर ने मुद्रा की पूर्ति का महत्व दिया है वही कैम्ब्रिज समीकरण में मुद्रा की भाग को अधिक महत्व दिया गया है।

3. फिशर ने समय की एक अवधि की ओर संकेत किया तो कैम्ब्रिज ने समय की एक निश्चित बिन्दु की बात कही।
4. फिशर ने मुद्रा के चलन गति (V) पर अधिक बल दिया वो कैम्ब्रिज ने नकद शेषों (K) पर जो दिया।
5. फिशर की व्याख्या दीर्घकालीन है तो कैम्ब्रिज की अल्पकालीन व्याख्या है।
6. जहाँ फिशर के समीकरण में T के अंतर्गत सभी प्रकार के लेनदेन सम्मिलित किया जाते है वहीं कैम्ब्रिज समीकरण में R का संबंध वास्तविक आय से है। P का अभिप्राय फिशर समीकरण में सामान्य कीमत स्तर से है तो कैम्ब्रिज समीकरण में इसका संबंध अंतिम उपभोग की वस्तुओं तक सीमित है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दोनों समीकरणों में भिन्नता भी विद्यमान है और कैम्ब्रिज समीकरण को एक नवीन ढंग से प्रस्तुत किया गया है जिससे इसकी श्रेष्ठता सर्वोपरि है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दोनों समीकरणों में भिन्नता भी विद्यमान है और कैम्ब्रिज समीकरण को एक नवीन ढंग से प्रस्तुत किया गया है जिससे इसकी श्रेष्ठता सर्वोपरि है।

4.9 कैम्ब्रिज सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of Cambridge Theory)

1. **अवास्तविक मान्यताएँ (Unrealistic Assumption)-** इस सिद्धान्त में कुछ तत्वों जैसे K एवं T को स्थिर मान लिया गया है। वास्तविक जीवन में K, T, R आदि कोई भी तत्व स्थिर नहीं है।
2. **केवल उपभोग वस्तुओं से सम्बन्धित (Only related to consumption goods) -** यह समीकरण केवल उपभोग वस्तुओं से संबंधित है मुद्रा की मांग पर ध्यान देता है , जबकि वास्तविक जीवन में मुद्रा की मांग अनेक कारणों से की जाती है।
3. **अपूर्ण सिद्धान्त केवल चालू खातों को शामिल (Includes only Current Account)-** बैंकों के चालू खातो को ही मुद्रा की मांग माना गया है। यह आय का एक भाग होती है। परन्तु प्रायः लोग बैंक से ऋण लेते है जिनकी रकम खाते में जमा होती है। परन्तु इसका आय से कोई सीधा संबंध नहीं है। अतः इन्हें नकद शेषो में सम्मिलित किया जाय अथवा नहीं, यह भी प्रश्न है।
4. **चक्रीय तर्क (Vicious Cycle)-** इस सिद्धान्त में एक ओर कीमत स्तर (P) नकद शेष (K) द्वारा निर्धारित होती है परन्तु वही दूसरी ओर , यही कीमत स्तर नकद शेष को निर्धारित भी करती है। यह एक दोष है। क्योंकि यह कारण परिणाम संबंध सझाने में असफल रहा।
5. **ब्याज दर के प्रभाव की अवहेलना (Ignores the effects of role of Interest)-** यह मान्यता गलत है कि मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर में प्रत्यक्ष संबंध पाया जाता है। वास्तव में मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन होने पर पहले ब्याज की दर में परिवर्तन होता है जिसके कारण निवेश की मात्रा परिवर्तित होती है और फिर उत्पादन की लागत में परिवर्तन होता है। उत्पादन की लागतो में परिवर्तन से कीमतो में परिवर्तन होता है।
6. **वास्तविक तत्वों के प्रभावो की अवहेलना (Ignores the influence of Real factors) -** इस सिद्धान्त के अनुसार, मुद्रा की मांग से परिवर्तन के फलस्वरूप मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन होता है। ऐसे में कई वास्तविक तत्व जैसे बचत, निवेश, आय आदि के प्रभाव को महत्व नहीं दिया गया जो सही नहीं है।
7. **मूल्य सिद्धान्त तथा मुद्रा सिद्धान्त में समन्वय का अभाव (Lack integration between the theory of Value and Theory of Money)- पेटिनकिन** के अनुसार नकद शेष समीकरण मूल्य सिद्धान्त एवं मुद्रा सिद्धान्त का समन्वय नहीं करता। डान पेटिनकिन के अनुसार उनके द्वारा दिया गया वास्तविक शेष प्रभाव दोनों सिद्धान्तों का समन्वय करता है। कीमत स्तर में परिवर्तन होने के कारण

वास्तविक आय में परिवर्तन होता है। जिसका प्रभाव वस्तुओं की मांग एवं पूर्ति पर पड़ता है। और परिणामतः सापेक्ष कीमतों को भी प्रभावित करता है। इस सिद्धान्त में इसकी अवहेलना करता है।

4.10 सारांश (Summary)

मुद्रा का मूल्य उसकी क्रयशक्ति (Purchasing Power) के द्वारा निर्धारित होगा। अर्थात मुद्रा की इकाई के बदले में कितनी वस्तुओं और सेवाओं का क्रय किया जा सकता है , यही मुद्रा की क्रयशक्ति है और यही मुद्रा का मूल्य है। मुद्रा के मूल्य के संकुचित अर्थ से अभिप्राय मुद्रा का आन्तरिक मूल्य ही है। परन्तु विस्तृत अर्थ में मुद्रा के मूल्य का तात्पर्य मुद्रा के इस आन्तरिक मूल्य के साथ-साथ उसके बाह्य मूल्य (external value) से भी है। मुद्रा के मूल्य के दो निर्धारक तत्व है 1. मुद्रा की मांग 2. मुद्रा की पूर्ति।

मुद्रा के मूल्य निर्धारण को लेकर विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अलग-अलग सिद्धान्त प्रस्तुत कि ए। मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त बहुत पुराना है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रि यों (Classical Economists) ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को स्पष्ट रूप प्रदान किया। उन्होंने यह बातया कि मुद्रा की मात्रा मूल्य के बीच विपरीत सम्बन्ध है साथ ही यह संबंध समानुपातिक भी है। मुद्रा परिमाण सिद्धान्त के नकद लेन-देन दृष्टिकोण की व्याख्या अमेंरिका के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री इरविंग फिशर द्वारा की गयी है। मुद्रा को वस्तुओं और सेवाओं के लेन-देन में सर्वमान्य भुगतान के रूप में देखने के कारण इस दृष्टिकोण को नकद लेन-देन दृष्टिकोण कहा गया है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों में फिशर ने इस सिद्धान्त को एक समीकरण का रूप प्रदान कर प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो के मत का समर्थन किया। इसके बाद पीगू और मिल्टन फ्रीडमैन ने इस सिद्धान्त की नवीन रूप में व्याख्या की। कैंम्ब्रिज विश्वविद्यालय, इंग्लैड के कई अर्थशास्त्रियों जैसे मार्शल , पी- रोबर्टसन, केन्ज ने मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त के नकद शेष समीकरण का प्रतिपादन किया। इसे कैम्ब्रिज समीकरण भी कहते है। कैम्ब्रिज अर्थशास्त्रियों ने फिशर के सिद्धान्त में आवश्यक सुधार करके उसे अधिक मान्य बनाया और प्राप्त निष्कर्षो को अधिक दृढ़ता से सिद्ध किया। परम्परावादी सिद्धान्त की “आनुपातिकता नियम” को मानते हुए वे अपने विश्लेषण से इस बात को सिद्ध भी करते है कि मुद्रा की मात्रा दुगुनी करने पर उसका मूल्य आधा रह जाता है कीमत स्तर दुगुना हो जाता है। यह कहा जा सकता है कि दोनों समीकरणों में भिन्नता भी विद्यमान है और कैम्ब्रिज समीकरण को एक नवीन ढंग से प्रस्तुत किया गया है जिससे इसकी श्रेष्ठता सर्वोपरि है।

4.11 शब्दावली (Glossary)

- **मुद्रा का चलन वेग (Velocity of Money)-** मुद्रा की एक इकाई एक निश्चित समय में कितने हाथों में प्रयुक्त होती है।
- **मुद्रा का मूल्य (Value of Money)-** मुद्रा की क्रयशक्ति
- **मुद्रा की पूर्ति (Supply of Money)-** मुद्रा की कुल मात्रा एवं मुद्रा के चलन वेग का गुणनफल
- **स्वयं सिद्ध (Axiom)-** जो प्रत्येक दशा में लागू होता है।
- **पूर्ण रोजगार (Full Employment)-** ऐसी दशा उत्पादन की मात्रा बढ़ाना सम्भव नहीं

4.12 अभ्यास प्रश्न उत्तर (Practice Question Answer)

- **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-**

1. मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त में कीमत स्तर एक .... तत्व है।
2. V एवं K में .... संबंध है।
3. फिशर का समीकरण व्यापार चक्र की व्याख्या करने में .... है।
4. कैम्ब्रिज समीकरण मुद्रा की .... को महत्व देता है।

5. फिशर मुद्रा के .... कार्य को मानते थे जबकि कैम्ब्रिज सिद्धान्त मुद्रा के ....कार्य को मानते थे।

उत्तर: 1. निष्क्रिय 2. विपरीत 3. असमर्थ 4. मांग 5. विनिमय, संचय

4.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- डॉ. जे.सी. पन्त एवं जे.पी. मिश्रा- अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- डॉ. एस.एन. गुप्ता- मुद्रा बैंकिग एवं राजस्व, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
- डॉ. टी.टी. सेठी- मुद्रा बैकिंग एवं अन्राष्ट्रीय व्यापार लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- डॉ. एम.एल. निगम- समष्टि अर्थशास्त्र, वृदा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
- डॉ. एच.एल. आहूजा- उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, एस.चन्द एण्ड, नई दिल्ली।

4.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful / Usefull Reading Materials)

- Seth, M.L. (2010) : ‘Money Banking and International Trade’, Published by – Laxmi narayan Agrawal, Agra.
- Vaish, M.C. (1989) : Money Banking and International Trade, Published By – Wiley Eastern Limited.
- Mithani, D.M. (2004), “Macro Economics”, Published by Himalaya Publishing House.
- Gupta, S.B. (1988), ‘Monetary Economics’ – Institutions, Theory and Policy, Published by S. Chand & Co. Pvt. Ltd.
- Shapirio, Edward (1989) ‘Macro Economic Analysis’ Published by Galgotia Publications Pvt. Ltd.
- सिन्हा, वी0सी0 (2009) ‘अर्थशास्त्र’, बी0ए0 द्वितीय वर्ष , एस0बी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस , आगरा।
- लाल, एस0 एन0 (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।

4.15 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की आलोचनात्मक विवेचना कीजिये?
2. मुद्रा संबंधी फिशर समीकरण तथा कैम्ब्रिज समीकरण में क्या मुख्य अंतर है ? आप इनमें से किसे श्रेष्ठ मानते है?
3. मुद्रा के मूल्य का क्या अर्थ है ? मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन किस प्रकार मुद्रा के मूल्य को प्रभावित करता है?
4. फिशर के सिद्धान्त की मान्यताओं सहित आलोचना कीजिये।

इकाई-5 मुद्रा के मूल्य निर्धारण के आधुनिक सिद्धान्त (फ्रीडमैन)

5.1 प्रस्तावना (introduction)
5.2 उद्देश्य (Objectives)
5.3 मिल्टन फ्रीडमैन का मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त (Milton Friedman's Quantity Theory of Money)
5.4 आधुनिक परिमाण सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Modern Quantity Theory)
5.5 सारांश (Summary)
5.6 शब्दावली (Glossary)
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Practice Question Answer)
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
5.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Usefull Text Material)
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

5.1 प्रस्तावना (introduction)

शिकागो के अर्थशास्त्री मिल्टन फ्रीडमैन को 1976 में, मौद्रिक अर्थशास्त्र, विशेष रूप से मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त, में विशेष योगदान के लिए, नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। 1936 में कींस द्वारा "The General Theory of Employment, Interest and Money" में परम्परागत मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की कटु आलोचना करने के बाद उसकी सर्वमान्यता पर प्रश्न चिन्ह खड़ा हो गया। वर्तमान समय यदि परिमाण सिद्धान्त अपने मान सम्मान को वापस पा सका तो इसका श्रेय मिल्टन फ्रीडमैन को ही जाता है।

इस इकाई में मिल्टन फ्रीडमैन द्वारा दिए गये मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को प्रस्तुत किया गया है। जिसे हम मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त का आधुनिक सिद्धान्त के नाम से भी जानते है।

5.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आप में मुद्रा परिमाण के आधुनिक सिद्धान्त की समझ विकसित करना है। साथ ही साथ आपको यह भी स्पष्ट हो जाएगा कि परिमाण सिद्धान्त को पुनः प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता क्यों पड़ी। आप परम्परागत एवं आधुनिक सिद्धान्त के बीच तुलना करने योग्य हो सकेंगे।

5.3 मिल्टन फ्रीडमैन का मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त (Milton Friedman's Quantity Theory of Money)

परम्परागत मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त में मुद्रा की मुख्य भूमिका विनिमय के माध्यम के रूप में है। फिशर के बाद मुद्रा के संचय कार्य पर अधिक जोर दिया गया। फ्रीडमैन ने मुद्रा को सम्पत्ति के रूप में परिभाषित किया। अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति अनेक रूपों में पायी जाती है और प्रत्येक रूप में वह कुछ न कुछ अंश तक संचय के उद्देश्य को पूरा करती है। वास्तव में परम्परागत मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त मुद्रा की मांग का सिद्धान्त है जबकि परिमाण सिद्धान्त का समीकरण , मांग के सामान्य सिद्धान्त के विस्तार के रूप में है। यह उत्पादन , मौद्रिक आय तथा कीमत स्तर का सिद्धान्त नहीं है। इसके निर्धारण हेतु मुद्रा की मांग में कुछ अतिरिक्त चरों को सम्मिलित करना पड़ेगा।

फ्रिडमैन के अनुसार सभी प्रकार की सम्पत्तियाँ मिलकर सम्पत्ति सूची (Asset Portfolio) का निर्माण करती है जिसमें मुद्रा भी शामिल है। यही कारण है कि एक सम्पत्ति की मांग दूसरी सम्पत्ति की मांग पर भी निर्भर करता है। अतः कहा जा सकता है कि व्यवहार में बहु सम्पत्ति बाजार मॉडल (Multi-Assets Market Model) पाया जाता है, जिनमें विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों का व्यापार होता है। इसी रास्ते का सहारा लेकर फ्रीडमैन ने अपनी पुस्तक "Studies in Quantity Theory of Money" में सामान्य कीमत सिद्धान्त तथा मुद्रा के सिद्धान्त को समन्वित करने का प्रयास किया।

सम्पत्ति की मांग का प्रतिपक्ष ही पूँजी की पूर्ति को व्यक्त करता है। दूसरी तरफ सम्पत्ति की पूर्ति का प्रतिपक्ष वित्तीय पूँजी की मांग को व्यक्त करता है। व्यय से अधिक आय बजटीय घाटे को व्यक्त करता है। यह घाटे का क्षेत्र पूँजी की मांग उत्पन्न करता है, दूसरे शब्दों सम्पत्ति की पूर्ति को। अतिरेक की स्थिति में इसका ठीक उल्टा होगा।

इसीलिए मुद्रा की मांग का सिद्धान्त , पूँजी सिद्धान्त का ही एक भाग बन जाता है।

मुद्रा की मांग का आधार -

मुद्रा की मांग सम्पत्ति के स्वामियों द्वारा की जाती है। स्वामी अपनी सम्पत्ति का एक निश्चित भाग , जिसे सम्पत्ति सूची (Asset Portfolio) कहा जाता है, अपने पास रखता है। उद्यमी विभिन्न प्रकार के उत्पादन साधनों की मांग उत्पन्न करते हैं। उद्यमियों का उत्पादन फलन, मुद्रा की मांग का निर्धारण करता है। उत्पादन के अन्य साधनों की मांग की भांति मुद्रा की मांग भी तकनीकी दशाओं पर निर्भर करती है। सम्पत्ति सूची में

परिवर्तन विनिमय द्वारा होता है तथा उत्पादन साधनों की मांग में परिवर्तन उत्पादन के द्वारा होता है। मुद्रा की मांग इस परिवर्तन की प्रक्रिया को सहायता प्रदान करती है।

प्रत्येक अभिकर्ता का उद्देश्य अपने लाभ को अनुकूलतम करना होता है। सम्पत्ति का स्वामी अपनी 'सम्पत्ति सूची' को पुनः समायोजित करके उपयोगिता को अधिकतम करता है। उद्यमी अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है।

वस्तुओं की मांग की व्याख्या -

वस्तुओं की मांग की व्याख्या चुनाव के सिद्धान्त (Theory of Choice) के माध्यम से की जा सकती है। अनधिमान वक्र (Indifference Curve) का आकार एवं ढाल x तथा y दो वस्तुओं के बीच सीमान्त प्रतिस्थापन की दर (व्यक्तिनिष्ठ) को व्यक्त करता है। चयनकर्ता अपनी वास्तविक आय (Real Income) तथा सापेक्षिक कीमतों को ध्यान में रखकर अपनी उपयोगिता को अधिकतम करता है। उपभोक्ता की उपयोगिता अधिकतम तब होती तब व्यक्तिनिष्ठ सीमान्त प्रतिस्थापन की दर (तटस्थता वक्र का ढाल) तथा वस्तुनिष्ठ सीमान्त प्रतिस्थापन की दर (कीमत रेखा का ढाल) दोनों बराबर होते हैं। यह बिन्दु तटस्थता वक्र तथा कीमत रेखा के स्पर्श बिन्दु से परिलक्षित होता है। चयन के सिद्धान्त के समान मुद्रा की मांग निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है-

i. **सम्पत्ति की कुल मात्रा (Total amount of Assets)-** सम्पत्ति सूची के आकार को निर्धारित करता है। सम्पत्ति का स्वामी अपनी सम्पत्ति को विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों में विभाजित करता है, जिसमें मुद्रा भी एक है। मान लिया सम्पत्ति का एक समूह $A_1, A_2, A_3, \ldots, A_n$ है। सम्पत्ति की कुल मात्रा बजट अवरोधक (Budget Constraint) का काम करती है।

ii. **उपभोक्ता की भाँति (As a Consumer)-** सम्पत्ति का स्वामी भी मूल्य को दिया हुआ मान लेता है। सापेक्षिक कीमतें तथा विभिन्न सम्पत्तियों पर प्रतिफल की दर सम्पत्ति सूची की संरचना (Composition Asset Portfolio) को निर्धारित करती है।

iii. **सम्पत्ति के स्वामी (Owner of the Asset) -** सम्पत्ति के स्वामी का सम्पत्ति के लिए एक निश्चित अधिमान सूची होती है। सम्पत्ति के प्रति व्यक्तिनिष्ठ अधिमान सामाजिक , सांस्कृतिक तथा आर्थिक कारणों से प्रभावित होता है। यह मान लिया गया है कि सम्पत्ति के प्रति अधिमान का पैमान समय के साथ अपरिवर्तित रहता है। अल्पकाल में केवल 'बाह्य झटके' (Exogenous Shocks) ही अधिमान सूची को प्रभावित कर सकते हैं। इस प्रकार सम्पत्ति सूची का एक निश्चित आकार एवं संरचना होती है।

परन्तु चयन के सिद्धान्त को सम्पत्ति के सन्दर्भ में ज्यों का त्यों लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि सम्पत्ति के दो स्वरूप हैं- (a) स्टॉक तथा (b) प्रवाह। स्टॉक का सम्बन्ध एक समय बिन्दु से है जबकि प्रवाह का सम्बन्ध समयावधि से है। प्रत्येक सम्पत्ति अपने धारक को एक निश्चित प्रवाह की गारण्टी प्रदान करती है। इसे ही प्रतिफल की दर या सम्पत्ति की उपज कहते हैं। प्रत्येक सम्पत्ति, उपज, आकार तथा गुणवत्ता के आधार पर एक-दूसरे से भिन्न होती है। यही चुनाव की समस्या उत्पन्न करती है। परन्तु स्टॉक में प्रतिफल की दर से गुणा करके आय (प्रवाह) में परिवर्तित किया जा सकता है। इसी प्रकार आय में प्रतिफल की दर से भाग देकर पूँजीगत मूल्य ज्ञात किया जा सकता है।

आय (प्रवाह) $y = w \times r$

पूँजीगत मूल्य $w = \frac{y}{r}$

जहाँ-

y = Income (flow)

w = Wealth (Capitalised Value)

r = Rate of Return (प्रतिफल की दर)

सम्पत्ति की सापेक्षिक कीमतें सम्पत्ति के चयन का निर्देशन करती है।

मुद्रा का मांग फलन (Money Demand Function)

उपर्युक्त विश्लेषण के उपरान्त हम अब इस स्थिति में पहुँच चुके हैं कि मुद्रा के मांग फलन का निर्धारण कर सकें। एक सम्पत्ति के रूप में मुद्रा की मांग के निम्नलिखित निर्धारक हैं-

सम्पत्ति का स्टॉक -

सम्पत्ति की कुल मात्रा सम्पत्ति सूची (Asset Portfolio) के आकार को निर्धारित करती है। कुल सम्पत्ति मानवीय एवं गैर मानवीय सम्पत्ति (Human and Non-Human Wealth) से मिलकर बनती है। मानवीय सम्पत्ति भी जीवनकाल में आय उत्पन्न करती है। अतः सम्पत्ति मुद्रा की मांग का निर्धारण करती है। पूँजीगत मूल्य में प्रतिफल की दर से गुणा करने पर दूसरा निर्धारक आय प्राप्त होता है।

मुद्रा के सिद्धान्त में आय को स्थायी आय के रूप में स्वीकार किया गया है , यह मापित आय (Measured Income) से भिन्न है। स्थायी आय , दीर्घकालिक आय को इंगित करता है , जिसे प्रत्याशित आय भी कहते हैं। इसके घटक निम्नलिखित हैं-

- वर्तमान सम्पत्ति से आय
- वार्षिक आय में अल्प उतार-चढ़ाव तथा
- भविष्य में कमाने की क्षमता

अर्थात् स्थायी आय की अवधारणा भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों पर आधारित हैं। अतः स्थायी आय मुद्रा की मांग का प्रथम निर्धारक हैं।

- ➢ सम्पत्ति को मानवीय तथा गैर मानीवय दोनों रूपों में रखा जा सकता है। मान लिया गैर मानवीय पूँजी का मानवीय पूँजी से अनुपात (w) है। गैर मानवीय पूँजी का तो सीधे बाजार में व्यापार होता है परन्तु मानवीय पूँजी के बारे में ऐसा नहीं है। अतः w में परिवर्तन मुद्रा की मांग का दूसरा निर्धारक है।
- ➢ विभिन्न परिसम्पत्तियों पर मिलने वाला प्रतिफल भी मुद्रा की मांग को प्रभावित करता है। सम्पत्ति का स्वामी उसी संयोग का चुनाव करता है जो सूची के उत्पाद को अधिकतम कर सके। उत्पादक उद्यमी सम्पत्ति को निर्गमित करके या उसे बेचकर पूँजी खरीदते हैं। जब उद्यमी पूँ जी खरीदता है तब उसे लागत चुकानी पड़ती है। ऐसे में लाभ तब अधिकतम होगा जब सम्पत्ति की सापेक्षित प्रतिफल दर तथा पूँजी खरीदने की लागत दोनों बराबर हों। अतः सम्पत्ति के स्वामी तथा उद्यमी दोनों की मुद्रा की मांग को एक समान चर प्रभावित करते हैं।
- ➢ सम्पत्ति सूची की संरचना में शामिल मुद्रा, ब्राण्ड, इक्वीटी तथा भौतिक वस्तुएँ, इन चारों की उपज मुद्रा की मांग को निर्धारित करते हैं। मुद्रा की उपज को क्रयशक्ति $\frac{1}{P}$ के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। अतः यह मुद्रा की मांग का तीसरा निर्धारक है।
- ➢ ब्राण्ड की उपज को r_b से दर्शाया जा सकता है। ब्राण्ड पर मिलने वाला ब्याज बाजार, ब्याज के बराबर नहीं भी हो सकता है। अतः r_b मुद्रा की मांग का चौथा निर्धारक है।
- ➢ इक्वीटी भी तनिक अन्तर के साथ ब्राण्ड ही है। इस पर मिलने वाला प्रतिफल कीमत स्तर में परिवर्तन से सम्बद्ध रहता है। अतः इक्वीटी के प्रतिफल में तीन तत्व शामिल रहते हैं, मौद्रिक उपज (r_e) कीमत स्तर तथा आय का धनात्मक एवम् ऋणात्मक मूल्य (I) अतः r_e मुद्रा की मांग का पाँचवाँ निर्धारक है।

अन्त में भौतिक वस्तुओं का प्रतिफल आर्थिक एवं गैर-आर्थिक (Pecuniary or Non-Pecuniary) रूप में होता है। भौतिक वस्तुओं की मौद्रिक उपज पुनः $\frac{1}{P} \times \frac{\Delta P}{\Delta t}$ पर निर्भर करता है। भौतिक वस्तुओं के पूँजीगत मूल्य में वृद्धि या कमी कमी कीमत परिवर्तन से सम्बन्धित है। इस प्रकार $\frac{1}{P} \times \frac{\Delta P}{\Delta t}$ मुद्रा की मांग का छठवाँ निर्धारक है।

- सम्पत्ति सूची में सम्पत्ति के स्वामी तथा उत्पादक उद्यमी के रुचि एवं अधि मान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः रूचि एवं अधिमान, जिसके लिए 'u' का प्रयोग किया जा सकता है, मुद्रा की मांग का सातवां निर्धारक है।

अतः मुद्रा मांग के फलन को इस प्रकार लिखा जा सकता है-

$$\mathbf{M = f\{P, y, \frac{1}{P} \times \frac{\Delta P}{\Delta t}, r_b, r_e, w, u\}}$$

जहाँ-

M = मुद्रा की कुल मांग

P = सामान्य कीमत स्तर

y = कुल आय का प्रवाह

$\frac{1}{P} \times \frac{\Delta P}{\Delta t}$ = भौतिक वस्तुओं के मौद्रिक प्रतिफल का आकार

$\mathbf{r_b}$ = ब्राण्ड की उपज (ब्राण्ड की बाजार ब्याज दर)

$\mathbf{r_e}$ = इक्वीटी की उपज

w = मानवीय एवं गैर मानवीय सम्पत्ति का अनुपात

u = रूचि एवं अधिमान व्यक्त करने वाला चर

5.4 आधुनिक परिमाण सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Modern Quantity Theory)

फ्रीडमैन के दृष्टिकोण की दो आधारों पर आलोचना की जाती है।

1. फ्रीडमैन का तर्क है कि समाज में नकद शेष की मांग के निर्धारण में ब्याज दर की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण नहीं रहती है। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है। ब्याज दर में वृद्धि निश्चित रूप से नकद रखने की लागत को बढ़ा देगा और नकद की मांग को कम कर देगा , परिणामस्वरूप बैंकों में जमा में वृद्धि ही जायेगी। ब्याज दर कम होने पर इसके विपरीत व्यवहार देखने को मिलेगा। अतः यह मान्यता कि जमा ब्याज के प्रति बेलोचदार होती है सही नहीं है।
2. दूसरी मान्यता यह है कि किसी समाज में मुद्रा की पूर्ति आय तथा कीमत स्तर में परिवर्तन से स्वतन्त्र होती है। बल्कि मुद्रा की पूर्ति आय एवं कीमत स्तर का निर्धारण करती है। परन्तु अनुभव पर आधारित अध्ययन यह बताते हैं कि आय तथा कीमत स्तर भी समान रूप से मुद्रा की पूर्ति को प्रभावित करते हैं।

आधुनिक सिद्धान्त की श्रेष्ठता -

अनेक आलोचनाओं के बावजूद यह सिद्धान्त परम्परागत परिमाण सिद्धान्त से श्रेष्ठ है। यह पूर्व सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक बेहतर एवं व्यापक रूप से मुद्रा की मांग की व्याख्या करता है। फ्रिडमैन ने स्वयं अपने योगदान के सैद्धान्तिक स्वरूप का अनुभव के द्वारा परीक्षण किया तथा उसकी प्रामाणिकता को स्थापित किया।

5.5 सारांश (Summary)

मिल्टन फ्रीडमैन ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को पुनः स्थापित किया। फ्रीडमैन ने स्पष्ट किया कि यह मुद्रा की मांग का सिद्धान्त है। उत्पादन , आय या कीमत का सिद्धान्त नहीं है। इन्होंने सम्पत्ति के वृहत् रूप को परिभाषित किया। मानवीय तथा गैर मानवीय पूँजी के साथ-साथ भौतिक एवम् अभौतिक पूँजी को भी सम्मिलित किया। फ्रीडमैन ने बहुत स्पष्ट एवम् व्यापक मुद्रा के मांग फलन को व्युत्पन्न किया। फ्रीडमैन का मांग फलन कीमत स्तर, बॉण्ड, इक्विटी, आय, कीमत स्तर में परिवर्तन की दर आय और रुचि चर पर निर्भर करता है।

5.6 शब्दावली (Glossary)

- **एसेट पोर्टफोलियो (Asset Portfolio)**-सम्पत्ति सूची
- **मौद्रिक आय (Monetary Income)**- मौद्रिक रूप में व्यक्त आय

- **उत्पादन फलन (Production Function)-** उत्पादन तथा उत्पादन साधनों के बीच विद्यमान फलनात्मक सम्बन्ध
- **सीमान्त प्रतिस्थापन की दर (MRS)-**x वस्तु की एक इकाई पाने के लिए y वस्तु की छोड़ी जाने वाली मात्रा
- **कीमत रेखा (Price Line)-**दो वस्तुओं x तथा y के कीमत अनुपात को व्यक्त करती है।
- **वास्तविक आय (Real Income)-**मौद्रिक आय में कीमत से भाग देकर वास्तविक आय ज्ञात की जाती है।
- **उपयोगिता (Utility)-**इच्छा को सन्तुष्ट करने की क्षमता

5.7 अभ्यास प्रश्न उत्तर (Practice Question Answer)

अभ्यास प्रश्न -

1. फ्रीडमैन ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को किस रूप में प्रस्तुत किया।
2. फ्रीडमैन ने किन कारकों को मुद्रा की मांग का निर्धारक माना।
3. फ्रीडमैन के परिमाण सिद्धान्त के सम्बन्ध में कौन सा कथन सहीं नहीं है।

(अ) वास्तविक आय तथा मुद्रा की मांग के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध पाया जाता है।
(ब) ब्याज दर तथा मुद्रा की मांग के बीच प्रत्यक्ष समबन्ध पाया जाता है।
(स) कीमत स्तर तथा मुद्रा की मांग के बीच विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है।
(द) कीमत स्तर में परिवर्तन तथा मुद्रा की मांग के बीच प्रत्यक्ष एवं आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है।

अभ्यास प्रष्न के उत्तर-

उत्तर – 3 (द)

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- Seth, M.L. (2010) : 'Money Banking and International Trade', Published by – Laxmi narayan Agrawal, Agra.
- Vaish, M.C. (1989) : Money Banking and International Trade, Published By – Wiley Eastern Limited.
- Mithani, D.M. (2004), "Macro Economics", Published by Himalaya Publishing House.
- Gupta, S.B. (1988), 'Monetary Economics' – Institutions, Theory and Policy, Published by S. Chand & Co. Pvt. Ltd.
- Shapirio, Edward (1989) 'Macro Economic Analysis' Published by Galgotia Publications Pvt. Ltd.

5.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful Text Material)

- सिंह, एस0के0 (2010) 'लोक वित्त के सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
- सिन्हा, वी0सी0 (2009) 'अर्थशास्त्र', बी0ए0 द्वितीय वर्ष, एस0बी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा

- लाल, एस0एन0 (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
- मिश्र, जे0पी0 (2008) 'अर्थशास्त्र' (मुद्रा एवं बैंकिंग), बी0ए0 द्वितीय वर्ष हेतु, विज्डम पब्लिकेशन्स, वाराणसी

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1.फ्रीडमैन के मुद्रा परिमाण सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
2.स्पष्ट कीजिए कि फ्रीडमैन ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया।
3.इस बात की व्याख्या कीजिए कि कैसे मिल्टन फ्रीडमैन का परिमाण सिद्धान्त मूलतः मुद्रा की मांग का सिद्धान्त है।

इकाई - 6 मुद्रा पूर्ति अवधारणा, अवयव एवं निर्धारक तत्व (Money Supply Concept, Components and Determinants)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)
6.2 उद्देश्य (Objectives)
6.3 मुद्रा पूर्ति की परिभाषा (Definition of Money Supply)
6.4 मुद्रा पूर्ति की विभिन्न अवधारणाएं (Various Concepts of Money Supply)
6.4.1 परम्परावादी दृष्टिकोण (Classical Approach)
6.4.2 शिकागो या मौद्रिक सम्प्रदाय का दृष्टिकोण (Chicago or Monetary Denomination Approach)
6.4.3 गुर्ले तथा शॉ का दृष्टिकोण (Gurley and Shaw Approach)
6.4.4 केन्द्रीय बैंकिग या रैडक्लिफ दृष्टिकोण (Central Banking or Radcliffe Approach)
6.5 भारत में मुद्रा पूर्ति के मापक (Measures of Money Supply in India)
6.6 मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति (Effective Money Supply)
6.6.1 मुद्रा का प्रचलन वेग (Velocity of Circulation of Money)
6.6.2 मुद्रा का आय प्रचलन वेग (Income Velocity of Circulation of Money)
6.7 मुद्रा पूर्ति के निर्धारक तत्व (Determinant Element of Money Supply)
6.7.1 आवश्यक रिर्जव अनुपात (Required Reserve Ratio)
6.7.2 बैंक कोषों का स्तर (Level of Bank Reserve)
6.7.3 जनता की करेन्सी तथा जमाएं रखने की इच्छा (People’s Willingness to Hold Currency and Deposits)
6.7.4 उच्च शक्ति मुद्रा (High Power Money)
6.7.5 अन्य कारक (Other Factors)
6.8 सारांश (Summary)
6.9 शब्दावली (Glossary)
6.10 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Type Question)
6.11 संदर्भ सहित ग्रन्थ (Bibliography)
6.12 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)
6.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछली इकाइयों में हमने केन्द्रीय बैंक के विभिन्न कार्यों का विस्तृत रूप से अध्ययन किया। साथ ही केन्द्रीय बैंक का साख नियंत्रण के महत्वपूर्ण कार्य में विभिन्न विधियों का भी अवलोकन किया।
प्रस्तुत इकाई में हम मुद्रा की पूर्ति की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे क्योंकि इसका अध्ययन न महज मौद्रिक सिद्धान्त को समझने के लिए वरन् व्यवहारिक रूप में मौद्रिक नीति तथा कुशल मौद्रिक प्रबन्धन की नीति निर्धारित करने के लिए भी आवश्यक है।

प्रस्तुत इकाई में मुद्रा पूर्ति एवं मुद्रा स्टॉक के मध्य सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुये मुद्रा की पूर्ति में बैंक के महत्व का भी अवलोकन किया जायेगा। मुद्रा के रूप में प्रयोग किये जाने वाले साधनों में 'तरलता' का गुण होता है। विनिमय का माध्यम होने के कारण इसे तरल साधन की संज्ञा भी दी गयी है।

6.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप-

- ✓ मुद्रा पूर्ति की परिभाषा से परिचित हो सकेंगे।
- ✓ मुद्रा की पूर्ति की माप के सम्बन्ध में विभिन्न धारणाओं को जानेंगे।
- ✓ मुद्रा पूर्ति एवं मुद्रा स्टॉक में अन्तर को जानेंगे।
- ✓ मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति से परिचित हो सकेंगे।
- ✓ मुद्रा का प्रचलन वेग से अवगत हो सकेंगे।
- ✓ मुद्रा की पूर्ति के निर्धारक तत्व को जान सकेंगे।
- ✓ बैंक मुद्रा अथवा साख मुद्रा का निर्माण को जानेंगे।
- ✓ भारत में मुद्रा के विभिन्न मापको को जानेंगे।

6.3 मुद्रा पूर्ति की परिभाषा (Definition of Money Supply)

मुद्रा की पूर्ति के अन्य पर्यायवाची है - मुद्रा स्टॉक, मुद्रा का परिमाण आदि शब्द हैं। किसी भी समय पर मुद्रा की पूर्ति का अर्थ है - अर्थव्यवस्था में विद्यमान मुद्रा का कुल परिमाण। सामान्य शब्दों में कहा जा सकता है कि मुद्रा की पूर्ति मुद्रा की वह मात्रा है जिसे एक देश की जनता वस्तुओं एवं सेवाओं को खरीदने के लि ए अपने पास रखती है।

6.4 मुद्रा पूर्ति की विभिन्न अवधारणाएं (Various Concepts of Money Supply)

मुद्रा की परिभाषा के सम्बन्ध में तीन भिन्न-भिन्न मत प्रस्तुत किये गये हैं।

6.4.1 परम्परावादी दृष्टिकोण (Classical Approach)

प्रथम मत अत्यधिक प्रचलित मत माना जाता है जिसका सम्बन्ध परम्परागत एवं केन्द्रीय विचारधारा से है। इस मत के ही अनुसार मुद्रा विनिमय के माध्यम का कार्य करती है। अतः मुद्रा की पूर्ति से आशय उस करेन्सी से है जो जनता के पास तथा वाणिज्यिक बैकों में मांग जमा के रूप में विद्यमान है। इन्हें चलन मुद्रा भी कहते हैं। यह मुद्रा की पूर्ति की वैधानिक स्थिति है। इसके साथ ही बैकों की मांग जमाएँ चैक के माध्यम से ही चलन मुद्रा की भांति उपयोग में लायी जाती है। अतएव ये जमाएँ भी मुद्रा की कुल पूर्ति में सम्मिलित की जाती हैं।

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + बैंकों की कुल जमा

Money Supply = Currency + Demand Deposit

परन्तु मौद्रिक नीति की दृष्टि से यह दृष्टिकोण बहुत संकुचित दृष्टिकोण है क्योंकि यह M मात्र विनिमय का माध्यम है।

6.4.2 शिकागो या मौद्रिक सम्प्रदाय का दृष्टिकोण (Chicago or Monetary Denomination Approach)

अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय के महान अर्थशास्त्री फ्रीडमैन ने मुद्रा की कुल पूर्ति के सम्बन्ध में व्यापक विचारधारा का समर्थन किया। इसे मौद्रिक सम्प्रदाय भी कहते हैं।

मुद्रा की पूर्ति पर फ्रीडमैन ने प्रस्तुत परिभाषा दी *"शब्दशः वे डालर जिन्हें लोग अपनी जेबों में लिए घूमते हैं अथवा जो उनके खातों में बैकों में मांग जमा के रूप में और कामर्शियल बैकों के सावधि जमाओं के रू में भी विद्यमान है।"*

ऊपर दी गयी परिभाषा परम्परावादी परिभाषा से ज्यादा व्यापक है क्योंकि इसमें करेन्सी एवं मांग जमा के साथ-साथ सावधि जमा को भी सम्मिलित किया गया है।

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + मांग जमा + सावधि जमा

इसे भारत में M_3 से दर्शाया जाता है।

इस दृष्टिकोण को मौद्रिक दृष्टि से अधिक उपयुक्त समझा जाता है परन्तु इसमें समय जमायें मुद्रा का पूर्ण तरल रूप नहीं हैं।

6.4.3 गुर्ले तथा शॉ का दृष्टिकोण (Gurley and Shaw Approach)

अपनी पुस्तक **"Money in a journey of Finance"**मुद्रा की पूर्ति का अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। उनके अनुसार मुद्रा की पूर्ति में उन सब वस्तुओं को शामिल किया जाना चाहिए जो उसके निकट प्रतिस्थापन हैं। जैसे समय जमा, बचत बैंक जमा, साख पत्र, शेयर बांड आदि।

इस दृष्टिकोण के अनुसार :

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + मांग जमा + सावधि जमा + बचत बैंक जमा + बॉड्स +....

Money Supply
= Currency + Demand Deposit + Time Deposit + Saving Bank + Bonds +....

इस दृष्टिकोण की यह कमी है कि ये न तो मुद्रा के विनिमय माध्यम का कार्य पूरा करता है और नहीं इतना विस्तृत क्षेत्र केन्द्रीय बैंक के नियन्त्रण में होता है।

6.4.4 केन्द्रीय बैंकिग या रैडक्लिफ दृष्टिकोण (Central Banking or Radcliffe Approach)

मौद्रिक प्रणाली की परीक्षा हेतु नियुक्त 1959 में रेडक्लिफ समिति द्वारा प्रस्तुत रिर्पोट ने मुद्रा की पूर्ति के सम्बन्ध में अत्यन्त व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

इस दृष्टिकोण के अनुसार *"मुद्रा से अभिप्राय विभिन्न साधनों द्वारा दी गयी साख है। (Money is the credit extended by a wide variety of sources)।"*

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + मांग जमा + समय जमा + बचत खाता जमा + शेयर + बॉड्स + प्रतिभूतियां + असंगठित क्षेत्र से साख ।

Money Supply =
Currency + Demand Deposit + Time Deposit + Saving Account Deposit + Share + Bonds + Securities + Credit from Unorganised Sector

उचित दृष्टिकोण -
ऊपर दिए गए विभिन्न दृष्टिकोणों का अध्ययन करने के पश्चात यह निकर्ष निकाला जा सकता है कि अत्यधिक विस्तृत क्षेत्र की अपेक्षा सामान्य रूप से करेन्सी तथा मांग जमा को ही शामिल तथा मांग पत्र जमा को ही शामिल किया जाना चाहिए और बचतों तथा जमाओं को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए।

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + सिक्के + नोट + मांग जमा

6.5 भारत में मुद्रा पूर्ति के मापक (Measures of Money Supply in India)

मुद्रा पूर्ति की द्वितीय कार्यकारी दल (Second working group on Money Supply) की सिफारिशों के आधार पर भारतीय रिजर्व बैंक भारत में मुद्रा की पूर्ति का आकलन चार संघटकों की सहायता से करता है-

M_1 = जनता के पास मुद्रा ;करेन्सी नोट, सिक्केद्ध ़$ बैंक की मांग जमा, चालू तथा बचत बैंक खाते पर

M_2 = M_1 + डाकखाने की बचत बैंक जमा

M_3 = M_1 + बैंकों की सावधि जमा

M_4 = M_1 + डाकखानों की सम्पूर्ण जमा

M_1 से M_4 की ओर बढ़ने पर मुद्रा के इन चार रूपों की तरलता क्रमशः घटती जाती है।

6.6 मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति (Effective Money Supply)

मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति से अभिप्राय मुद्रा की उस मात्रा से है जो किसी समय परिचलन में रहती है। मुद्रा की कुल पूर्ति को अपने कार्य अथवा प्रभाव के आधार पर दो मुख्य भागों में बांटा गया है। एक भाग वह जो केन्द्रीय सरकार के खजाने, केन्द्रीय बैंक तथा वाणिज्य बैंकों के पास 'आधार' अथवा 'आरक्षित मुद्रा' (Reserve Money) के रूप में रखा जाता है। यह परिचलन में प्रयुक्त नहीं किया जाता बल्कि कोषों में रखा जाता है। दूसरा भाग अधिक विस्तृत है जो परिचलन में रहता है। इसको विनिमय सम्बन्धी तथा अन्य भुगतानों के माध्यम के रूप में प्रयोग किये जाने के लिए जनता को उपलब्ध होती है।

मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति से आशय मुद्रा की कुल मात्रा के दूसरे भाग से है जो व्यय करने योग्य रूप में जनता को किसी समय प्राप्त होती है। मुद्रा के मूल्य निर्धारक तत्व के रूप में मुद्रा के प्रभावकारी पूर्ति ही अधिक महत्वपूर्ण होती है।

6.6.1 मुद्रा का प्रचलन वेग (Velocity of Circulation of Money)

मुद्रा स्टॉक होने के साथ-साथ उसका एक गुण यह भी है कि उसमें प्रवाह रहता है। मुद्रा की विभिन्न इकाइयाँ विनिमय की क्रिया में कई हाथों से बराबर गुजरती हैं और हर बार मुद्रा का कार्य करती हैं।

एक निश्चित अवधि में मुद्रा की एक इकाई औसतन जितने बार भुगतान करने के लिए प्रयोग की जाती है उसे मुद्रा का प्रचलन वेग (Velocity of Circulation of Money) कहते हैं।

किसी निश्चित अवधि में मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति = प्रचलन में मुद्रा की मात्रा × मुद्रा का प्रचलन वेग।

मुद्रा के प्रचलन वेग को ज्ञात इस उदाहरण से किया जा सकता है - यदि एक निश्चित अवधि में एक रूपये का नोट एक के बाद दूसरे हाथों में जाता है और हर बार विनिमय माध्यम का कार्य करता है तो उसका प्रचलन वेग 10 हुआ, इस अवधि में मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति = 1 × 10 = 10 रूपये होगी।

6.6.2 मुद्रा का आय प्रचलन वेग (Income Velocity of Circulation of Money)

जब मुद्रा के प्रचलन वेग का राष्ट्रीय आय के साथ सम्बन्धित किया जाता है तो उसे मुद्रा का आय प्रचलन वेग कहा जाता है। ऐसे में मुद्रा के प्रयोग को केवल उन्हीं वस्तुओं व सेवाओं के क्रय-विक्रय में देखा जाता

है जो किसी निश्चत अवधि में राष्ट्र की कुल वास्तविक आय (Real National Income) में सम्मिलित होती है। मुद्रा का आय प्रचलन वेग किसी वर्ष में मुद्रा की पूर्ति का उस वर्ष की राष्ट्रीय आय के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है। यह उस औसत संख्या को व्यक्त करता है , जितनी बार मुद्रा की इकाई एक निश्चित अवधि (एक वर्ष सामान्य रूप में) अंतिम आय-प्राप्तकर्ताओं (Ultimate Income Recipients) के नकद शेषों (Cash Balance) में प्रविष्टि होती है अथवा इनसे बाहर निकलती है। इसे मुद्रा का चक्रीय प्रचलन वेग भी कहा गया है (Circular Velocity of Money)

6.7 मुद्रा पूर्ति के निर्धारक तत्व (Determinant Element of Money Supply)

मुद्रा पूर्ति के निर्धारण के संबंध में दो सिद्धान्त हैं। पहले सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा पूर्ति को बैंक बहिर्जात रूप (Exogenourslу) से निर्धारण करता है और दूसरे सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक क्रिया में होने वाले परिवर्तन अर्न्तजात रूप (Endogenously) से मुद्रा पूर्ति को निर्धारित करते हैं जो लोगों की जमा की सापेक्षता में करेंसी धारण करने की इच्छा, ब्याज की दर इत्यादि को प्रभावित करती है।

अतः मुद्रा की पूर्ति निर्धारक बहिर्जात भी हैं और अन्तर्जात भी। यह प्रमुख निर्धारक तत्व निम्नलिखित हैं-

1. आवश्यक रिजर्व अनुपात (Required Reserve Ratio)।
2. बैंक कोषों का स्तर (Level of Bank Reserve)।
3. जनता की क रेंसी तथा जमाएं रखने की इच्छा (Public Desire to Hold Currency and Deposits)
4. उच्च स्तरीय मुद्रा (High Powered Money)

6.7.1 आवश्यक रिर्जव अनुपात (Required Reserve Ratio)

यह मुद्रा पूर्ति का अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है।

- चालू तथा सावधि जमा देयताओं से नकदी का अनुपात (RR) कानून द्वारा निर्धारित किया जाता है। प्रत्येक बैंक को इन देयताओं का कुछ प्रतिशत देश के केन्द्रीय बैंक के पास जमा के रूप में रखना पड़ता है।
- आवश्यक कोष अनुपात में वृद्धि होने पर व्यापारिक बैंकों के पास मुद्रा की पूर्ति घट जाती है और जब आवश्यक कोष अनुपात घट जाता है तो मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि हो जाती है।
- भारत में मुद्रा पूर्ति निर्धारित करने के लिए कानून द्वारा एक अतिरिक्त कदम के रूप में वैधानिक रिजर्व अनुपात (Statutory Liquidity Ratio) निश्चित किया गया है। यदि इसे बढ़ा दिया जाये तो इससे कामार्शियल बैंकों को उधार देने के लिए मुद्रा पूर्ति कम हो जाती है। यदि इसको कम कर दिया जाय तो बैकों को उधार देने के लिए मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाती है।

6.7.2 बैंक कोषों का स्तर (Level of Bank Reserve)

बैंक कोषों के अन्तर्गत दो तत्व सम्मिलित रहते हैं:-

- व्यापारिक बैंक की केन्द्रीय बैंक के पास जमायें।
- व्यापारिक बैंकों की तिजोरियों में विद्यमान करेन्सी , नोट अथवा नकदी। इसे तरल कोषानुपात भी कहते हैं।

किसी देश का केन्द्रीय बैंक ही मुद्रा पूर्ति निर्धारित करने के लिए व्यापारिक बैंक की कोषों या तरल कोषानुपात को प्रभावित करते हैं। केन्द्रीय बैंक सभी व्यापारिक बैंकों के लिए यह आवश्यक कर देता है कि वे अपनी सावधि

एवं मांग जमाओं दोनो का एक निश्चित प्रतिशत भाग आरक्षित के रूप में रखें। यही कानूनी , न्यूनतम अथवा आवश्यक रिर्जव है।
आवश्यक रिजर्व अनुपात (RR) एवं जमाओं के स्तर (D) द्वारा आवश्यक रिजर्व निर्धारित होते हैं।

$$RRr = RR \times D$$

रिजर्व जितना अधिक होगा बैंक को उतने ही अधिक आवश्यक रिजर्व रखना होगा। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि मुद्रा पूर्ति निर्धारित करने के लिए अतिरिक्त रिजर्व (Excess Reserve ER) ही अधिक महत्वपूर्ण है।

$$ER = TR - RR$$ (अतिरिक्त रिजर्व = कुल रिजर्व - आवश्यक रिजर्व)

व्यापारिक बैंकों के अतिरिक्त रिजर्व ही उसकी जमा देयताओं के आकार को प्रभावित करते हैं। बैंक अपने अतिरिक्त रिजर्व के बराबर ही कर्ज देते हैं और अतिरिक्त रिजर्व मुद्रा पूर्ति का आवश्यक अंग है। किसी व्यापारिक बैंक की मुद्रा पूर्ति निर्धारित करने के लिए केन्द्रीय बैंक खुले बाजार परिचालन और बट्टा दर नीति अपनाकर उसके रिजर्वों को प्रभावित करता है।
व्यापारिक बैकों की आरक्षतियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव केवल तभी पड़ता है जब खुले बाजार परिचालन तथा बट्टा दर नीति एक दूसरे के पूरक हों।

6.7.3 जनता की करेन्सी तथा जमाएं रखने की इच्छा (People’s Willingness to Hold Currency and Deposits)

यदि लोगों की यह आदत बनी हुयी है कि वे अधिक जमा करते हैं एवं कम नकदी अपने पास रखते हैं तो मुद्रा पूर्ति में वृद्धि हो जायेगी। कारण यह है कि अधिक जमा का प्रयोग मुद्रा के निर्माण में प्रयुक्त हो जाता है। परन्तु यदि लोगों में बैंक में जमा करने की प्रवृत्ति नहीं है तो वे अपनी बचतों को अपने पास ही नकदी के रूप में रखना उचित समझते हैं तो बैकों द्वारा साख निर्माण अपेक्षाकृत कम होगा और मुद्रा की पूर्ति का स्तर भी नीचे होगा।

6.7.4 उच्च शक्ति मुद्रा (High Power Money)

उच्च शक्ति मुद्रा वह मुद्रा है जो व्यापारिक बैंकों के पास आरक्षतियों और जनता के पास नोटों तथा सिक्कों के रूप में विद्यमान रहती है।

$$H = C + RR + ER$$

H = उच्च शक्ति मुद्रा
C = करेंसी
RR = आवश्यक रिजर्व
ER = अतिरिक्त रिजर्व

उच्च शक्ति मुद्रा बैंक जमाओं के विस्तार और मुद्रा पूर्ति के निर्माण का आधार है। यह बैंक जमा के विस्तार और मुद्रा पूर्ति के निर्माण का आधार है। मुद्रा पूर्ति मौद्रिक आधार में परिवर्तन के साथ प्रत्यक्ष रूप से और करेन्सी और रिजर्व अनुपातों के साथ विपरीत परिवर्तित होती है।

6.7.5 अन्य कारक (Other Factors)

मुद्रा पूर्ति मौद्रिक अधिकारियों द्वारा निर्धारित केवल उच्चस्तरीय मुद्रा का ही फलन नहीं है , बल्कि ब्याज दरों , आय और अन्य कारकों का भी फलन है। व्यावसायिक क्रिया में परिवर्तन जनता और बैंकों के व्यवहार को परिवर्तित कर सकते हैं। अतः मुद्रापूर्ति केवल बहिर्जात नियंत्रण (Exogenous Controllable) मद ही नहीं बल्कि अंतर्जात निर्धारित मद भी है।

मुद्रा पूर्ति एवं बैंक साख एक दूसरे के साथ परोक्ष रूप से सम्बन्धित हैं। जब मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होती है तो उसका एक भाग जमाकर्ता की बचत प्रवृत्ति पर निर्भर करते हुये बैंकों में जमा कर दिया जाता है। यही बचतें बैकों की जमाएं बन जाती हैं। इसे आगे कानूनी रिजर्व आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद उधार देने में प्रयुक्त किया जाता है।

इस प्रकार मुद्रा पूर्ति में प्रत्येक वृद्धि के साथ बैंक साख बढ़ती है।

6.8 सारांश (Summary)

मुद्रा की पूर्ति मुद्रा की वह मात्रा है जिसे एक देश की जनता वस्तुओं एवं सेवाओं को खरीदने के लिए अपने पास रखती है। मुद्रा की पूर्ति से आशय उस करेन्सी से है जो जनता के पास तथा कामर्शियल बैकों में मांग जमा के रूप में विद्यमान है। सामान्य रूप से मुद्रा की पूर्ति से आशय करेन्सी तथा मांग जमा को ही शामिल तथा मांग पत्र जमा को ही शामिल किया जाना चाहिए और बचतों तथा जमाओं को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए। मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति से अभिप्राय मुद्रा की उस मात्रा से है जो किसी समय परिचलन में रहती है। मुद्रा की कुल पूर्ति को अपने कार्य अथवा प्रभाव के आधार पर दो मुख्य भागों में बांटा गया है। एक भाग वह जो केन्द्रीय सरकार के खजाने , केन्द्रीय बैंक तथा वाणिज्य बैंकों के पास 'आधार' अथवा 'आरक्षित मुद्रा' के रूप में रखा जाता है। मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति से आशय मुद्रा की कुल मात्रा के दूसरे भाग से है जो व्यय करने योग्य रूप में जनता को किसी समय प्राप्त होती है। मुद्रा के मूल्य निर्धारक तत्व के रूप में मुद्रा के प्रभावकारी पूर्ति ही अधिक महत्वपूर्ण होती है।

मुद्रा स्टॉक होने के साथ-साथ उसका एक गुण यह भी है कि उसमें प्रवाह रहता है। मुद्रा की विभिन्न इकाइयाँ विनिमय की क्रिया में कई हाथों से बराबर गुजरती हैं और हर बार मुद्रा का कार्य करती हैं। जब मुद्रा के प्रचलन वेग का राष्ट्रीय आय के साथ सम्बन्धित किया जाता है तो उसे मुद्रा का आय प्रचलन वेग कहा जाता है।

आवश्यक रिर्जव अनुपात मुद्रा पूर्ति का अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है। किसी देश का केन्द्रीय बैंक ही मुद्रा पूर्ति निर्धारित करने के लिए व्यापारिक बैंक की कोषों या तरल कोषानुपात को प्रभावित करते हैं । व्यापारिक बैंकों के अतिरिक्त रिजर्व ही उसकी जमा देयताओं के आकार को प्रभावित करते हैं। बैंक अपने अतिरिक्त रि जर्व के बराबर ही कर्ज देते हैं और अतिरिक्त रिजर्व मुद्रा पूर्ति का आवश्यक अंग है। यदि लोगों में बैंक में जमा करने की प्रवृत्ति नहीं है तो वे अपनी बचतों को अपने पास ही नकदी के रूप में रखना उचित समझते हैं तो बैकों द्वारा साख निर्माण अपेक्षाकृत कम होगा और मुद्रा की पूर्ति का स्तर भी नीचे होगा।

उच्च शक्ति मुद्रा वह मुद्रा है जो व्यापारिक बैंकों के पास आरक्षतियों और जनता के पास नोटों तथा सिक्कों के रूप में विद्यमान रहती है। व्यावसायिक क्रिया में परिवर्तन जनता और बैंकों के व्यवहार को परिवर्तित कर सकते हैं। अतः मुद्रापूर्ति केवल बहिर्जात नियंत्रण मद ही नहीं बल्कि अंतर्जात निर्धारित मद भी है।

6.9 शब्दावली (Glossary)

- **न देने योग्य मुद्रा-** Non Disposable Money
- **मौद्रिक सम्प्रदाय-** अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्री मौद्रिक सम्प्रदाय के कहे जाते हैं।
- **सावधि जमा-** काल जमा (Time Deposit)
- **वैधानिक नकद अनुपात-** Statutory Liquidity Ratio
- **उच्च शक्ति मुद्रा -** High Powered Money (H+C+RR)
- **कुल मौद्रिक संसाधन-** Aggregate Monetary Resources

6.10 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Type Question)

1- मुद्रा की पूर्ति एवं मुद्रा स्टॉक में अंतर क्या है?

2- मुद्रा की पूर्ति की माप के सम्बन्ध में विभिन्न अवधारणाओं के नाम बताइये।

3- संकुचित मुद्रा कौन सी होती है।
4- भारत की किस कार्यकारी दल ने मुद्रा पूर्ति के चार संघटक बताये हैं?
5- विस्तृत मुद्रा कौन सी होती है।
6- मुद्रा पूर्ति के चार निर्धारक तत्व कौन कौन से हैं।

6.11 संदर्भ सहित ग्रन्थ (Bibliography)

- सिहाई, जी. सी., जे पी मिश्रा एव ंके. पुल गुप्ता: अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा।
- सेठी, टी. टी.: मुद्रा बैकिंग एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा।
- झिंगन, एम. एल.ः समष्टि अर्थषास्त्र, वृंदा पब्लिरिकन, नई दिल्ली।

6.12 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)

- Mithani, D.M.(2008) International Economics, Himalaya Publishing House.
- Mithani, D. M. (1998), Modern Public Finance, Himalaya Publishing House. Mumbai.
- Musgrave, R. A. and P. B. Musgrave (1976), Public Finance in Theory and Practice McGraw Hill, Kogakusha, Tokyo.
- Agrawal, Deepak (2009), Money Banking, Public Finance & International Economics , Himalaya Publishing House.

6.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1- मुद्रा पूर्ति के विभिन्न अवयवों की व्याख्या कीजिए?
2- मुद्रा पूर्ति के निर्धारकों की विवेचना कीजिए?
3- भारत में मुद्रा पूर्ति के विभिन्न कार्यों की व्याख्या कीजिए?

इकाई-7 मुद्रा स्फीति, अवस्फीति, विस्फीति, संस्फीति एवं स्फीतिबद्ध गतिरोध

7.1 प्रस्तावना (Introduction)
7.2 उद्देश्य (Objectives)
7.3 मुद्रास्फीति से आशय (Meaning of Inflation)
7.4 मुद्रा स्फीति के प्रकार (Types of Inflation)
- 7.4.1 सामान्य मूल्य मुद्रा स्फीति (General Price Inflation)
- 7.4.2 प्रतिबन्धित मुद्रास्फीति (Restricted Inflation)
- 7.4.3 अनियन्त्रित स्फीति (Uncontrolled Inflation)
- 7.4.4 पूर्ण तथा अर्द्धस्फीति (full and Semi Inflation)
- 7.4.5 कारण के आधार पर मुद्रास्फीति (Inflation based on the cause)
- 7.4.6 गति के अनुसार मुद्रास्फीति (Speed Inflation)
- 7.4.7 समय के अनुसार स्फीति (Inflation over time)
- 7.4.8 आकार के अनुसार स्फीति (Inflation by size)
- 7.4.9 नियन्त्रण के अनुसार स्फीति (Inflation by Content)
- 7.4.10 निष्क्रिय मुद्रा स्फीति (Internal Inflation)

7.5 मुद्रा स्फीति के कारण (Causes of Inflation)
- 7.5.1 मांग पक्ष (Demand Side)
- 7.5.2 पूर्ति पक्ष (Supply Side)

7.6 मुद्रा स्फीति के प्रभाव (Effects of Inflation)
7.7 मुद्रा स्फीति को नियन्त्रित करने के उपाय (Measures to control Inflation)
7.8 मुद्रा अवस्फीति अथवा मुद्रा संकुचन (Deflation)
7.9 मुद्रा अवस्फीति एवं मुद्रा विस्फीति (Deflation and Disinflation)
- 7.9.1 मुद्रा अवस्फीति के कारण (Causes of Deflation)
- 7.9.2 मुद्रा अवस्फीति के प्रभाव (Effects of Deflation)
- 7.9.3 मुद्रा अवस्फीति के नियन्त्रण के उपाय (Measures to control Deflation)

7.10 मुद्रा संस्फीति (Reflation)
- 7.10.1 मुद्रा संस्फीति के नियन्त्रण के उपाय (Measures to control Reflation)

7.11 स्फीतिबद्ध गतिरोध अथवा निस्पन्द स्फीति या स्फीति गतिहीनता (Stagflation or Inflationary Stagnation)
- 7.11.1 निस्पन्द स्फीति के कारण (Causes of Stagflation)
- 7.11.2 स्फीतिबद्ध गतिरोध अथवा निस्पन्द स्फीति को नियन्त्रित करने के उपाय (Measures to Control Stagflation)

7.12 सारांश (Summary)
7.13 शब्दावली (Glossary)
7.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Practice Question Answer)
7.15 संदर्भ सहित सूची (Bibliography)
7.16 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

वर्तमान समय में विश्व के विकसित एवं अर्द्धविकसित देशों में मुद्रा स्फीति की समस्या आर्थिक नीतियों का प्रमुख लक्ष्य बनी हुयी है। मुद्रास्फीति किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के लिए कितनी महत्वपूर्ण है अथवा कितनी दुष्प्रभावी है अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों एवं लोगों पर इसका कितना प्रभाव पड़ता है , यह मात्र अर्थशास्त्र के विषय क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है। सिद्धान्तों एवं विश्लेषणों की परिधि के परे स्फीति ने आम चर्चा के विषय का स्थान पा लिया है। मुद्रास्फीति , अवस्फीति, संस्फीति, स्फीतिबद्ध गतिरोध जैसे अवधाराणाओं का आशय समझना अति आवश्यक हो गया है।

मुद्रास्फीति हो या अवस्फीति या कोई और प्रकार , अर्थव्यवस्था पर इनका प्रभाव पड़ने के कारण इनका अध्ययन महत्वपूर्ण है। इनको नियन्त्रण करने के विभिन्न उपायों से अवलोकित होना और उसे किस हद तक अर्थव्यवस्था पर लागू किया जा सकता है इसका ज्ञान अतिआवश्यक है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में अधिकतर मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन देखे जाते है। इस दृष्टि से इन अवधारणाओं के महत्व को समझना , इनके विभिन्न रूपों का ज्ञान महत्वपूर्ण है।

प्रस्तुत अध्याय इन्हीं सब विषय क्षेत्र पर प्रकाश डालता है। मुद्रास्फीति के प्रकार , उसके प्रभावित क्षेत्र एवं उसके नियन्त्रण के उपायों को समझना नितान्त आवश्यक है जिससे अर्थव्यवस्था पर विभिन्न नीतियों को लागू करके उसकी दशा को सुधारा जा सकता है। विकासशील एवं अर्द्धविकसित देशों में जहाँ मुद्रास्फीति से लोग प्रभावित होते है वही सुस्ती और बेरोजगारी भी एक समस्या बनी हुयी है। ऐसी स्फीतिबद्ध गतिरोध को नियन्त्रण करने के उपाय को भी इस अध्याय में समझाने का प्रयास किया गया है।

7.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत अध्याय मुद्रास्फीति के विभिन्न रूपों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डालता है। मुद्रास्फीति किस प्रकार अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों वर्गो एवं लोगों को प्रभावित करती है और मुद्रास्फीति एक आम चर्चा का विषय क्यों बन गया है , इस अध्याय को पढ़कर यह समझा जा सकता है। प्रस्तुत अध्याय का अध्ययन समष्टि अर्थशास्त्र के क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण अध्ययन है। मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन जिससे कि सामान्य कीमत स्तर में परिवर्तन होता है, किसी भी अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है। एक अर्द्धविकसित देश की अर्थवयवस्था अलग तरह प्रभावित होती है और एक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति की समस्या भिन्न है।

प्रस्तुत इकाई उन सभी तंत्रों पर प्रकाश डालती है जिससे मुद्रास्फीति का नियन्त्रण राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतियों के तहत उपयुक्त तरीके से हो सके।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप-

- ✓ मुद्रा स्फीति से परिचित हो सकेंगे।
- ✓ मुद्रा स्फीति के प्रकारो से अवगत हो सकेंगे।
- ✓ मुद्रास्फीति का अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव को जानेंगे।
- ✓ मुद्रास्फीति नियन्त्रण के उपाय को जानेंगे।
- ✓ अवस्फीति एवं संस्फीति से अवगत हो सकेंगे।

7.3 मुद्रास्फीति से आशय (Meaning of Inflation)

जब मुद्रा की मात्रा अर्थव्यवस्था में बढ़ जाती है और उसका मूल्य कम हो जाता है तथा साथ ही साथ कीमत स्तर में भी बृद्धि होती है तो मुद्रा स्फीति की स्थिति पैदा हो जाती है। सामान्यतः कीमत स्तर में होने वाली निरन्तर वृद्धि को मुद्रा स्फीति कहते है। इसकी दशा में सरकारी बजट में लगातार घाटा रहता है। अत्यधिक भाग होने पर वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्ति उसे पूरा नहीं कर पाती तो कीमतों पर इसका प्रभाव पड़ने लगता है। कीमतों में इस सतत् वृद्धि को मुद्रास्फीति कहा जाता है।

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न परिभाषाएँ इस संदर्भ में प्रस्तुत की-
सेम्यूलसन (Samuelson) के शब्दों में, *"मुद्रा स्फीति से हमारा अभिप्राय उस समय से है जिससे कीमते बढ़ी रही होती है। (By inflation we mean a time of generally rising prices)"*
गार्डनर एक्ले (Gardner Ackley)- *"हम मुद्रा स्फीति की परिभाषा बढ़ी हुयी कीमतों के रूप में देते है न कि ऊँची कीमतो के रूप में। (We define inflation as rising prices and not as high prices)"*
शेपीरो (Shapiro) के अनुसार, *"मुद्रा स्फीति सामान्य कीमत स्तर में होने वाली निरन्तर और अत्यधिक वृद्धि है। (Inflation is persistent and appreciable rise in general price level)"*
कोलबोर्न (Colbourne) के अनुसार, *"मुद्रास्फीति वह अवस्था है जिसमें बहुत अधिक मुद्रा बहुत कम वस्तुओं का पीछा करती है। (Inflation is the stage of too much money chasing too few goods)"*
संक्षेप में कहा जा सकता है कि मुद्रास्फीति कीमत स्तर के निरन्तर बढ़ने की प्रक्रिया है। (Inflation is the process of persistent rise in price level)

7.4 मुद्रा स्फीति के प्रकार (Types of Inflation)

अर्थव्यवस्था में मूल्य स्तर वृद्धि की दरों उनके प्रभावों तथा प्रमुख प्रकार को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है-

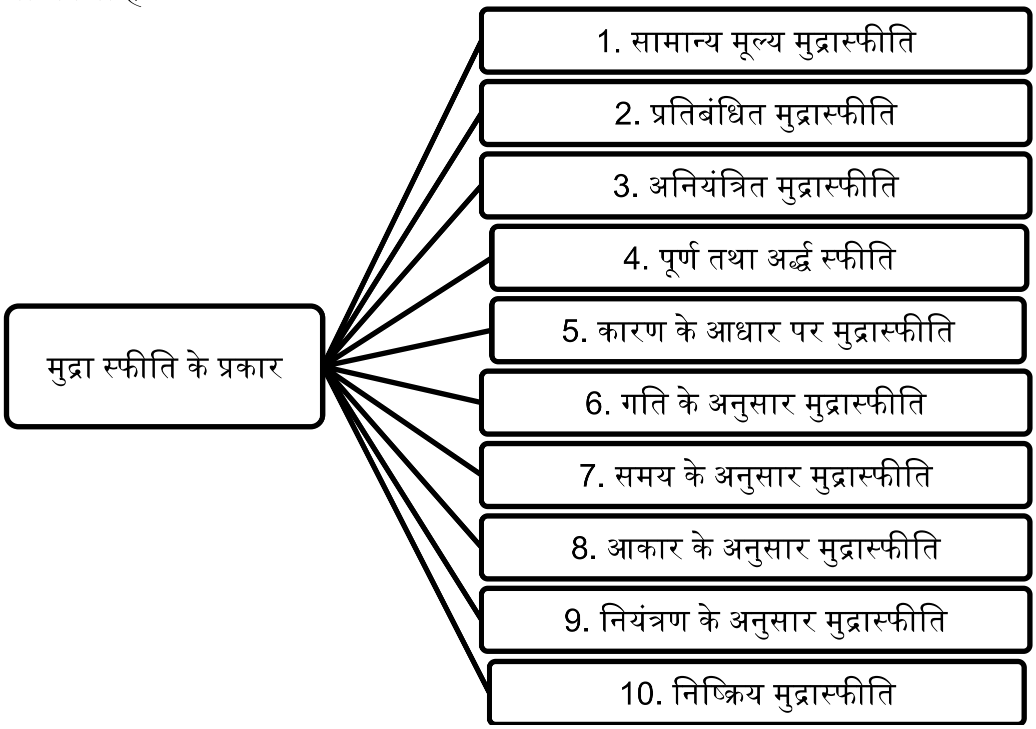

7.4.1 सामान्य मूल्य मुद्रा स्फीति (General Price Inflation)

इसे स्वतन्त्र या मंद मुद्रास्फीति भी कहते है। बिना सरकारी नियन्त्रण के होने वाली यह मुद्रास्फीति लोगों की आय के बढ़ने से अर्थव्यवस्था में वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा के उस अनुपात में न बढ़ने पर मूल्यों में होने वाली स्वाभाविक वृद्धि है। यह मन्द मुद्रास्फीति भी है क्योंकि उत्पादन में धीरे-धीरे वृद्धि होती रहती है जिससे अर्थव्यवस्था में कोई हानिकारिक प्रभाव नहीं पड़ता।

7.4.2 प्रतिबन्धित मुद्रास्फीति (Suppresed Inflation)

मूल्यों के वृद्धि में नियंत्रण लगाने से मूल्य स्तर का बढ़ना रूक जाता है जैसे राशनिग या प्रत्यक्ष मूल्य नियन्त्रण रीति से सरकार मूल्यों में होने वाली वृद्धि को रोक देती है। परन्तु भविष्य में यह रोकी गयी मुद्रास्फीति फिर से उत्पन्न होती है। मूल्य में वृद्धि को उत्पन्न होने वाली शक्तियां अर्थव्यवस्था में मौजूद रहती है जिससे कि समय पड़ने पर यह मुद्रास्फीति का रूप धारण कर लेती है।

7.4.3 अनियन्त्रित स्फीति (Uncontrolled Inflation)

जब मुद्रा का चलन इतना बढ़ जाता है तो प्रायः मुद्रा के मूल्य में भारी गिरावट आ जाती है। सरकार की सारी नीतियां भी कारगर सिद्ध नहीं हो पाती है। शीघ्रता से बढ़ते हुये इस मूल्य वृद्धि का अर्थव्यवस्था पर भीषण प्रभाव पड़ता है। प्रायः सभी बैंक जमाएँ समाप्त हो जाती है और लोग मुद्रा के बदले वस्तुओं ओर सेवाओं को खरीदने लगते है जिससे कि पूर्ति कम होने लगती है और मुद्रास्फीति को पोषित करती है। 1920-23 में जर्मनी में इतनी अत्यधिक मुद्रास्फीति हो गयी कि उसका नियन्त्रण असम्भव हो गया।

7.4.4 पूर्ण तथा अर्द्धस्फीति (final and Semi Inflation)

यह वर्गीकरण केन्स द्वारा किया गया। पूर्ण रोजगार की अवस्था से पहले मुद्रा की मात्रा में वृद्धि रोजगार में बढ़ोत्तरी के साथ उत्पादन लागतो में वृद्धि करेगा जिससे कीमते भी बढ़ जायेगी। पूर्ण रोजगार की अवस्था से पहले इस स्थिति को केन्स ने अर्द्ध स्फीति (Semi Inflation) का नाम दिया है। एक बार जब पूर्ण रोजगार का बिन्दु पहुँच जाता है तो मुद्रा की मात्रा में वृद्धि का रोजगार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और अब केवल कीमतें ही बढ़ेगी। ऐसी स्थिति पूर्ण स्फीति की स्थिति होगी।

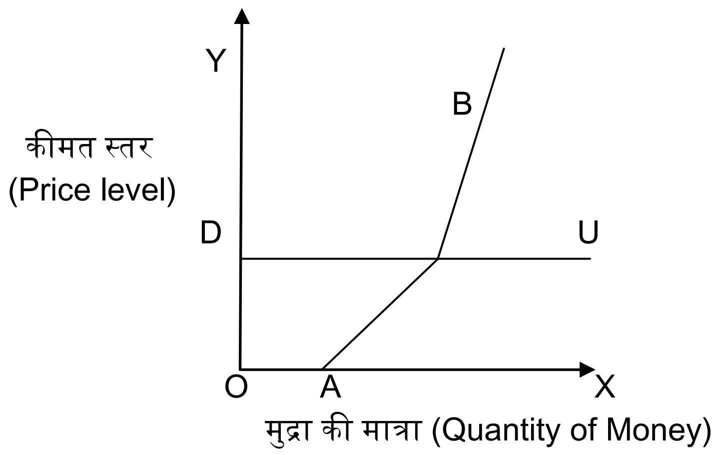

DU रेखा पूर्ण रोजगार की रेखा है जो x अक्ष के समान्तरण खीची गयी है। मुद्रा की मात्रा में वृद्धि इस रेखा के पहले तक उत्पादन को भी बढ़ायेगी और अर्द्ध स्फीति की दशा रहेगी। एक बार जब अर्थव्यवस्था इस रेखा को पार कर जाती है तो इसका अर्थ यह होता है कि पूर्ण रोजगार की स्थिति आ चुकी है और उत्पादन में वृद्धि नहीं हो सकती क्योंकि साधनों का पूर्ण उपयोग हो चुका है। ऐसी स्थिति को पूर्ण स्फीति की दशा कहा गया है। आधुनिक अर्थशास्त्री पूर्ण रोजगार की स्थिति को कल्पना मात्र ही मानते है।

7.4.5 कारण के आधार पर मुद्रास्फीति (Inflation based on the cause)

कई कारणों से मुद्रास्फीति उत्पन्न हो सकती है। यदि वस्तुओं की पूर्ति में कमी के कारण कीमत स्तर में वृद्धि होती है तो उस स्थिति को वस्तु स्फीति (Commodity Inflation) कहते है।

यदि मुद्रा का मात्रा में अत्यधिक वृद्धि के कारण कीमत बढ़ती है तो उसे चलन स्फीति (Currency inflation) करते है। यदि साख की मात्रा में अत्यधिक वृद्धि के कारण स्फीति होती है तो उसे साख स्फीति (credit inflation) कहा जाता है। करो में वृद्धि अथवा अन्य वित्तीय कारणों से यदि कीमतों में वृद्धि होती है और स्फीति उत्पन्न होती है तो उसे वित्तीय स्फीति (Fiscal Inflation) कहते है। कारणों के आधार पर स्फीति को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

- मांग जनित मुद्रास्फीति
- लागत जनित मुद्रास्फीति

1.मांग जनित मुद्रास्फीति (Demand Pull Inflation)- जब लोगों की आय बढ़ने के कारण उनके द्वारा वस्तु एवं सेवाओं की मांग अत्यधिक बढ़ जाती है और उसकी पूर्ति उत्पादन में वृद्धि न होने के कारण नहीं हो पाती है तो इससे कीमतों में अत्यधिक वृद्धि उत्पन्न हो जाती है। मांग में वृद्धि होने के कारण जनित मुद्रास्फीति को मांग जनित मुद्रास्फीति कहा गया है।

2. लागत जनित मुद्रास्फीति (Cost Push Inflation)- यह सिद्धान्त मुद्रास्फीति का एक नवीन सिद्धान्त है। 1960 के पश्चात् अमेंरिका तथा दूसरे विकसित देशों में पाई जाने वाली विशेष परिस्थितियों के कारण इसका जन्म हुआ। एक तरफ कीमतों में वृद्धि और उत्पादन एवं मांग में कमी , उत्पादन लागतों में होने वाली वृद्धि के फलस्वरूप लागत जनित मुद्रास्फीति उत्पन्न होती है।

प्रो. ए.एस. केंम्पना के अनुसार *"लागत प्रेरित स्फीति लागतो में होने वाली वृद्धि के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। इस स्थिति में कुल मांग अपर्याप्त होती है। साधन बेरोजगार होते है।"*

रेनलर्ट के अनुसार *"लागत प्रेरित स्फीति सिद्धान्त का आधार यह है कि श्रम तथा व्यापार दोनों में ही संगठित समूह, अपनी वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमत सामान्य प्रतिस्पर्धा बाजारों में प्रचलित कीमतों से ऊँची रखते है।"*

इस तरह की मुद्रास्फीति कई कारणों से हो सकती है जैसे-

1) मजदूरी की दर में वृद्धि
2) लाभ की दर में वृद्धि
3) प्रमुख कच्चे माल की लागत में वृद्धि

क्रियाओं के आधार पर भी मुद्रास्फीति के विभिन्न रूप हो सकते है।

1. घाटा प्रेरित स्फीति (Deficit Induced Inflation)- जब सरकार अपनी आय से अधिक व्यय करती है तो उस घाटे की पूर्ति अधिक मुद्रा चलन में जारी करती है तो इस प्रक्रिया तो हीनार्थ प्रबन्धन कहते है। ऐसा करने से मुद्रास्फीति को स्थिति उत्पन्न होती है।

2. वेतन प्रेरित स्फीति (Wage Induced Inflation)- जब मजदूरी में वृद्धि का अनुपात श्रम की उत्पादकता में वृद्धि से अधिक है तो उत्पादन लागत एवं कीमत स्तर में वृद्धि होती है।

3. लाभ प्रेरित स्फीति (Profit Induced Inflation)-उत्पादन लागत में कमी होने पर कीमतों को नीचे गिरने में जब कृत्रिम उपायों द्वारा रोका जाता है तो उत्पादकों के लाभ में वृद्धि होता है। कीमते बढ़ती तो नहीं पर नीचे आ जाती है। इस प्रकार की स्थिति को केन्स ने लाभ प्रेरित स्फीति कहा है।

7.4.6 गति के अनुसार मुद्रास्फीति (Speed Inflation)

गति के आधार पर मुद्रास्फीति को चार भागों में बांटा गया है-

1.रेंगती स्फीति (Creeping Inflation)- जब कीमत स्तर में धीरे-धीरे वृद्धि होती है , तो उस रेंगती स्फीति कहा जाता है। यह अर्थव्यवस्था के लिए विकासोन्मुख होती है। केन्स का यही विचार है कि ऐसी स्फीति अर्थव्यवस्था के लिए उपयुक्त है। कीमत स्तर में दो-तीन प्रतिशत तक की वृद्धि को रेंगती हुयी स्फीति कहा गया है।

2.चलती स्फीति (Walking Inflation)- कीमतों में वृद्धि की गति बढ़ जाने से रंेगती स्फीति चलतीं स्फीति में परिवर्तित हो जाती है। किसी दशक में कीमतों में होने वाली वृद्धि 30-40 प्रतिशत होने पर चलती स्फीति उत्पन्न होती है।

3.दौड़ती स्फीति (Running Inflation)- कीमतों में अत्यधिक वृद्धि जिसके फलस्वरूप थोडे ही समय में कीमत पर्याप्त मात्रा में बढ़ जाती है तो उसे दौड़ते स्फीति कहा जाता है। ऐसे में स्थिर आय वालों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। किसी दशक में स्फीति की दर 80 से 100 प्रतिशत होने पर दौड़ती स्फीति उत्पन्न होती है और यह बचतों को हतोत्साहित करती है। इसको थामने के शीघ्र उपाय करना आवश्यक हो जाता है।

4.सरपट दौड़ती स्फीति (Galloping Inflation or Hyper Inflation)- कुछ अर्थशास्त्री इसे मुद्रास्फीति का भयंकर राक्षस कहते है। प्रथम युद्ध के पश्चात् जर्मनी में इसी प्रकार की स्फीति उत्पन्न हुयी। मुद्रा का मूल्य इतना अधिक गिर गया कि मुद्रा पर से लोगो का विश्वास खत्म हो गया। कीमते एक समय एक साल में दस लाख गुना अधिक हो गयी थी। ऐसे में सारी अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है। और निर्धन वर्ग के लिए अति हानिकारक हो जाती है।

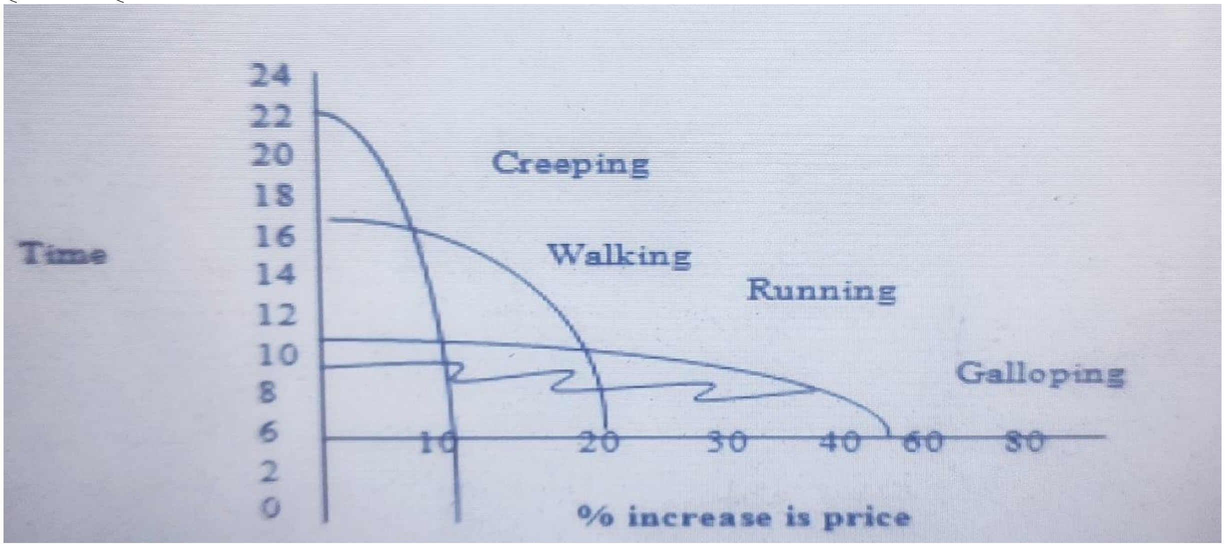

चित्र

चित्र में गति के आधार पर मुद्रास्फीति के रूपों को प्रदर्शित किया गया है। एक अन्य प्रकार से भी इन रूपों का समझा जा सकता है।

1.रेंगती स्फीति- 2 प्रतिशत के करीब वार्षिक वृद्धि पर

2.चलती स्फीति- 2-5 प्रतिशत के करीब वार्षिक वृद्धि पर

3.दौड़ती स्फीति- 5-10 प्रतिशत के करीब वार्षिक वृद्धि पर

4.सरपट दौड़ती स्फीति- 10 से अधिक प्रतिशत के करीब वार्षिक वृद्धि पर

7.4.7 समय के अनुसार स्फीति (Inflation over time)

समय के अनुसार मुद्रास्फीति को राजनीतिक स्थिति के आधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. युद्धकालीन मुद्रा स्फीति (Pre war inflation)- ऐसे काल में मुद्रा की मात्रा में वृद्धि उत्पादन के ढाँचे में परिवर्तन तथा विदेशी व्यापार की समस्याओं के कारण मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न होती है।

2.युद्ध पश्चात् स्फीति (Post war inflation)- ऐसी स्थिति में दो कारणों से मुद्रा स्फीति की प्रवृत्ति जारी रह सकती है। युद्ध के पश्चात् नष्ट हुयी मशीनों जहाजों , पुलों, रेलवे लाइनों आदिका फिर से निर्माण करने के लिए

सरकार द्वारा अधिक व्यय किया जाता है। सरकारी ऋणो की वापसी के फलस्वरूप भी लोगों के पास मुद्रा का मात्रा बढ़ जाती है। परन्तु उत्पादन में धीमी वृद्धि के कारण वस्तुओं एवं सेवाओं में अधिक वृद्धि नहीं हो पाती है। अतः युद्ध के बाद भी कीमतों में वृद्धि जारी रहती है।

3.शांतिकालीन मुद्रा स्फीति (Peace time inflation)- आर्थिक विकास के कार्याक्रमों को पूरा करने और आर्थिक नियोजन हेतु सरकार को घाटे की वित्त व्यवस्था अपनानी पड़ती है जिससे अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है। फलस्वरूप कीमतों में जो वृद्धि होती है, उसे शान्तिकालीन मुद्रा स्फीति कहते है।

7.4.8 आकार के अनुसार स्फीति (Inflation by size)

आकार के अनुसार मुद्रास्फीति को दो भागों में विभाजित किया जाता है।

1.व्यापक मुद्रास्फीति (Comprehensive Inflation)- जब सभी वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हो , तो उसे व्यापक स्फीति कहते है।

2.खण्डीय मुद्रास्फीति (Sectional Inflation)- जब कुछ विशेष वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हो तो उसे खण्डीय स्फीति कहते है। यह प्रायः अस्थायी प्रकार की होती है।

7.4.9 नियन्त्रण के अनुसार स्फीति (Inflation by Content)

1.खुली मुद्रास्फीति (Open Inflation)- जब कीमतो में वृद्धि का किसी पर नियन्त्रण न हो, जब स्वतन्त्र रूप से वृद्धि हो तो खुली स्फीति होती है।

2.दबी मुद्रास्फीति (Puppressed Inflation)- जब सरकार द्वारा कीमत नियन्त्रण तथा राशनिंग के माध्यम से कीमतों की वृद्धि को रोका जाता है उसे दबी स्फीति कहा जाता है।

7.4.10 निष्क्रिय मुद्रा स्फीति (Internal Inflation)

जब मुद्रस्फीति एक ही दर पर लगातार बढ़ती जाती है तो उसे निष्क्रिय मुद्रास्फीति कहते है। **सैम्यूलसन** तथा **नारडस** ने इसकी तुलना एक ऐसे कुत्ते से की है जो एक स्थान पर सोता है, शान्ति भंग की स्थिति में दूसरी जगह चला जाता है और फिर सो जाता है यही दशा निष्क्रिय मुद्रास्फीति की है।

7.5 मुद्रा स्फीति के कारण (Causes of Inflation)

मुद्रास्फीति को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारणों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

(1) मांग पक्ष

(2) पूर्ति पक्ष

7.5.1 मांग पक्ष (Demand Side)

निम्नलिखित कारणों से मुद्रास्फीति उत्पन्न होती है।

1.सार्वजनिक व्यय में वृद्धि (Increase in the Public Expenditure)
2.घाटे की वित्त व्यवस्था (Deficit Financing)
3.सस्ती मौद्रिक नीति (Cheap Monetary Policy)
4.व्यय योग्य आय में वृद्धि (Increase in the Disposable Income)
5.काले धन में वृद्धि (Increase in the Black Money)
6.निवेश में वृद्धि (Increase in Investment)
7.करों में कमी (Decrease in Taxes)
8.सार्वजनिक ऋण में कमी (Decrease in Public Debt)
9.जनसंख्या में वृद्धि (Increase in the Population)

10.निर्यात में वृद्धि (Increase in the Exports)

7.5.2 पूर्ति पक्ष (Supply Side)

पूर्ति पक्ष से अभिप्राय वस्तुओं या उत्पादन की वह उपलब्ध मात्रा है जिस पर लोग अपनी आय व्यय कर सकते है। मुद्रा स्फीति की अवस्था में पूर्ति में उस अनुपात में वृद्धि नहीं होती जिस अनुपात में मांग में वृद्धि होती है। इसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में असन्तुलन आ जाता है। इस असन्तुलन के कारण ही कीमतों में वृद्धि होने लगती है। पूर्ति पक्ष पर मुख्य रूप से निम्नलिखित तत्वों का प्रभाव पड़ता है-

1.उत्पादन में कमी (Less Production)
2.कृत्रिम अभाव (Artificial Scarcity)
3.सरकार की कर नीति (Taxation Policy of the Government)
4.खाद्यान्न में कमी (Scarcity in Food Grains)
5.औद्योगिक झगड़े (Industrial Disputes)
6.तकनीकी परिवर्तन (Technological Changes)
7.कच्चे माल की कमी (Lack of Raw Materials)
8.प्राकृतिक विपत्तियाँ (Natural Calamities)
9.उत्पादन का ढांचा (Structure of Production)
10.युद्ध (Wars)
11.अन्तर्राष्ट्रीय कारण (International Causes)
12.सरकार की नई औद्योगिक नीति (New Industrial Policy of the Government)
13.उत्पादन में गतिरोध (Obstacles in Production)

7.6 मुद्रा स्फीति के प्रभाव (Effects of Inflation)

मुद्रास्फीति का अर्थव्यवस्था के आर्थिक व सामाजिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। मूल्य वृद्धि से हर आय वर्ग के लोगों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। एक तरफ जहां कुछ अर्थशास्त्री यह मानते है कि रेंगती हुयी मुद्रास्फीति अर्थव्यवस्था के उत्पादन , रोजगार एवं आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है वहीं यही रेंगती स्फीति की दर बढ़ जाने पर यह उतनी ही हानिकारक भी हो सकता है। देश की आम जनता खुद को और भी निम्न वर्ग का महसूस करने लगती है।

1.ऋणी और ऋणदाताओं पर प्रभाव (Effect on Debtors and Creditors)- स्फीति के कारण ऋणी वर्ग को लाभ होता है क्योंकि वास्तविक मूल्य पहले की अपेक्षा कम हो जाती है। परन्तु ऋणदाता को हानि होती है क्योंकि कीमतो में वृद्धि से मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है और उसे दी हुयी ऋण का उन्हें वास्तविक मूल्य कम मिलता है।

2.निवेशकर्ता पर प्रभाव (Effect on Investors)- ऐसे निवेशकर्ता जो प्रतिभूतियों डिबेन्चर्स आदि में निवेश करके निश्चित आय प्राप्त करते है , उन्हें स्फीति से हानि प्राप्त होती है क्योंकि मुद्रा का वास्तविक मूल्य कम हो जाता है। वही ऐसे निवेशकर्त्ता जो किसी कम्पनी के शेयर खरीदे होते है उनकी आय मुद्रास्फीति के दौरान बढ़ती जाती है और उन्हें लाभ प्राप्त होता है।

3.उद्यमियों पर प्रभाव (Effect on Entrepreneurs)- यह वो वर्ग है जिसे स्फीति से लाभ प्राप्त होता है। इसके कई कारण हो सकते है जैसे वस्तुओं की माँग का बढ़ जाना , जिससे उत्पादन बढ़ता है और ऊँची कीमते प्राप्त होती है। दूसरा स्फीति से पूर्व ही उनके द्वारा कच्चा माल खरीदा गया होता है। यहां तक की मजदूरी में होने वाली वृद्धि कीमतो में वृद्धि की अपेक्षा कम होती है। ऋण लिए हुये उद्यमी को स्फीति की दशा में लाभ ही प्राप्त करते है।

4.कृषको पर प्रभाव (Effect on Farmers) - किसानों पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है क्योंकि वे फसलों के उत्पादक होते है। उनके कृषक वस्तुओं की कीमत लागतों की अपेक्षा अधिक होती है।

5.निश्चित आय वर्ग पर प्रभाव (Effect on Fixed Salaried Class)- इस वर्ग में श्रमिक, क्लर्कों, अध्यापक और अन्य नौकरी पेशा लोग सम्मिलित है। इन्हें निःसन्देह अधिक हानि उठानी पड़ती है। वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों में वृद्धि होने पर भी इनकी मौद्रिक आय में कोई वृद्धि नहीं होती। परिणामस्वरूप मुद्रा का मूल्य कम भी हो जाने से वे कम वस्तुएँ एवं सेवाएँ खरीद पाते है।

6.बचत पर प्रभाव (Effect on Saving)- एक तरफ मुद्रा का मूल्य का कम होना एवं कीमतो का बढ़ाना , लोगों के बचत प्रवृत्ति को हतोत्साहित करता है। बच तों की सम्भावना कम हो जाती है क्योंकि मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है।

7.रोजगार पर प्रभाव (Effect on Employment)- रोजगार पर प्रभाव अनुकूल होता है क्योंकि उत्पादको को लाभ होता है जिससे वे अधिक उत्पादन करते है , नए-नए उद्योग स्थापित करने की संभावनाएँ बढ़ जाती है। यह सब स्फीति की प्रारम्भिक अवस्था में दृष्टिगत होता है जब तक पूर्ण रोजगार की स्थिति नहीं आ पाती। एक बार जब पूर्ण रोजगार की स्थिति आ जाती है तब साधन प्रयुक्त होने की दृष्टि में उत्पादन नहीं बढ़ता और सम्पूर्ण प्रभाव कीमत पर पड़ता है। कम आय वाले लोग , वस्तुएं नहीं खरीद पाते , मांग कम होने लगती है और बेरोजगारी फैल जाता है।

8.भुगतान संतुलन पर प्रभाव (Effect on Balance of Payments) - स्फीति का अर्थव्यवस्था के भुगतान संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विदेशी वस्तुओं का आयात बढ़ जाता है क्योंकि देश में लोगों की मांग बढ़ जाती है। निर्यात हतोत्साहित होते है क्योंकि देश में लोगो की मांग को पूरा करना आवश्यक हो जाता है। ऐसे में अर्थव्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं पाती है। मुद्रास्फीति ऐसे में अर्थव्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं पाती। मुद्रास्फीति एक बाधक के रूप में कार्य करती है जब आयात कम करके निर्यात को प्रोत्साहन करना होता है। ऐसे में भुगतान संतुलन की स्थिति और भी जटिल हो जाती है।

9.सार्वजनिक ऋणों पर प्रभाव (Effect on Public Debt)- कीमतों में वृद्धि का असर सरकार द्वारा प्रारम्भ की गयी योजनाओं पर पड़ता है। उनका व्यय बढ़ जाता है। और सरकार को जनता से ऋण लेना पड़ता है।

10.नैतिक प्रभाव (Moral Effect)- स्फीति से नैतिकता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। व्यापारी वर्ग मुनाफाखोरी , जमाखोरी, मिलावट आदि जैसे प्रवृत्तियों में लिप्त हो जाते है। एन्ड्यु **डॉ. व्हाइट** ने अपनी पुस्तक "Flat money Inflation in France" में लिखा कि "फ्रांसीसी क्रान्ति काल में मुद्रा प्रसार के कारण फ्रांस के प्रमुख षहरों में विलासिता तथा दुराचार, जो लूटने की अपेक्षा गम्भीर दोष थे , चारो ओर फैल गये थे।" सरकारी कर्मचारी भी भ्रष्ट हो जाते है।

11.सामाजिक एवं राजनैतिक प्रभाव (Social and Political Effect) - स्फीति का हानिकारक प्रभाव सामाजिक एवं राजनैतिक स्तर पर आर्थिक प्रभाव की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। मुद्रास्फीति के कारण जनता के रोष, असन्तोष फैल जाता है। स्फीति के कारण ही जर्मनी , इटली, फ्रांस, स्पेन आदि में राजनैतिक परिवर्तन हुये। जिस समाज में निरन्तर मुद्रा स्फीति रहती है उसमें निःसन्देह सट्टेबाजों एवं जमाखोरी की अधिक लाभ प्राप्त होता है न कि शिक्षक या गुरूओं का।

12.मुद्रा में अविश्वास (No Confidence in Money)- प्रो. हाट्रे के शब्दों में "मुद्रास्फीति के कारण मुद्रा में अविश्वास उत्पन्न होता है और परिणामस्वरूप दीर्घकालीन ऋणो का देना बहुत कम हो जाता है।" ब्याज की दर भी ऊँची हो जाती है।

एक बार मुद्रा का कुचक्र उत्पन्न होता है तो मूल्य बढ़ने से आय, उत्पादन तथा रोजगार के स्तर बढ़ते है और फिर लागत आदि बढ़ने पर कमते बढ़ने लगती है। आगे चलकर सट्टेबाजी की प्रवृत्तियां भी उत्पन्न हो जाती है। इन सब कारणों से मूल्य में पुनः वृद्धि होने लगती है जब एक बार मूल्य बढ़ जाता है तो स्वतः ऐसी क्रियाएं होने लगती

है जिससे मूल्यों ने पुनः होने लगती है। इस कुचक्र के द्वारा स्फीतिकारी रूप पूरी अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है।

7.7 मुद्रा स्फीति को नियन्त्रित करने के उपाय (Measures to control Inflation)

मुद्रास्फीति वैध होते हुये भी आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। हाट्रे के शब्दों में, "यदि मुद्रा स्फीति को प्रारम्भ में ही पैर जमाने की अनुमति दे दी जाय , तो इसके नियन्त्रण से बाहर होने की सम्भावना कम हो जाती है।"
निम्नलिखित उपायों द्वारा मुद्रास्फीति को रोका जा सकता है।

मुद्रास्फीति नियन्त्रण के उपाय

मौद्रिक उपाय
1. मुद्रा का मात्रा पर नियंत्रण
2. पुरानी करेंसी का विमुद्रीकरण
3. साख नियंत्रण

राजकोषीय उपाय
1. सार्वजनिक व्यय में कमी
2. सार्वजनिक ऋणों में वृद्धि
3. पुराने ऋणों को चुकाने में विलम्ब
4. करों में वृद्धि से व्यय प्रयोज्य आय में कमी
5. मुद्रा का अतिमूल्यन से आयात बढेंगे और निर्यात कम होंगे
6. घाटे की वित्त व्यवस्था में कमी

अन्य उपाय
1. उत्पादन में वृद्धि
2.उचित व्यापारिक नीति
3. उचित निवेश नीति
4.कीमतनियन्त्रणएवं राशिनिंग

गुणात्मक

परिमाणात्मक
1.बैंक दर में वृद्धि
2. न्यूनतम नकद कोष में वृद्धि
3. प्रतिभूतियों को खुले बाज़ार में बेचना
4. साख में राशिनिंग
5. सीमांत आवश्यकता में वृद्धि आदि।

उपरोक्त उपायों द्वारा मुद्रास्फीति को नियन्त्रण किया जा सकता है। यह इसलिए आवश्यक है जिससे कि अर्थव्यवस्था पर इसका हानिकारक प्रभाव न पड़े। सट्टेबाजी को नियन्त्रण करने से मूल्यों का स्तर अनावश्यक बढ़ने से रोका जा सकता है। सरकार भी लाभ वितरण पर प्रतिबन्ध लगाकर हिस्सेदारो के लाभ को उपभोग पर व्यय करने से रोक सकती है। इससे उस सीमा तक मुद्रा प्रसार पर नियन्त्रण सम्भव होगा।

7.8 मुद्रा अवस्फीति अथवा मुद्रा संकुचन (Deflation)

मुद्रा अवस्फीति की विपरीत स्थिति को मुद्रा संकुचन कहते है। जब किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति कम हो जाती है जिसके फलस्वरूप वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमते गिरती है अथवा मुद्रा को मूल्य बढ़ता है तो उसे मुद्रा अवस्फीति की दशा कहते है।

क्राउथर के शब्दों में *"मुद्रा संकुचन वह स्थिति है जिसमें मुद्रा का मूल्य बढ़ता है और वस्तुओं का मूल्य घटता है।"* यह प्रकार का आर्थिक रोग है जहाँ कीमतों के पतन के फलस्वरूप आय , उत्पादन एवं रोजगार के स्तरों में गिरावट आती है।

7.9 मुद्रा अवस्फीति एवं मुद्रा विस्फीति (Deflation and Disinflation)

यह कहना कदापि उचित नहीं होगा कि मुद्रा के मूल्य में वृद्धि और कीमतों में कमी मुद्रा संकुचन है। यह एक अस्पष्ट और दोषपूर्ण आशय है। मुद्रा संकुचन के फलस्वरूप आय , उत्पादन, रोजगार आदि के स्तरो में भी गिरावट आती है। यह स्थिति मुद्रा अवस्फीति की होती है। किन्तु यदि कीमतों में गिरावट के परिणामस्वरूप उत्पादन और रोजगार के स्तरों में किसी प्रकार की गिरावट नहीं आती तब यह स्थिति मुद्रा विस्फीति (Disinflation) की स्थिति कही जायेगी।

मुद्रा संकुचन मूलरूप में सरकारी नीति के कारण ही होता है। जब देश का भुगतान संतुलन निरन्तर पक्ष में हो, विदेशी से स्वर्ण अथवा पूंजी का निरन्तर आयात होने पर भी न तो मुद्रा की मात्रा में वृद्धि हो और न ही वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि होने दी जाय तो मुद्रा विस्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

प्रो. ए.सी. पीगू- मुद्रा संकुचन कीमत स्तर में गिरावट की वह अवस्था है जो उस समय उपस्थित होती है जबकि वस्तुओं और सेवाओं की उत्पादन (मुद्रा की मांग) मौद्रिक आय (मुद्रा की पूर्ति) की तुलना में तेजी से बढ़ता है।

सबसे उपयुक्त परिभाषा **पॉल एन्जिंग** द्वारा दी गयी है- *"मुद्रा अवस्फीति को असन्तुलन को ऐसी स्थिति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें क्रय षक्ति का संकुचन कीमत स्तर में गिरावट का कारण या परिणाम होता है।"* मुद्रा अपस्फीति वह प्रक्रिया है जब मुद्रास्फीति की स्थिति को सामान्य स्तर पर लाने के लिए मुद्रा की मात्रा में क्रमशः कमी की जाती है।

दोनों मुद्रा अवस्फीति एवं अपस्फीति का उद्देश्य वस्तुओं के मूल्यों और मुद्रा का मात्रा में कमी करना होता है परन्तु संकुचन की मात्रा आवश्यकता से भी कम कर दी जाती है। जबकि अपस्फीति में मुद्रा की मात्रा को एक असामान्य ऊँचे स्तर (Extraordinary high level) से कम कर धीरे-धीरे सामान्य स्तर पर लाने की चेष्टा की जाती है।

कॉलबोर्न के अनुसार "कीमतो, आय तथा व्यय में जो भी गिरावट लाभकारी होगी वह अपस्फीति कहलाएगी।"

दोनों मुद्रा अवस्फीति और मुद्रा अपस्फीति में निम्नलिखित अंतर है।

1.उद्देश्य (Objectives)- मुद्रा संकुचन का प्रभाव देश में जहां मंदी की स्थिति उत्पन्न करता है वही मुद्र अपस्फीति मूल्य स्तर की सामान्य अवस्था में लाने के वास्ते की जाती है।

2.स्वाभाविक अथवा योजनाबद्ध(Natural or Planned)- मुद्रा संकुचन प्रायः अपने आप स्वतः परिस्थितिवश हो जाता है जबकि मुद्रा अपस्फीति एक निश्चित नीति के अनुसार की जाती है। सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक इसके लिए सक्रिय कदम उठाते है।

3.मुद्रा की मात्रा (Quantity of Money)- मुद्रा अपस्फीति में मुद्रा की मात्रा को घटाकर सामान्य स्तर तक लाया जाता है जबकि मुद्रा अवस्फीति में मुद्रा की मात्रा सामान्य स्तर से गिरकर बहुत नीचे चली जाती है।

4.परिणाम (Consequence)- मुद्रा अपस्फीति के फलस्वरूप देश की सामान्य स्थिति उत्पन्न होती है जबकि मुद्रा संकुचन में मुद्रा की मात्रा सामान्य स्तर से गिरकर बहुत नीचे चली जाती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि एक तरफ मुद्रा संकुचन है , जो देश की अर्थव्यवस्था के लिए एक आर्थिक रोग है, हानिकारक है, वही दूसरी ओर मुद्रा अपस्फीति है, जो देश की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए होती है।

मुद्रा अपस्फीति के लिए सरकारी ऋण पत्रों को बेचकर अथवा नए-नए कर लगाकर चलन से अतिरिक्त मुद्रा कम करने का प्रयास किया जाता है। बचतो को प्रोत्साहन देकर , पूर्ण क्षमता से अधिक उत्पादन करके शीघ्र

अतिशीघ्र उसमें वृद्धि करके मुद्रा का मात्रा के साथ सामंजस्य स्थापित किया जाता है अन्यथा पुरानी मुद्रा का एक बड़ा भाग रद्द करने के विकल्प भी उठाया जाता है जैसा कि जर्मनी में किया गया था।
यह निश्चित रूप से स्वीकार करने योग्य है कि मुद्रा अपस्फीति सदा बिगड़ी हुयी स्थिति में सुधार लाने के लिए किया जाता है।

7.9.1 मुद्रा अवस्फीति के कारण (Causes of Deflation)

1.मुद्रा की मात्रा में कमी (Reduction in the Quantity of Money)- सरकार द्वारा अपरिवर्तनशील नोटो एवं प्रादिष्ट मुद्रा की प्रचलन को कुछ अंशों में बन्द कर देती है परन्तु नए नोटो को जारी भी नहीं करती देश में मुद्रा संकुचन की स्थिति पैदा हो जाती है। यह भी संभावना है कि मुद्रा की मात्रा यथास्थिर रहे परन्तु वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा में वृद्धि हो जाय तो मुद्रा संकुचन की दशा उत्पन्न होती है।
2.बैंक दर में वृद्धि (Increase in Bank Rate)- केन्द्रीय बैंक द्वारा बैंक दर में वृद्धि के फलस्वरूप साख महंगा हो जाता है। साख की मात्रा कम हो जाने से कीमतो का गिरना प्रारम्भ हो जाता है। और अर्थव्यवस्था में मुद्रा संकुचन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।
3.खुले बाजार की क्रियाएँ (Open Market Operation)- जब केन्द्रीय बैंक द्वारा सरकारी प्रतिभूतियां बेची जाती है तो अर्थव्यवस्था से मुद्रा की मात्रा कम हो जाती है। बैंको में जमा राशि भी कम हो जाती है क्योंकि सरकारी प्रतिभूतियां खरीदने के लिए लोग अपनी जमा राशि बैंकों से निकालकर इसके लिए भुगतान करते है। साख निर्माण शक्ति कम हो जाने से साख मुद्रा संकुचन हो जाते है।
4.सरकार का कराधान प्रणाली (Taxation Policy of the Inflation) - सरकार द्वारा भारी मात्रा में कर लगाने पर सार्वजनिक व्यय के द्वारा इसका प्रयोग भी नहीं करती तो देश में मुद्रा संकुचन को स्थिति पैदा हो जाती है।
5.उत्पादन में वृद्धि (Increase in Production)- मुद्रा मात्रा में होने वाली वृद्धि के अनुपात में यदि वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा में वृद्धि अधिक तेजी से हो तो भी मुद्रा संकुचन की स्थिति पैदा हो जाती है। आयातों में वृद्धि से भी वस्तुओं इस सेवाओं की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

7.9.2 मुद्रा अवस्फीति के प्रभाव (Effects of Deflation)

जितना मुद्रास्फीति के दुष्प्रभाव होते है उससे कहीं ज्यादा भंयकर हानिकारक प्रभाव मुद्रा अवस्फीति के कारण हो जाता है। मंदी किसी भी अर्थव्यवस्था को एक धक्का देकर पीछे धकेल देती है। तीसा का महामन्दी इसका एक जीवन्त उदाहरण है। मुद्रा अवस्फीति के विभिन्न प्रभावों के निम्नलिखित रूप में विभाजित कर सकते है-

- **उत्पादन एवं रोजगार पर प्रभाव (Effects on Production and Employment-)** मुद्रा अवस्फीति के कारण कीमतों में निरन्तर गिरावट से व्यवसायिक क्षेत्र में निराशा का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। हानि उठाने के कारण विनियोग एवं उत्पादन की मात्रा घटने लगती है। रोजगार पर विपरीत असर पड़ता है। मजूदरो को कम कर दिया जाता है। परिणामस्वरूप व्यापक बेरोजगारी फैलने लगती है। राष्ट्रीय उत्पादन में कमी के कारण जनता को आर्थिक हानि भी उठानी पड़ जाती है।
- **वितरण पर प्रभाव (Effects on Distribution)-** समाज के विभिन्न वर्गो पर मुद्रा संकुचन का प्रभाव निम्नलिखित है-

1.उत्पादन एवं व्यापारी वर्ग पर प्रभाव (Effects on Production and Business)- वस्तुओं की कीमतों में गिरावट के फलस्वरूप भी उनकी मांग में वृद्धि नहीं होती। लोगों की क्रय शक्ति कम हो जाने से उत्पादकों एवं व्यापारियों को पास माल का भारी स्टॉक जमा हो जाता है। जिस गति से वस्तुओं की कीमत में गिरावट होती है

उस गति से उत्पादन लागत में कभी नहीं होती। इन कारणों से लाभ मात्रा कम हो जाती है और उत्पादकों को हानि पड़ जाती है।

2.विनियोग वर्ग पर प्रभाव (Effects on Investment)- मुद्रा अवस्फीति के परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के अंश एवं प्रतिभूतियों के मूल्य गिरने लगते है जिससे व्यवसाय में धन लगाने वाले व्यक्तियों को बहुत हानि होती है। विनियोजको को भारी हानि का सामना करना पड़ता है।

3.श्रमिको और वेतनभोगियों पर प्रभाव (Effects on Worker and Salaried Earness) - जब शुरू में कीमत गिरती है तो श्रमिक लाभ को स्थिति में होते है क्योंकि उनके मजदूरी दरें यथा स्थिति होता है परन्तु समय के साथ उद्योगपति मजदूरी घटाने के साथ मजदूर की छंटनी भी करने लग जाते हैं। कई मजदूर बेकार हो जाते है और उनकी आर्थिक स्थिति खराब हो जाती है। साथ ही वेतनभोगियों के लिए भी मुद्रा अवस्फीति की स्थिति हानि की स्थिति उत्पन्न करती है। शूरू में कीमते गिरने से उनको चीजे सस्ती मिलती है पर जब धीरे-धीरे कुछ कर्मियों को रोजगार से हाथ धोना पड़ जाता है कम वेतन लेने को वे बाध्य हो जाते है। शुरू के लाभ हानि में परिवर्तित हो जाते है।

4.उपभोक्ता वर्ग पर प्रभाव (Effect on Consumers)- उपभोक्ता वर्ग दोनो तरह के होते है एक निश्चित आय वाले और एक अनिश्चित आय वाले। निश्चित आय वाले सीमित व्यय के बदले अधिक मात्रा में वस्तुओं एवं सेवाओं का उपभोग कर पाते है लेकिन अनिश्चित आय वाले उपभोक्ताओं को हानि उठानी पड़ जाती है क्योंकि उनकी मौद्रिक आय वस्तुओं और सेवाओं की तुलना में अधिक तेजी से गिरती है। स्थिति इतनी विकट हो जाती है जब भुखमरी की नौबत तक आ जाती है।

5.ऋण तथा ऋणदाता वर्ग पर प्रभाव (Effect on Creditor and Debtors) - ऋणदाताओं के लिए ये लाभप्रद स्थिति होती है है क्योंकि मुद्रा का मूल्य बढ़ जाता है और वस्तुओं के मूल्य कम हो जाते है। ऋण में दी गयी मुद्रा की अपेक्षा उनकी अधिक मूल्य वाली मुद्रा प्राप्त होती है। वहीं दूसरी ओर ऋणी के लिए यह हानि की स्थिति होनी क्योंकि उसे अधिक मूल्य वाली मुद्रा को देना पड़ता है।

6.कृषक वर्ग पर प्रभाव (Effect on Agricultural Class)- कृषि वस्तुओं की कीमतें गिर जाने से किसानों को उत्पादन का कम मूल्य मिलता है। आमदनी कम हो जाती है और उन्हें अपने जीवयापन के लिए भी उधार लेना पड़ता है। अधिकांश कारखाने बंद हो जाने से उनके कच्चे माल की मांग और कीमतों में भी भारी गिरावट आ जाती है।

7.सार्वजनिक ऋणो के भार में वृद्धि (Increase in the Burden of Public Debt)- मौद्रिक आय में गिरावट से करदाताओं को मुद्रा के रूप में कम राशि का भुगतान करना पड़ता है। मुद्रा की क्रयशक्ति बढ़ जाने के कारण वस्तुओं और सेवाओं के रूप में कर का भार बढ़ जाता है। कृषि पदार्थो के मूल्यों में में तेजी से गिरावट से उनकी मौद्रिक आय कम हो जाती है जिससे वह अपना उधार चुका नहीं पाते। सरकार पर भी ऋण की अदायगी का भार बढ़ जाता है। पुराने ऋणो का भुगतान करने के लिए सरकार नए ऋण ले लेती है। अतः का भार बढ़ जाता है।

8.बैंकिग व्यवसाय का चरमराना (Crashing Down of Banking Business)- अर्थव्यवस्था में मंदी होने से व्यावसायिक क्षेत्र में भारी निराश उत्पन्न हो जाती है। बैंक का व्यापार कार्य ठप्प हो जाता है। ऋण की मांग भी कम हो जाती है क्योंकि निवेश प्रभावित है। पुराने ऋणों की वसूली कठिन हो जाती है। जनता बैं कों से अपनी जमाराशियां निकालने लगती है। अनेक बैंकिंग संस्थाएँ इस कारण धराशायी हो जाती है।

9.विदेशी व्यापार पर प्रभाव (Effect on Foreign Trade) - घरेलु कीमत स्तर नीचा हो जाने के कारण निर्यात की प्रोत्सान मिला है ओर आयात हतोत्साहित होते है। परिणामतः देश का भुगतान सन्तुलन अनुकूल हो जाता है। स्वदेशी मुद्रा का मूल्य बढ़ जाता है।

10.सामाजिक नैतिक एवं राजनैतिक प्रभाव (Social, Moral and Political Effects)- व्यापक बेरोजगारी और भुखमरी को जन्म देकर मुद्रा अवस्फीति सामाजिक अपराधों को नियन्त्रण देती है। मजदूरी में कटौती और

उनकी छंटनी से मालिक मजदूर के बीच संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। सरकार के प्रति अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। यह सत्य है कि दीर्घकालीन अवस्फीति भी सामाजिक क्रान्ति को नियन्त्रण दे सकती है।

7.9.3 मुद्रा अवस्फीति के नियन्त्रण के उपाय (Measures to control Deflation)

सरकार द्वारा नीति संबंधी उपाय (Policy Measures by Govt)-

1. नए निर्माण कार्य से रोजगार एवं आय में वृद्धि करना।
2. ऋणों की वापसी से जनता और बैंको में रकम की वृद्धि होना।
3. आर्थिक सहायता से रोजगार की संभावना को बढ़ाना।
4. करों में छूट से जनता की क्रयशक्ति में वृद्धि करना।
5. निर्यतों का प्रोत्साहन से अतिरिक्त वस्तुओं का मात्रा को कम करना।
6. सरकार द्वारा माल की खरीद से मूल्य की स्थिरता को बनाये रखना।
7. विदेशी पूंजी को प्रोत्साहन से नयी पूँजी का बाजार में आना।

7.10 मुद्रा संस्फीति (Reflation)

मुद्रा संस्फीति ऐसी स्थिति है जब संकुचन के कारण बिगड़ी अर्थव्यवस्था की हालत सुधारने के लिए जानबूझकर साख और मुद्रा की मात्रा में वृद्धि करके वस्तु मूल्यों में वृद्धि करने का कार्य किया जाता है।

कोल (G.D.H Cole) के शब्दों में *"संस्फीति का तात्पर्य उस स्फीति से लिया जा सकता है जो कि मंदी के प्रभावों को दूर करने के लिए जानबूझकर की जाती है। (Reflation may be defined as inflation deliberately undertaken to release a depression)"*

मुद्रा स्फीति में जहां साख और मुद्रा की मात्रा में वृद्धि परिस्थिति होती है वही मुद्रा संस्फीति तो हमेंशा जानकर मुद्रा संकुचन से बिगड़ी हुई स्थिति में सुधार करने के लिए की जाती है। मुद्रा संस्फीति का उद्देश्य संकुचन की अवस्था में सुधार लाना है। इससे अर्थव्यवस्था में सन्तुलन का स्थिति उत्पन्न होती है। जानबूझकर मुद्रा की मात्रा बढ़ाने से उसे निश्चित सीमा पर रोका भी जा सकता है। देश की अर्थव्यवस्था को लाभ पहुँचाने की दृष्टि से इस कार्य को किया जाता है।

7.10.1 मुद्रा संस्फीति के नियन्त्रण के उपाय (Measures to control Reflation)

सरकारी बजटों में घाटा दिखाकर अधिक मुद्रा चलन में डाला जा सकता है। साथ ही साथ सरकारी निर्माण कार्यों की गति तेज करके अधिक मुद्रा चलन में लाई जा सकती है। और रोजगार की मात्रा को बढाया भी जा सकता है। केन्द्रीय बैंक बैंक दर कम कर दे जिससे कि व्यवसायिक बैंक भी बाजार ब्याज की दर कम करवाकर साख की सस्ती दर पर उपलबध करवा सकें।

उत्पादन की मात्रा में वृद्धि हेतु सहायता एवं प्रोत्साहन दिया जाये जिससे औद्योगिक वर्ग में अधिक उधार लेने तथा अधिक पूँजी लगाने की संभावना मिल जाती है। पूंजी विनियोग के लिए करों में छूट तथा अन्य सुविधा देने से निवेशको भी प्रोत्साहन मिलता है और अर्थव्यवस्था पुनः स्थायित्व की ओर अग्रसर हो जाती है।

7.11 स्फीतिबद्ध गतिरोध अथवा निस्पन्द स्फीति या स्फीति गतिहीनता (Stagflation or Inflationary Stagnation)

मुद्रा स्फीति वर्तमान की सबसे बड़ी आर्थिक समस्या है। परन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के वर्षो में संसार के अधिकांश देशों में तेजी से जो आर्थिक विकास हुआ, वह विशेष रूप से 1973 के बाद, औद्योगिक देशों की अर्थव्यवस्था को एक नए आर्थिक संकट के समक्ष लाकर खड़ा कर दिया। मुद्रास्फीति की दर का अत्यधिक

ऊँचा होता और आर्थिक विकास की गति एकाएक रुक जाने से सुस्ती की स्थिति उत्पन्न हो गयी जबकि एक तरफ कीमतों में तेजी से वृद्धि होने लगी।

इस स्थिति को व्यक्त करने के लिए Stagflation शब्द का प्रयोग किया गया। Stagflation दो शब्दों से मिलकर बना है। Stagflation + inflation जब विकास में स्थिरता और आर्थिक निष्क्रियता के साथ स्फीति मौजूद हो। निस्पन्द स्फीति सामान्य बेरोजगारी तथा मुद्रास्फीति का सम्मिलित रूप है जहां मुद्रास्फीति एवं सुस्ती दोनों साथ-साथ रहते है। मजदूरी दरों में वृद्धि होने के बावजूद लोगों का रोजगार मिलने में कठिनाई होती है। मांग भी बढ़ती हुयी नहीं दिखती है। बिक्री में कमी हो जाती है।

स्फीतिक गतिहीनता या स्फीतिबद्ध गतिरोध और स्फीतिक सुस्ती एक दूसरे के पर्यायवाची माने जाते है। कीमतों का एक तरफ निरन्तर बढ़ना एवं बेरोजगारी में कोई कमी आना किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए एक चुनौतिपूर्ण स्थिति है। अनेक देश ऐसे ही विकास एवं रोजगार की स्थिति से ग्रसित है। व्यापक बेरोजगारी में कमी करने के प्रयासों में सफलता नहीं मिली है।

विकासशील देशों में निस्पनद स्फीति से अभिप्राय उस स्थिति से है जिसमें कीमतें तो बढ़ रही है परन्तु कुल उत्पादन में वृद्धि की दर बहुत कम है। चूँकि कृषि क्षेत्र में वृद्धि की स्थिति ही वास्तविक स्थिति को व्यक्त करती है। मुद्रास्फीति एवं औद्योगिक सुस्ती का सम्मिश्रण ही स्फीतिबद्ध गतिरोध की स्थिति की स्पष्ट व्याख्या है।

7.11.1 निस्पन्द स्फीति के कारण (Causes of Stagflation)

1. मुद्रा की मात्रा में तीव्र गति से वृद्धि
2. धनी देश के विदेशी व्यापार में घाटा
3. मजदूरी की दरों में अप्रत्याशित वृद्धि
4. प्राकृतिक कारण जैसे बाढ़ सूखा आदि
5. स्वर्ण के मूल्य में अप्रत्याशित वृद्धि

प्रो. सेम्यूलसन के अनुसार , निस्पन्द स्फीति का प्रमुख कारण विकास शील एवं अल्प विकसित देषों में निरन्तर सूखा, बाढ़ आना है जिस कारण उत्पादन कम हो जाता है और मूल्य में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। इसी प्रकार तेल और कोयले की कीमतों में भी वृद्धि हुयी है। साथ ही रोजगार और उत्पादन की स्थिति में सुधार हुआ है।

7.11.2 स्फीतिबद्ध गतिरोध अथवा निस्पन्द स्फीति को नियन्त्रित करने के उपाय (Measures to Control Stagflation)

स्फीतिबद्ध गतिरोध किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए एक गहरी सोंच एवं चिंता का विषय है। मूल्यों के साथ बेरोजगारी वृद्धि देश के आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त हानिकारक होती है। अतः इसका नियन्त्रण नितान्त आवश्यक है। सामान्य रूप से निस्पन्द स्फीति को दूर करने के वही उपाय है जो मुद्रा स्फीति को नियन्त्रित करने हेतु अपनाऐं जाते है। ध्यान देने वाला यह है कि इससे अर्थव्यवस्था में गतिशीलता आ सके और कीमतों में वृद्धि थम सके।

निम्नलिखित कुछ उपाय उपयोगी सिद्ध हो सकते है-

1.उत्पादन में वृद्धि (Increase in Production)- बेरोजगारी की स्थिति को ध्यान में रखते हुये उत्पादन को बढ़ाना चाहिये पर कोई भी ऐसी पूंजी गहन तकनीक का प्रयोग न किया जाना चाहिये जिससे बेरोजगारी में वृद्धि हो। रोजगार बढ़ाने के प्रयास से अधिक उत्पादन किया जाय जिससे अधिक कर्मियों एवं मजदूरों को रोजगार उपलब्ध हो सके।

2.आर्थिक विकास को ध्यान में रखकर समष्टि आर्थिक नीति (Macro Economic Policy Keeping in mind the economic development)- ऐसी समष्टि आर्थिक नीति अपनानी चाहिये जिससे अर्थव्यवस्था का तीव्र गति से विकास संभव हो सके , अर्थव्यवस्था में उत्पादन शक्ति में वृद्धि हो सके जिससे कि वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन बढ़या जा सके।

3.मुद्रा स्फीति पर कठोर नियन्त्रण (Tight Control on Inflation) - यह नितान्त आवश्यक है कि आर्थिक विकास के उपायों के साथ बढ़ती कीमतों को नियन्त्रित किया जा सके। सरकार एवं केन्द्रीय बैंक द्वारा उचित मौद्रिक नीति अपनाकर इसे सफल बनाकर ऊँची कीमतों को बढ़ने से रोका जाय।

4.भुगतान संतुलन बनाये रखना (To Maintain Balance of Payment) - भुगतान असंतुलन किसी भी अल्पविकसित दांव विकासशील देशों के तिथि चिंता का विषय है। इसका दश के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः ऐसे देश के लिए यह आवश्यक है कि निर्यातों में वृद्धि के सफल उपाय खोजे और बढ़ती आयातों की मात्रा को नियन्त्रित कर सके।

5.देश के साधनों का दोहन (Explotation of Country's Resources)- उत्पादन वृद्धि के लिए आयतित साधनों पर निर्भर न रहकर देश के ही साधनों का पूर्ण दोहन किया जाना चाहिये। इससे यह लाभ होगा कि आयातों पर भारी व्यय नहीं करना पड़ेगा। देश के साधनों का भी सही उपयोग होगा। इस प्रकार देश में रोजगार की मात्रा को भी बढ़ाया जा सकता है।

6.निवेश की उचित नीति (Proper Policy for Investment)- विकासशील देशो में निवेश के लिए पर्याप्त पूंजी उपलब्ध न होने के कारण उत्पादन प्रभावित होता है। बचत के माध्यम से पूँजी का संग्रह कर उसका विनियोग इस प्रकार किया जाना चाहिये जिससे शीघ्र प्रतिफल प्राप्त हो सके।

उपरोक्त उपायों के अतिरिक्त जनसंख्या का नियन्त्रण श्रमिकों का प्रशिक्षण बैंकिग संस्थाओं का विस्तार आदि ऐसे उपाय है जिससे निस्पन्द स्फीति को रोका जा सके।

7.12 सारांश (Summary)

मुद्रास्फीति हो या अवस्फीति या कोई और प्रकार, अर्थव्यवस्था पर इनका प्रभाव पड़ने के कारण इनका अध्ययन महत्वपूर्ण है। विकासशील एवं अर्द्धविकसित देशों में जहाँ मुद्रास्फीति से लोग प्रभावित होते है वही सुस्ती और बेरोजगारी भी एक समस्या बनी हुयी है। मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन जिससे कि सामान्य कीमत स्तर में परिवर्तन होता है , किसी भी अर्थव्यवस्था को प्रभा वित करता है। एक अर्द्धविकसित देश की अर्थवयवस्था अलग तरह प्रभावित होती है और एक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति की समस्या भिन्न है।

सामान्यतः कीमत स्तर में होने वाली निरन्तर वृद्धि को मुद्रा स्फीति कहते है। अर्थव्यवस्था में मूल्य स्तर वृद्धि की दरों उनके प्रभावों तथा प्रमुख प्रकार को वर्गीकृत किया जा सकता है। कारण के आधार पर गति के अनुसार समय के अनुसार आकार के अनुसार नियन्त्रण के अनुसार आदि के रूप में मुद्रास्फीति को वर्गीकृत किया जा सकता है। मुद्रास्फीति को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारणों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है- मांग पक्ष एवं पूर्ति पक्ष।

मूल्य वृद्धि से हर आय वर्ग के लोगों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। देश की आम जनता खुद को और भी निम्न वर्ग का महसूस करने लगती है। रोजगार पर प्रभाव अनुकूल होता है क्योंकि उत्पादको को लाभ होता है जिससे वे अधिक उत्पादन करते है बचतो की सम्भावना कम हो जाती है क्योंकि मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है। मुद्रास्फीति एक बाधक के रूप में कार्य करती है जब आयात कम करके निर्यात को प्रोत्साहन करना होता है। ऐसे में भुगतान संतुलन की स्थिति और भी जटिल हो जाती है। स्फीति का हानिकारक प्रभाव सामाजिक एवं राजनैतिक स्तर पर आर्थिक प्रभाव की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। मुद्रास्फीति नियन्त्रण के मौद्रिक उपाय राजकोषीय उपाय एवं अन्य उपाय है। मुद्रा अवस्फीति की विपरीत स्थिति को मुद्रा संकुचन कहते है। मुद्रा संकुचन के फलस्वरूप आय , उत्पादन, रोजगार आदि के स्तरो में भी गिरावट आती है। यह स्थिति मुद्रा

अवस्फीति की होती है। किन्तु यदि कीमतों में गिरावट के परिणामस्वरूप उत्पादन और रोजगार के स्तरों में किसी प्रकार की गिरावट नहीं आती तब यह स्थिति मुद्रा विस्फति की स्थिति कही जायेगी।

मुद्रा संकुचन का प्रभाव देश में जहां मंदी की स्थिति उत्पन्न करता है वही मुद्र अपस्फीति मूल्य स्तर की सामान्य अवस्था में लाने के वास्ते की जाती है। मुद्रा संस्फीति ऐसी स्थिति है जब संकुचन के कारण बिगड़ी अर्थव्यवस्था की हालत सुधारने के लिए जानबूझकर साख और मुद्रा की मात्रा में वृद्धि करके वस्तु मूल्यों में वृद्धि करने का कार्य किया जाता है। निस्पन्द स्फीति सामान्य बेरोजगारी तथा मुद्रास्फीति का सम्मिलित रूप है जहां मुद्रास्फीति एवं सुस्ती दोनों साथ-साथ रहते है। मजदूरी दरों में वृद्धि होने के बावजूद लोगों का रोजगार मिलने में कठिनाई होती है। मांग भी बढ़ती हुई नहीं दिखती है। बिक्री में कमी हो जाती है।

7.13 शब्दावली (Glossary)

- **मुद्रा प्रसार (Currency Expansion)-** किसी देश की अर्थव्यवस्था में मुद्रा का अधिक मात्रा में होना
- **दीर्घकालीन (Longrun)-** लम्बी समय अवधि
- **पूर्ण स्फीति (Final Inflation)-**स्फीति की वह स्थिति जब पूर्ण रोज़गार होने के कारण उसका प्रभाव सिर्फ कीमतों पर पडता है
- **अर्द्ध स्फीति (Semi Inflation)-**पूर्ण रोज़गार से पहले की स्थिति अति मुद्रास्फीति- Hyper inflation
- **प्रतिबंधित (Restrict)-**दबा हुआ
- **रेंगती (Creeping)-** धीमी गति से चलती हुई
- **मुद्रा संकुचन (Money Contraction)-**मुद्रा की मात्रा में कमी
- **आर्थिक सहायता (Economic Help)-**अनुदान
- **अत्युत्पादन (Overproduction)-**पर्याप्त मात्रा से अधिक उत्पादन

7.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Practice Question Answer)

1- मुद्रा स्फीति में मुद्रा का मूल्य .... है।
2- स्फीति दशाओ में ऋणी को .... होता है।
3- मुद्रा स्फीति .... है और मुद्रा सकथन .... है।
4- केन्स के अनुसार, पूर्ण रोजगार स्तर से पहले प्राप्त होने वाली स्थिति .... है।
5- मुद्रा संकुचन का भुगतान संतुलन पर .... प्रभाव पड़ता है।
6- निस्पंद स्फीति का संकट वर्ष .... के बाद प्रारम्भ हुआ है।
उत्तर- 1) घटता, 2) लाभ, 3) अन्यायपूर्ण, 4) आंशिक स्फीति, 5) धनात्मक, 6) 1973

7.15 संदर्भ सहित सूची (Bibliography)

- डा0 जे0सी0 पन्त एवं जे0पी0 मिश्रा - अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
- डॉ0 एस0एन0 गुप्ता- मुद्रा बैंकिग एवं राजस्व, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
- डॉ0 टी0टी0 सेठी- मुद्रा बैकिंग एवं अन्राष्ट्रीय व्यापार लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- डॉ0 एम0एल0 निगम- समष्टि अर्थशास्त्र, वृदा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
- डॉ0 एच0एल0 आहूजा- उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, एस0 चन्द एण्ड, नई दिल्ली।

7.16 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. मुद्रा स्फीति क्या है? समाज के विभिन्न वर्गो पर इसके प्रभाव लिखिये।

2. मुद्रास्फीति अवांछनीय क्यों मानी जाती है? नियन्त्रित करने के क्या उपाय है।
3. संस्फीति एवं स्फीति में क्या अन्तर है? एवं अपस्फीति के बीच अंतर को स्पष्ट कीजिये।
4. स्फीतिबद्ध गतिरोध से क्या अभिप्राय है? इसके कारणों तथा प्रभावों की व्याख्या कीजिये।

इकाई - 8 वाणिज्यिक बैंकिंग – अर्थ, कार्य एवं विकास (Commercial Banking – Meaning, Function and Development)

8.1 प्रस्तावना (Introduction)
8.2 उद्देश्य (Objectives)
8.3 वाणिज्यिक बैंकिंग: अर्थ एवं वर्गीकरण (Commercial Banking: Meaning and Classification)
8.4 वाणिज्यिक बैंकों के कार्य (Work of Commercial Banks)
8.5 वाणिज्यिक बैंकों का विकास (Development of Commercial Banks)
8.5.1 स्वतंत्रता से पूर्व वाणिज्यिक बैंकों का विकास (Development of Commercial Banks before independence)
8.5.2 स्वतंत्रता के बाद वाणिज्यिक बैंकों का विकास (Development of Commercial Banks after independence)
8.6 वाणिज्यिक बैंकों की समस्याएँ (Problems of Commercial Banks)
8.7 सारांश (Summary)
8.8 शब्दावली (Glossary)
8.9 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Question)
8.10 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Question)
8.11 संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)
8.12 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत इकाई वाणिज्यिक बैंकिंग - अर्थ कार्य एवं विकास से सम्बन्धित है। जिसमें वाणिज्यिक बैंकों के आशय व कार्यों को जानने के साथ-साथ इनके विकास की प्रक्रिया को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया जायेगा। वाणिज्यिक बैंकिंग का मूल आधार मुद्रा के हस्तान्तरण में एक माध्यम बनकर अपना व्यवसाय चलाना है तथा उससे लाभ प्राप्त करना है। प्रारम्भ में इन बैंकों का कार्य व्यापारिक कार्यों तक ही सीमित था लेकिन वर्तमान में जनता के आर्थिक हितों को सुरक्षित करने की जिम्मेदारी इन बैंकों द्वारा स्वीकार की गयी है। इस आधार पर इन वाणिज्यिक बैंकों का विकास अलग-अलग क्रमों में हुआ है तथा उसकी गति भी समयानुसार बदलती रही है। प्रस्तुत इकाई का वाणिज्य बैंकों के साथ-साथ व्यापारी वर्ग के व सामान्य जनता से भी सम्बन्ध है। इसीलिए इस इकाई के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति को अत्यधिक उपयोगिता प्रदान की जा सकती है। इसके साथ आप वाणिज्यिक बैंकों के विकास की गति को प्रभावित करने वाले कारणों का भी अध्ययन करेंगे। बैंकों के शाखा विस्तार की गति एवं दिशा का भी अध्ययन किया जायेगा।

8.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप -

- ✓ वाणिज्यिक बैंकिंग तथा इसकी स्थापना का मूल उद्देश्य से परिचित हो सकेंगे।
- ✓ वाणिज्यिक बैंकों के प्रकार को जानेंगे।
- ✓ वाणिज्यिक बैंकों के कार्यों से अवगत हो सकेंगे । विकास किस प्रकार हुआ तथा आजादी के बाद बैंकों के विकास में क्या परिवर्तन आया?
- ✓ वाणिज्यिक बैंकों के आजादी के पूर्व एवं बाद, बैंकों के विकास में परिवर्तन को समझेंगे।
- ✓ वाणिज्यिक बैंकों की समस्याओं को जानेंगे।

8.3 वाणिज्यिक बैंकिंग: अर्थ एवं वर्गीकरण (Commercial Banking: Meaning and Classification)

आपको वाणिज्यिक बैंकिंग के नाम से यह आभास हो रहा होगा कि 'बैंकिंग' शब्द के साथ वाणिज्यिक शब्द क्यों लगाया गया है ? अतः आपको नाम से ही थोड़ा अनुमान लगाना होगा कि वाणिज्यिक बैंकिंग का सम्बन्ध वाणिज्यिक क्रियाओं से अवश्य है। सामान्य रूप से वाणिज्यिक बैंकिंग के अन्तर्गत बैंक शामिल किये जाते है, जो जनता की बचतें एकत्रित करते हैं तथा उन्हें बड़ी तथा छोटी औद्योगिक एवं व्यापारिक इकाईयों को उधार लेकर अपेक्षाकृत अधिक ब्याज पर व्यावासायिक लोगों को उधार देते हैं तथा लाभ कमाते हैं। वर्तमान में वाणिज्यिक बैंक व्यावासायिक व्यापारिक कार्यों के साथ गैर-व्यापारिक कार्यों में भी संलग्न हैं तथा विकासात्मक कार्यों में रूचि प्रकट कर रहें हैं। सारांश रूप में वाणिज्यिक बैंकिंग का मूल आधार लाभ कमाना है।

प्रो0 चैण्डलर के अनुसार इन बैंकों को वाणिज्यिक बैंक के नाम से न पुकारकर अन्य नाम से पुकारा जाना चाहिए। इन्होंने इन बैंकों को वाणिज्यिक बैंक कहना अनुचित तथा भ्रामक बताया। इन बैंकों के पास सामान्यतः अल्पकालीन राशियां ही जमा होती हैं इसीलिए ये अल्पकाल के लिए ही ऋण देने में समर्थ होती हैं। वाणिज्यिक बैंक कहलाने वाली बैंकिंग संस्थाओं के कार्यों का विस्तार हुआ है। वर्तमान में इन वाणिज्यिक बैंकों द्वारा केवल व्यापारिक कार्यों के लिए ही ऋण नहीं दिया जाता बल्कि कृषि तथा औद्योगिक विकास के लिए भी ऋण उपलब्ध कराती है। इसके अतिरिक्त ये बैंक चैकों के भुगतान , बचत को प्रोत्साहन तथा अनेक प्रकार के कार्यों द्वारा अपने ग्राहकों की सेवा करते हैं। इन वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख सृजन एक महत्वपूर्ण कार्य है जो इनकी प्राथमिक जमाओं पर निर्भर करता है। इन बैंकों द्वारा सृजित साख विनिमय माध्यम का कार्य करती है। ये बैंक नये नोट नहीं छापती है और न ही सिक्के ढालती है। इसीलिए चैण्डलर ने इन बैंकों को चैक जमा बैंक

(Cheque Deposit Bank) कहना उचित समझा। लेकिन व्यापारिक या वाणिज्यिक बैंक नाम अधिक प्रचलित हुआ है। सामान्य रूप से जनता द्वारा कहा जाने वाला बैंक का अभिप्राय ही वाणिज्यिक बैंक है। भारत में वाणिज्यिक बैंकों का वर्गीकरण निम्न रूप में किया गया है।

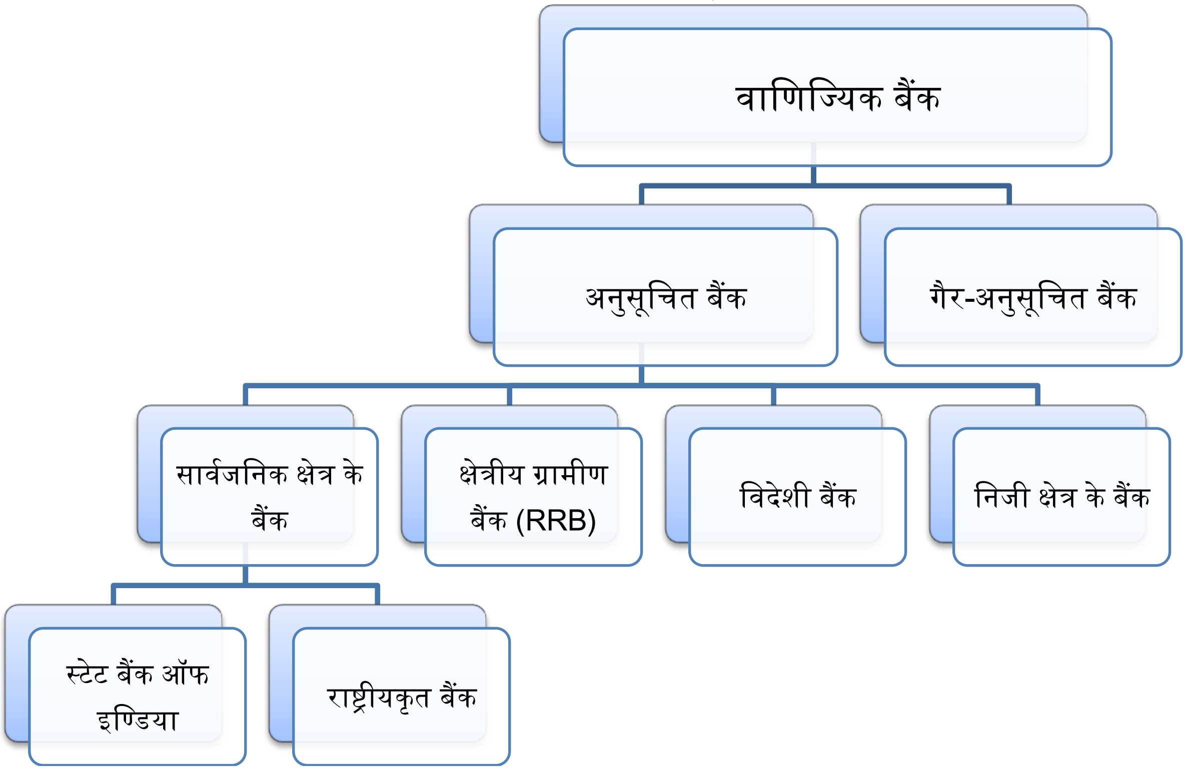

अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक (Schedule Commercial Bank)- भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम के अधीन वाणिज्यिक बैंकों को दूसरी अनुसूची में शामिल किया गया है। उन्हें अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक कहा जाता है। इन बैंकों की प्रदत्त पूंजी तथा संचित राशि रू 5 लाख से कम नहीं होनी चाहिए तथा इन बैंकों द्वारा भारतीय रिजर्व बैंकों को इस बारे में संतुष्ट करना होता है कि इनका कार्य कलाप जमा कर्त्ताओं के हितों के अनुरूप किया जा रहा है इन बैंकों की स्थापना संयुक्त पूंजी कम्पनी के रूप में होती है न कि एकल व्यापारी साझा फर्म के रूप में। इन अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों को अपनी जमा का एक निश्चित अंश भारतीय रिजर्व बैंक के पास नकद रूप में रखना होता है तथा इनको भारतीय रिजर्व बैंकों के पास समय-समय पर बैंकिंग अधितनयम, 1949 के अन्तर्गत विवरण-पत्र भी भेजना होता है।

गैर-अनुसूचित बैंक (Non Schedule Bank)- गैर-अनुसूचित बैंकों से हमारा तात्पर्य ऐसे बैंकों से है जिन्हें भारतीय रिजर्व बैंकों अधिनियम 1934 की दूसरी अनुसूची में सम्मिलित नहीं किये गये हैं तथा ये बैंकों वैधानिक नगद आरक्षण आवश्यकताओं के अधीन हैं गैर-अनुसूचित बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंकों के पास एक निश्चित राशि नहीं रखनी होती है। ये बैंक अपने पास ही नगद राशी रखते हैं। इन बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंकों से उधार लेने तथा रियायती प्रेषण की सुविधा प्राप्त नहीं है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (RRB)- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सेवाऐं पहुँचाने के लिए की गयी थी जहाँ पहले से बैकिंग सेवाऐं उपलब्ध नहीं थी। प्रारम्भ में वर्ष 1975 में 5 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गयी थी जो मुरादाबाद , गोरखपुर (उत्तर प्रदेश), भिवानी (हरियाणा), जयपुर (राजस्थान) तथा मालदा (पश्चिमी बंगाल) में स्थापित की गयी। इनकी स्थापना देश में वैयक्तिक राष्ट्रीयकृत वाणिज्यिक बैंकों के प्रायोजन पर की गयी। इन बैंकों का उद्देश्य छोटे तथा उपेक्षित किसानों , कृषि

मजदूरों, दस्तकारों और छोटे उद्यमियों को ऋण उपलब्ध कराना था ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादन सम्बन्धी क्रियाकलापों को बढ़ावा मिल सके तथा ग्रामीणों को स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजित हो सके। इन बैंकों की स्थापना ऐसी संकल्पना पर की गयी थी जिसमें सहकारी और वाणिज्यिक दोनों प्रकार की विशेषताऐं विद्यमान हो सकें।

अप्रैल 1997 से प्राथमिक क्षेत्र को ऋण देने का कार्य भी इन क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को सौंप दिया गया। कुछ स्थितियों के साथ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को रूपयों में अनिवासी खाते खोलने और रखने की स्वीकृति दी गयी। इन बैंकों को और अधिक सु दृढ़ बनाने के लिए सितम्बर 2005 में इन बैंकों को चरण बद्ध तरीके से आपसी विलय करने की प्रक्रिया को प्रारम्भ किया गया। 31 मार्च 2010 में इन बैंकों की संख्या 82 थी जिसमें 46 विलयीकृत तथा 36 पृथक बैंक शामिल थीं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक सिक्किम और गोवा के अलावा सभी राज्यों में कार्यरत हैं। 1987 के बाद कोई क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक नहीं खोला गया है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की कार्यप्रणाली में सुधार हेतु सरकार द्वारा अनेक समितियां गठित की गयी जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से दिया जा सकता है।

दान्तवाला समिति का गठन 1977 में किया गया था। इस समिति ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के संगठनात्मक ढाँचे में सुधार एवं कार्यों में संशोधन करके इनकी संरचना को और अधिक सुदृढ़ करने का सुझाव प्रस्तुत किया। इसी क्रम में 1979 में क्रेफिकार्ड समिति का गठन किया गया। इस समिति ने ग्रामीण साख को सुदृढ़ करने में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के महत्व को रेखांकित किया। इस समिति के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में बहुउद्देश्यीय एजेन्सी के रूप में ग्रामीण बैंकों की भूमिका को बढ़ाया जिससे क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का क्षेत्र व्यापक हो सका। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कार्यप्रणाली को और अधिक महत्वपूर्ण बनाने के लिए 1989 में खुसरो समिति का गठन किया गया। इस समिति के आधार पर बैंकिंग सेवाओं को ग्रामीण क्षेत्रों में दूर दराज तक ले जाने का उल्लेखनीय कार्य किया।

उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के दौर में इन बैंकों को और अधिक उपयोगी बनाये जाना आवश्यक समझा गया। इस संदर्भ में वर्ष 2004 में केलकर समिति का गठन किया गया। इस समिति ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के उद्देश्यों की पुनः समीक्षा की तथा अपनी सिफारिशों में प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के पूंजी आधार को बढ़ाने का सुझाव दिया गया। वर्तमान में देश के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास हेतु ये बैंक बढ़ चढ़ कर कार्य कर रहे हैं।

8.4 वाणिज्यिक बैंकों के कार्य (Work of Commercial Banks)

वणिज्यिक बैंकों द्वारा संपादित किये जाने वाले कार्यों को निम्न लिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।

1. बैंक जमा (Bank Deposit)- वाणिज्यिक बैंक सीधे तौर पर जनता या ग्राहकों के सम्पर्क में रहते हैं इसी लिए लोगों की बचत या अन्य स्त्रोतों से प्राप्त रूपये को जमा करते हैं। आपको यहां पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि ये बैंक खाता प्रणाली के अत्तर्गत ही लोगों के रूपयों को अपने यहां जमा करते हैं। वाणिज्यिक बैंक तीन प्रकार की जमाऐं करते हैं 1. वचत जमा, 2. चालू जमा तथा 3. मियादी जमा।

प्रथम प्रकार की जमा करने के लिए उस व्यक्ति के नाम बैंक में वचत खाता खोला जाता है तथा इस खाते में ही वह व्यक्ति अपनी वचतों को जमा करता रहता है। आवश्यकता पड़ने पर इस वचत जमा को निकाल कर अपने कार्य सम्पादित करता है। इस प्रकार की जमा धनराशि पर बैंकें ग्राहक को एक निर्धारित ब्याज भी देता है। इस खाते से सप्ताह में केवल दो बार रूपये निकाला जा सकता है।

द्वितीय प्रकार के अत्तर्गत बैंकों द्वारा जनता तथा व्यापारियों से चालू जमा प्राप्त करती हैं। इस प्रकार की जमाओं को कुछ ही समय बाद निकाला जा सकता है। इस प्रकार की जमाऐं वाणिज्यिक या व्यापारिक कार्यों के लिए की जाती है। इस प्रकार की जमाओं पर बैंक द्वारा बहुत कम ब्याज दी जाती है।

तीसरे प्रकार से वाणिज्यिक बैंक मियादी जमा प्राप्त करती हैं। मियादी जमाऐं दीर्घकाल के लिए पूर्व निर्धारित समयावाधि के लिए ली जाती है। इस समयअवधि से पूर्ण जमा राशि को निकाला नहीं जाता है। आवश्यकता पड़ने पर इस मियादी जमा पर ऋण उपलब्ध कराया जाता है। इसी लिए इस प्रकार की जमाओं पर अपेक्षाकृत अधिक ब्याज दी जाती है। यह मियादी जमा बैंकिंग साख-सृजन तथा मांग की पूर्ति के लिए अत्यधिक उपयोगी होती है।

2. बैंक उधार (Bank Borrowing)- वाणिज्यिक बैंकों का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य ऋण देना है। ये बैंक सामान्य स्तर पर व्यापारिक क्रिया-क्रलापों के उद्देश्य हेतु ऋण देती हैं लेकिन यह ऋण अल्पकालीन होता है जैसे- तीन माह, छः माह या एक वर्ष के लिए। जब किसी व्यक्ति या व्यापारी को रूपये की आवश्यकता होती है तब वह बैंक में सम्पर्क करता है, बैंक को यह पूर्ण विश्वास हो जाय कि बैंक की शर्तो पर ऋण की वापसी हो जायगी तथा ऋण का प्रयोग उद्देश्यपूर्ण होगा तो बैंक उसे ऋण प्रदान करती है। बैंक इस ऋण पर सामान्यत जमा ब्याज से अधिक ब्याज वसूल करती है। आपको यहां पर यह भी बताना अत्यन्त आवश्यक है कि बैंक इस उधार देने वाली राशी के बदले में जमानत लेती है जैसे- जमीन, मकान तथा अन्य परिसम्पत्ति से सम्बन्धित कागजात आदि।

3. वस्तुओं की सुरक्षा सम्बन्धित कार्य (Work Related to Security of Goods) - बचत जमा तथा ऋण उपलब्धता के अलावा वाणिज्यिक बैंक जनता की मूल्यवान वस्तुओं की भी सुरक्षा करता है। वाणिज्यिक बैंकों में लॉकर्स की व्यवस्था की गयी है जिसमें लोगों के सोने-चाँदी के गहने व दूसरी अन्य मूल्यवान वस्तुऐं रखी जाती हैं। बैंक इन लोगों से वस्तुओं की सुरक्षा हेतु कुछ किराया स्वरूप धनराशि भी वसूलता है। लॉकर्स की एक चाभी ग्राहक के पास तथा एक चाभी बैंक के पास रहती है। व्यक्तियों को उनकी समस्याओं से खोने , रख-रखाव तथा चोरी जैसी समस्याओं से छुटकारा मिल जाता है।

4. विकाससात्मक कार्यों में सहयोग (Cooperation in Development Work)- वर्तमान में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा विकासात्मक कार्यों में अत्यधिक सहयोग किया जा रहा है। सरकारी योजनाओं के क्रियसन्वयन में वित्तीय समावेशन बड़े स्तर पर किया जा रहा है। विकास सम्बन्धी योजनाओं को सीधे तौर पर वाणिज्यिक बैंकों से जोड़ा गया है तथा इन विकास योजनाओं में वित्तीय गड़बड़ी रोकने के लिए बैंकों का सहयोग लिया जा रहा है। तथा बैंकों द्वारा अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण करने का प्रयास किया गया है। सरकार कर्मचारियों का वेतन वित्तरण, धन का शीध्र हस्तात्तरण, सरकारी कार्यों तथा अन्य प्रपत्रों की विक्री का कार्य वाणिज्यिक बैंकों द्वारा किया जा रहा है। इसके साथ बीमा किस्तों का भुगतान , चालान जमा करना , सरकारी बॉण्ड खरीदना तथा उनके आदेशानुसार वेचना आदि कार्यों में वणिज्यिक बैंकों की सहभागिता बढ़ी है।

5 हामीदारी (Underwriting)- वाणिज्यिक बैंकों द्वारा हामीदारी भी की जाती है। ये बैंक नये हिस्सों , विशेषकर ऋण पत्रों तथा अधिमान हिस्सों की हामीदारी करते हैं इसके लिए वाणिज्यिक बैंकों द्वारा व्यापारी बैंकिंग स्थापित किये हैं। ये भारतीय औद्योगिक घरानों और विदेशी फर्मो के बीच स्थगित भुगतान समझौते कराने का कार्य करते हैं। वाणिज्यिक बैंक अनुषंगी कम्पनियों द्वारा एक बड़े ग्राहक समूह को बहुत सी सेवाऐं उपलब्ध कराती हैं।

6. खुदरा बैंकिंग (Retail Banking)- वाणिज्यिक बैंक द्वारा खुदरा बैंकेंग का कार्य भी किया जा रहा है। खुदरा बैंकिंग से हमारा तात्पर्य गृह-ऋण , चिर स्थायी उपयोग ऋण जैसे टेलीवीजन , शिक्षा ऋणों से है। ये ऋण दीर्घकालीन भी होते हैं। वर्तमान में खुदारा बैंकेंग का तेजी से विकास हुआ है। नवीन तकनीकी तथा यांत्रिक स्वचालन के कारण इस प्रणाली को अत्यधिक बल मिला है।

7. आढ़त क्रियाऐं (Brokerage Operation)- वाणिज्यिक बैंकों द्वारा आढ़त क्रियाऐं भी सम्पन्न की जाती हैं। यह एक नवीन सेवा है। इस क्रिया के अंत्तर्गत बैंक अपने वही खाता ऋणों को शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं और खाते में प्राप्त होने वाली राशि किसी अनुषंगी कम्पनी को बेच देती है , जिसे आढ़तियां कहा जाता है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वाणिज्यिक बैंकों को अनुषंगी कम्पनी कायम करने की स्वीकृति दे रखी है। इन बैंकों ने अपनी क्रियाओं

का विविधीकरण अनुषंगी कम्पनियां कायम करके बहुत सी वित्तीय सेवाओं में कर लिया है। भारतीय स्टेट बैंक तथा केनरा बैंकों द्वारा आढ़त क्रियाओं के लिए अपने अनुषंगी कम्पनियां स्थापित की हैं।

8.5 वाणिज्यिक बैंकों का विकास (Development of Commercial Banks)

यद्यपि भारत में बैंकिंग विकास का इतिहास काफी पुराना है लेकिन हम वाणिज्यिक बैंकों के विकास के संदर्भ में एक सीमित दायरे में ही इसका अध्ययन कर सकेंगे जिसे निम्नरूप में रखा जा सकता है। स्वतन्त्रता से पूर्व बैंकिंग विकास तथा स्वतन्त्रता के बाद का बैंकिंग विकास।

8.5.1 स्वतंत्रता से पूर्व वाणिज्यिक बैंकों का विकास (Development of Commercial Banks before independence)

भारत में ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ से ही 17वीं सदी में आधुनिक बैंकिंग प्रणाली का विकास हुआ। 1970 में भारत में प्रथम बैंक कोलकाता में 'बैंक ऑफ हिन्दुस्तान' सथापित किया गया किन्तु विभिन्न कारणों से यह बैंक सफल संचालन नहीं कर सका। देश में निजी तथा सरकारी प्रयासों से तीन प्रेसीडेन्सी बैंक स्थापित किये गये। सन् 1806 में बैंक ऑफ मद्रास 1840 बैंक ऑफ बाम्बे तथा 1843 में सरकार का शेयर होने के कारण सरकार का इन बैंकों पर नियंत्रण था। सन् 1912 में तीनों बैंकों को मिलाकर इम्पीरियल बैंक ऑफ इंण्डिया स्थापित किया गया जिसका जुलाई 1955 को राष्ट्रीयकरण कर दिया गया तथा इसका नाम बदलकर 'स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया' कर दिया गया।

सन् 1860 से 1913 ई. तक की समय अवधि में संयुक्त पूंजी वाले बैंकों का विकास हुआ। इस समयावधि में अनेक वाणिज्यिक बैंकों की स्थापना हुई जैसे- इलाहाबाद बैंक (1906) , पंजाब नेशनल बैंक (1894), बैंक ऑफ इण्डिया (1906), बैंक ऑफ बड़ौदा (1908), सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया (1911) तथा अन्य। वर्ष 1913 से 1939 के मध्य प्रथम विश्व युद्ध तथा अन्य कारणें से देश में वाणिज्यिक बैंकों का विकास रूक गया, लेकिन बैंकों के विकास की गति को मजबूत बनाये रखने के लिए 1930 में केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति गठित की गयी जिसकी सिफारिशों पर त्ठप् अधिनियम 1934 के आधार पर 1 अप्रेल 1935 को भार तीय रिजर्व बैंक स्थापित किया गया जिसके परिणाम स्वरूप भारत में वाणिज्यिक बैंकों के विस्तार एवं विकास को बल मिला तथा इस दिशा में नए कदम उठाने के प्रयास हुए। इसी क्रम में सन् 1945 में भारतीय बैंकिंग अधिनियम पारित किया गया जो भारत में वाणिज्यिक बैंकों के विकास के लिए एक कारगर उपाय सिद्ध हुआ। विश्व युद्धों के समय में बढ़ती हुई आर्थिक समृद्धि का लाभ उठाने के उद्देश्य से पुराने बैंकों द्वारा नयी शाखाऐं खोली गयी तथा नये-नये बैंकों की भी स्थापित किया गया।

8.5.2 स्वतंत्रता के बाद वाणिज्यिक बैंकों का विकास (Development of Commercial Banks after independence)

स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप कार्य करने के योग्य बनाया जाय इसी दिशा में मार्च 1949 को भारतीय बैंकिंग अधिनियम पारित किया गया जिसके अत्तर्गत वाणिज्यिक बैंकों के निरीक्षण करने का अधिकार भारतीय रिजर्व बैंक को दिया गया इसके वाणिज्यिक बैंक समाज के लिए अत्यधिक उपयोगी हो गये। बैंक प्रणाली को अत्यधिक सबल बनाने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा छोटे बैंकों के बड़े बैंकों के साथ विलयन की नीति अपनायी गयी जि सके परिणाम स्वरूप 1950-51 के बाद देश में वाणिज्यिक बैंकों की संख्या में लगातार कमी दर्ज की गयी 1950-51 से 1970-71 समयावधि में वाणिज्यिक बैंकों की संख्या 430 से कम होकर केवल 87 रह गयी। 1960-61 में अनुसूचित बैंकों की संख्या 256 थी जो नवम्बर 1980 में केवल 4 रह गयी। 1950 के बाद बैंक जमाओं में भी निरन्तर वृद्धि हुई।

1 जुलाई 1955 को **'इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया '** का राष्ट्रीयकरण किया गया तथा इसका नाम बदलकर **स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया** कर दिया गया। इसके साथ 8 अन्य बैंकों को सहायक बैंकों के रूप में बदल कर **'स्टेट बैंक समूह'** गठित किया गया।

स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर, स्टेट बैंक ऑफ जयपुर, स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद, स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर, स्टेट बैंक ऑफ मैसूर, स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र, स्टेट बैंक ऑफ पटियाला, स्टेट बैंक ऑफ ट्रावनकोर

जुलाई 2008 में स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र तथा जून 2009 को स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर का स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया में विलय के परिणाम स्वरूप SBI समूह में बैंकों की संख्या वर्तमान में केवल 5 रह गयी है। 19 जुलाई 1969 को 14 बड़े वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीकरण कर दिया गया।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया , बैंक ऑफ इण्डिया , पंजाब नेशनल बैंक , केनरा बैंक, यूनाइटेड कामर्शियल बैंक , सिंडीकेट बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा, यूनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया, यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, देना बैंक, इलाहाबाद बैंक, इण्डिया बैंक, इण्डियन ओवरसीज बैंक, बैंक ऑफ महाराष्ट्र

पुनः 15 अप्रैल 1980 को निजी क्षेत्र के 6 बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया।

आन्ध्रा बैंक, पंजाब एण्ड सिंध बैंक, न्यू बैंक ऑफ इण्डिया, विजया बैंक, कॉर्पोरेशन बैंक, ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स

4 सितम्बर 1993 को भारत सरकार द्वारा न्यू बैंक ऑफ इण्डिया का विलय पंजाब नेशनल बैंक में कर दिया गया। इससे देश में राष्ट्रीयकृत वाणिज्यिक बैंकों की संख्या 20 से घटकर 19 रह गयी है।

भारत में वाणिज्यिक बैंकों का वर्गीकरण सम्वैधानिकता के आधार पर किया गया है जो इन बैंकों के विकास में भी सहायक रहा है।

1. अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक(Scheduled Commercial Bank)

2. गैर अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक(Non-Scheduled Commercial Bank)

वर्ष 1990-91 में अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की संख्या 271 थी जो वर्ष 2000-2001 में बढ़कर 297 हो गयी। वर्ष 2008-09 में इन बैंकों की संख्या घटकर 165 रह गयी। इन अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों 82 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (आर.आर.बी), 19 राष्ट्रीयकृत बैंक, भारतीय स्टेट बैंक समूह के 5 बैंक , 1 आई.डी.बी.आई बैंक, 32 विदेशी बैंक तथा 26 निजी बैंक शामिल हैं।

अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की संख्या तथा जमा उधार के विकास को निम्न तालिका द्वारा आप आसानी से समझ सकते हैं।

तालिका अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का विकास

वर्ष	बैंक संख्या	बैंक जमा(करोड़ रू.)	बैंक उधार(करोड़)
1950-51	430	820	580
1970-71	73	5910	4690
1990-91	271	19254	116300
2000-01	297	962610	511430
2007-08	172	3196941	2361916
2008-09	165	3834110	2775549
2011-12	-	5909082	4611852

स्रोत- 1. RBI- Report on currency and finance 2000-01
2. Hand book statistics on Indian economy (2009-2010)

देश में मात्र 4 गैर-अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का ही विकास हो सका है। गैर अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंक से रियायती प्रेषण तथा उधार लेने की सुविधा प्राप्त नहीं होती है , क्योंकि इन गैर

अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों को निश्चित राशि भारतीय रिजर्व बैंक के पास न रखकर अपने पास रखने का अधिकार है।

भारत में वाणिज्यिक बैंकों के विकास का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि भारतीय बैंक विदेशों में भी कार्य कर रहे हैं। 30 जून 2010 को 52 देशों में भारतीय बैंक कार्य कर रहे थे जिनमें सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के बैंक भी शामिल थे। विदेशों में सार्वजनिक क्षेत्र के 16 तथा निजी क्षेत्र के 6 भारतीय बैंक अपनी सुविधाऐं प्रदान कर रहे हैं। इन भारतीय बैंकों के विदेशों में 232 शाखाऐं तथा 55 प्रतिनिधि कार्यालय संचालित थे। 30 जून 2010 को विदेशों में कार्यरत सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक में निम्न बैंक शामिल थे- भारतीय बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा, बैंक ऑफ इण्डिया, सिण्डिकेट बैंक तथा यूको बैंक।

28 देशों में भारतीय स्टेट बैंक के 42 शाखा कार्यालय , 5 सहायक संगठन , 4 संयुक्त उद्यम तथा 8 प्रतिनिधि कार्यालय हैं। बैंक ऑफ बड़ौदा के 46 शाखा कार्यालय , 8 सहायक बैंक, 1 संयुक्त उपक्रम बैंक तथा 3 प्रतिनिधि कार्यालय हैं। बैंक ऑफ इण्डिया की 14 देशों में 24 शाखाऐं हैं , 3 सहायक संगठन, 1 संयुक्त उद्यम तथा 5 प्रतिनिधि कार्यालय हैं। भारतीय बैंकों के इग्लैण्ड में सबसे अधिक शाखा कार्यालय हैं, यहां पर 18 शाखा कार्यालय हैं। हॉगकोंग , फिजी तथा मौरिशस में 7-7 शाखाऐं हैं। वहरीन , मौरीशस केमैन द्वीप समूह और वहामास में विदेशी बैंकिंग इकाईयाँ स्थापित हैं।

विदेशी बैंक (Foreign Bank)- भारत में विदेशी वाणिज्यिक बैंक भी संचालित हैं। सिटी बैंक की तरह, एचएसबीसी, स्टैण्डर्ड बैंक आदि विदेशी बैंकों की शाखाऐं संचालित हैं जिन्हें विदेशों में निगमित किया गया है। विदेशी बैंकों की शाखाऐं भारत में स्थानीय बैंकों की तरह ही वित्तीय सुविधाऐं प्रदान करती हैं। भारत में शाखाओं की संख्या सीमित होने के कारण इनका उद्देश्य भारतीय वाणिज्यिक बैंकों से अलग प्रतीत होता है। ये बैंक नई प्रौद्योगिकी लाने का कार्य करते हैं तथा अन्तर्राष्ट्रीय उत्पादों को घरेलू बाजार में परिचित कराने के साथ उनका समावेशन कराने का कार्य करते हैं ये विदेशी बैंक भारत में स्थानीय बैंकिंग उद्योग के साथ वित्तीय केन्द्रों में विदेशों में होने वाले विकास के साथ तालमेल पूँजी बाजार में पहुँच बनाने में भी सहायक हैं भारत सरकार द्वारा जनता को बैंकिंग सुविधाऐं अधिक तथा सुलभ बनाने एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया के तहत विदेशी बैंकों की संख्या बढ़ाने पर जोर दिया गया है।

बैंकिंग नियमन अधिनियम , 1949 के द्वारा भारत में विदेशी बैंकों पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं। अधिनियम की धारा 11(12) के अनुसार प्रत्येक विदेशी बैंक को भारत में कार्यालय रखने के लिए चुकता पूँजी तथा आरक्षित कोष के रूप में न्यूनतम 15 लाख की राशि रिजर्व बैंक के पास रखनी होगी। विदेशी बैंक के फेल होने पर चुकता पूँजी या आरक्षित कोष पर अधिकार प्रथमतः भारतीय जमाकर्ताओं का होगा इसके साथ कुल जमा राशि का न्यूनतम 75 प्रतिशत भाग भारत में ही रखना होगा या निवेश करना होगा। प्रत्येक विदेशी बैंक को भारतीय रिजर्व बैंक से लाइसेंस लेना आवश्यक है। इन बैंकों की अपनी अंकेषण रिपोर्ट सहित कारोबार का विवरण भारतीय रिजर्व बैंक को भेजना होता है। भारतीय रिजर्व बैंक को किसी भी विदेशी बैंक का निरीक्षण करने का अधिकार है। अधिनियम संशोधन 1962 के अनुसार इन बैंकों को भी न्यूनतम नकद कोषानुपात भारतीय रिजर्व बैंक के पास रखना होता है। विदेशी बैंक को उपार्जित शुद्ध लाभ का 20 प्रतिशत भाग भारत में ही रखा जायेगा तथा इसे हिसाब में दिखाया जायेगा। इन विदेशी बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण भी रखा जाता है। बैकों का पूंजीगत आधार सुदृढ़ करने के उद्देश्य से विदेशी बैंकों के लिए 8 प्रतिशत पंूजी पर्याप्तता का मानदण्ड निर्धारित किया गया जिन्होंने 31 मार्च 1994 तक प्राप्त कर लिया था। मार्च 2003 के अन्त में कुल अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की कुल आस्तियों में विदेशी बैंकों का हिस्सा 6.7 प्रतिशत था। इनके अग्रिमों के सम्बन्ध में अनर्जक परिसम्पत्तियों का अनुपात 5.2 प्रतिशत था।

8.6 वाणिज्यिक बैंकों की समस्याएँ (Problems of Commercial Banks)

वाणिज्यिक बैंको के कार्य सम्पादन में आने वाली प्रमुख समस्याओं को निम्न रूप में समझा जा सकता है।

1.जनसंख्या का बढ़ता भार (Increasing Population Burden)- यद्यपि वाणिज्यिक बैंकों की शाखाओं में लगातार वद्धि हो रही है फिर भी जनसंख्या के बढ़ते भार तथा क्रिया कलापों में वृद्धि के कारण बैंकिंग प्रणाली सफलता पूर्वक कार्य करने में पीछे रहती है। बैंकों में अत्यधिक भीड़ तथा ओवर लोड की समस्या बनी रहती है।

2.ऋण वापसी की समस्या (Loan Repayment Problem)- वाणिज्यिक बैंकों द्वारा यद्यपि ऋण स्वीकृत करने तथा उपलब्ध कराने में ग्राहक की साख तथा अन्य पक्षों की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर ली जाती है फिर भी बैंकों की गैर-निष्पादित परिसम्पतियां बैंकों के सामने समस्या पैदा करती हैं इससे बैंकों की साख सृजन क्षमता तथा कार्य प्रणाली प्रतिकूल रूप् से प्रभावित होती हैं।

3.फर्जीबाड़े की समस्या (Problem of Fraud) - बैंकों के सामने धोखाधड़ी तथा फर्जीबाड़ा जैसे अनेक समस्याऐं सामने आती रहती हैं। फर्जी हस्ताक्षर से धनराशि निकालना, ए.टी.एम कार्ड का नम्बर चुराना, फर्जी दस्तावेज प्रस्तुत करना, ऋण का दुरूपयोग करना आदि कार्य बैंकिंग प्रणाली की कार्य कुशलता में बाधक हैं।

4.अशिक्षित ग्राहकों सम्बन्धी समस्या (Problem related to Uneducated Customers)- ग्रामीण तथा शहरी मलिन बस्तियों में बैंक ग्राह को की निरक्षरता तथा अशिक्षा भी बैंकों के सामने एक समस्या है। बैंकिंग योजनाओं का पूर्ण प्रचार नहीं हो पाता है। सरकारी योजनाओं के बारे में अधिक धनराशि पर हस्ताक्षर या अंगूठा निशान लगाकर कम धनराशि देना एवं बैंक नियमों की अवहेलना करना इस प्रकार की अनेक समस्याऐं हैं।

5.कर्मचारियों के व्यवहार सम्बन्धी समस्या(Employee Behaviour Problem)- दूर-दराज ग्रामीण क्षेत्रों में सामान रूप से सरकारी कार्य करते हैं जिसके परिणाम स्वरूप वह अपने ग्राहकों के साथ उचित व्यवहार नहीं करता है एवं बैंकिंग सुविधाओं। कार्यक्रमों पर अधिक जोड़ नहीं देता है जिसके आधार पर वह शहरी क्षेत्रों की ओर ट्रांसफर कराना चाहता है।

8.7 सारांश (Summary)

सामान्य रूप से वाणिज्यक बैंकों से हमारा तात्पर्य सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र की उन बैंकों से है जो मुद्रा को ब्याज दर के आधार पर उधार लेती हैं तथा जनता को व्यापारिक कार्य के लिये ऋण देती हैं तथा इस कार्य को वे एक वाणिज्यिक रूप में करती हैं। वाणिज्यिक बैंक दो प्रकार की होती हैं। अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक एवं गैर-अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक। वाणिज्यिक बैंक जनता कि बचतों को जमा करती है तथा उस पर ग्रहक को ब्याज देती है। व्यापारिक कार्यों के लिए जनता को ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराती हैं। इस कार्य के साथ ये बैंकें वस्तुओं की सुरक्षा सम्बन्धी कार्य , सरकारी विकास योजनाओं में वित्तीय समावेश , हामीदारी बैंकिंग, तथा आढ़क क्रियाऐं भी की जा रही हैं जिसये इनका कार्य क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हा गया है।

भारत में वाणिज्यिक बैंकों को विकास का इतिहास अत्यन्त पुराना है। आधुनिक बैंकिंग प्रणाली का विकास 17वीं शदी में हुआ था तथा भारत में प्रथम बैंक 'बैंक ऑफ हिन्दुस्तान' स्थापित किया गया। 1860 के बाद संयुक्त पूंजी वाले बैंकों की स्थापना हुई जैसे इलाहाबाद बैंक, पंजाब नेशनल बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा, आदि। 1945 में भारतीय बैंकिंग अधिनियम बनाया गया जिससें भारत में बैंकों के विकास को बल मिला तथा नयी शाखाओं का विस्तार हुआ। 1955 में इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया का राष्ट्रीयकरण करके इसका नाम भारतीय स्टेट बैंक किया गया। इसके बाद बैंकों के विलयीकरण की प्रक्रिया चालू की गयी , जिससे कमजोर बैंकों को मजबूत बैंकों के साथ जोड़ा गया। अंकित ग्रामीण बैंकों को विकसित किया गया तथा बैंकों की ऋण देय क्षमताओं का विस्तार किया गया।

विकास के समय में भी वाणिज्यिक बैंक अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना कर रहे हैं। जिसमें समाधान के लिए अनेक प्रकार किये गये हैं।

8.8 शब्दावली (Glossary)

- **राष्ट्रीयकरण (Nationalisation)-** निजी क्षेत्र की या प्राइवेट क्षेत्र की बैंकों के अधिकार एवं स्वायित्व को सरकार को सौंपना ही राष्ट्रीयकरण कहलाता है।
- **क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (Regional Rural Bank)-** उसी ग्रामीण बैंकें जिनका कार्य क्षेत्र एक विशेष ग्रामीण क्षेत्र ही होता है उसी दायरे में वे कार्य करती हैं।
- **नकद कोष अनुपात (Cash Reserve Ratio)-** वाणिज्यिक बैंकों को नकद राशि का एक निश्चित अनुपात भारतीय रिजर्व बैंक के पास रखना होता है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा यह अनुपात घटाना या बढ़ाया जा सकता है जिससे इन बैंकों की साख सृजन की क्षमता प्रभावित होती है।
- **वैधानिक तरलता अनुपात (Statutory Liquidity Ratio)-** वाणिज्यिक बैंकों को अपनी कुल जमाओं का एक निश्चित अनुपात अपने पास नकद रूप में रखना होता है। इसका निर्धारण भी भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है।
- **लॉकर्स व्यवस्था (Lockers System)-** इस व्यवस्था के अन्तर्गत बैंक अनले ग्राहकों के लिए विशेष अलमारी की व्यवस्था करती है जिसमें मंजूद प्रत्येक दराज में ताला लगा होता है जिने लाकर्स कहते हैं। इनकी दो चाभियां होती हैं। एक चाभी बैंक ग्राहक को देती है तथा दूसरी चाभी अपने पास सुरक्षित रख लेती है।

8.9 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Question)

(क) निम्नलिखित प्रष्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए?

1. वाणिज्यिक बैंक किसे कहते हैं?
2. वाणिज्यिक बैंक कितने प्रकार की होती हैं?
3. गैर अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक क्या हैं?
4. खुदरा बैंकिंग का क्या अर्थ है?
5. इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना कब की गयी?
6. भारतीय स्टेट बैंक में समूह में कितने सहायक बैंक हैं?
7. बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना कब हुई?
8. भारत में कितनी गैर-अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक हैं?

(ख) नीचे दी गयी निम्न स्थानों की पूर्ति कीजिए?

1. भारतीय रिर्जव बैंक अधिनियम सन् ----- में बनाया। (1930, 1934, 1939)
2. वणिज्यिक बैंक ----- प्रकार के खाते खोलती हैं। (तीन, दो, चार)
3. बैंक के लॉकर्स में -----वस्तुऐं रखी जाती हैं। (खाघ, नमक, मूल्यवान, व्यापारिक)
4. इण्डियन ओवरसीज बैंक का राष्ट्रीयकरण ----- को हुआ। (2जून 2009, 19 जूलाई 1969, 15 अप्रैल 1980)
5. न्यू बैंक ऑफ इण्डिया का विलय----- में हुआ। (पंजाब नेशनल बैंक, इलाहाबाद बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा)

(ग) नीचे दिये गये कथनों में सत्य/असत्य बताओ?

1. 1840 में बैंक ऑफ बॉम्बे स्थापित किया गया। (सत्य/असत्य)
2. भारतीय स्टेट बैंक समूह में 12 सहायक बैंक हैं। (सत्य/असत्य)
3. भारत में 19 राष्ट्रीयकृत वाणिज्यिक बैंक हैं। (सत्य/असत्य)

8.10 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Question)

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से दीजिए?

1. वाणिज्यिक बैंकों से आप क्या समझते हैं? वाणिज्यिक बैंकों के कार्यों की विवेचना कीजिए?
2. भारत में स्वतंत्रता से पूर्व बैंकिंग प्रणाली के विकास पर लेख लिखो?
3. स्वतंत्रता के बाद भारत में वाणिज्यिक बैंकों के विकास को विस्तार से लिखिए?
4. वर्तमान में भारत में वाणिज्यिक बैंकिंग प्रणाली की समस्याओं की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए?

8.11 संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)

- गौरव दत्त व अश्वनी महाजन (2013) - भारतीय अर्थव्यवस्था , एस.चन्द्र एण्ड क0 प्रा0 लि0 , रामनगर, नई दिल्ली
- के.सी.शेखर एवं लक्ष्मी शेखर (2006) – Banking Theory and Practice Masjid Road, Jangpura, New Delhi
- एच.एल.आहुजा (2010) - उच्चतर समष्टि अर्थशास्त्र , एस0 चन्द्र एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0 , रामनगर, दिल्ली
- मिश्रा एण्ड पुरी (2012) - भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

8.12 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)

- एम.पी. वैश्य (2003) - भारतीय अर्थव्यवस्था एस.चन्द्र एण्ड कम्पनी प्रा0लि0 रामनगर, नई दिल्ली
- जगदीश नारायण मिश्र (2005) - भारतीय अर्थव्यवस्था , पुस्तक महल पब्लिकेशन्स , दरियागंज, नई दिल्ली।

इकाई - 9 वाणिज्यिक बैंकों की साख-सृजन की प्रक्रिया (Process of Credit Creation of Commercial Banks)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)
9.2 उद्देश्य (Objectives)
9.3 साख का आशय (Meaning of Credit)
9.4 वाणिज्यिक बैंकों की साख सृजन की प्रक्रिया (Credit Creation Process of Commercial Bank)
9.5 साख सृजन की सीमाऐं एवं समस्याऐं (Limitation and Problems of Credit Creation)
9.6 भारत में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख सृजन का महत्व (Importance of Credit Creation by Indian Commercial Banks)
9.7 सारांश (Summary)
9.8 शब्दावली (Glossary)
9.9 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Question)
9.10 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Question)
9.11 संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)
9.12 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत इकाई वाणिज्यिक बैंकों की साख-सृजन की प्रक्रिया पर आधारित है। यह तृतीय खण्ड वाणिज्यिक बैंकिंग की नवीं इकाई है। इससे पूर्व की इकाई वाणिज्यिक बैंकिंग अर्थ कार्य एवं विकास पर आधारित थी, जिसके अध्ययन से आपने वाणिज्यिक बैंकों के अर्थ , कार्य का गहन अध्ययन किया तथा स्वतंत्रता से पूर्व एवं स्वतंत्रता के बाद वाणिज्यिक बैंकों के विकास की प्रवृत्तियों से आप भलीभांति परिचित हुए होंगे।

प्रस्तुत इकाई वाणिज्यिक बैंकों की साख-सृजन की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। साख-सृजन से हमारा तात्पर्य बैंकों द्वारा उस अधार की मात्रा से है जिससे नकद जमाओं के साथ व्युत्पन्न जमाओं का निर्माण किया जाता है। सामान्य रूप से साख-सृजन की प्रक्रिया अनेक तत्त्वों पर आधारित होती है तथा अनेक तत्त्वों द्वारा सीमित होती है।

प्रस्तुत इकाई से अध्ययन के लिए आपको साख-सृजन सम्बन्धी विभिन्न विन्दुओं तथा उपविन्दुओं का गहराई के साथ आगे विवेचना को पढ़ेंगे जो आपके लिए अत्यन्त ही उपयोगी होगी।

9.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- ✓ साख-सृजन से परिचित हो सकेंगे।
- ✓ वाणिज्यिक बैंकों द्वारा किये जाने वाले साख-सृजन के मूलभूत तत्वों को जान सकेंगे।
- ✓ वाणिज्यिक बैंकों द्वारा एकल बैंक प्रणाली तथा बहु बैंक प्रणाली के अन्तर्गत साख-सृजन की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
- ✓ वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख-सृजन की सीमा तथा केन्द्रीय बैंक का मौद्रिक नीतियां द्वारा साख सृजन को जानेंगे।
- ✓ भारतीय अर्थव्यवस्था में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा किये जाने वाले साख-सृजन के महत्व से अवगत हो सकेंगे।

9.3 साख का आशय (Meaning of Credit)

आपको यह समझने में आसानी होगी कि जब कोई वाणिज्यिक बैंक किसी व्यक्ति या संस्था को उधार देने पर विचार करती है तब वह उस व्यक्ति या संस्था पर ऋण को वापस करने की क्षमता का आंकलन करती है अर्थात एक प्रकार से बैंक उस पर इस बात का भरोसा करती है कि उसका ऋण समय से वापस होगा। यदि किसी व्यक्ति या संस्था पर बैंक को भरोसा न हो तो वह उसे ऋण देने से मना कर देगी। इस प्रकार से साख से तात्पर्य बैंक द्वारा दिये जाने वाले ऋण की उस मात्रा से लगाया जाता है जो ऋण वापस की क्षमता या भरोसे के बराबर होती है।

बैंक की अन्य भाषा में यह कहा जाता है कि बैंक के पास ग्राहकों की जो मुद्रा जमा होती है वह उस मात्रा के साथ और अधिक मात्रा में ग्राहकों को ऋण के रूप में मुद्रा उपलब्ध कराती है। बैंक जो मुद्रा बनाते हैं उसे साख कहा जाता है। इस प्रकार साख का अर्थ केवल देनदारी अथवा शोधन क्षमता में विश्वास से होता है।

विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा साख को परिभाषित किया गया है। नीचे कुछ अर्थशास्त्रियों द्वारा साख की दी गयी परिभाषाओं को दिया जा रहा है जिससे आप साख के आशय को भली-भांति समझ सकते हैं।

जेवन्स (Jevons) ने साख को इस प्रकार परिभाषित किया है – *"साख शब्द का अर्थ भुगतान को स्थगित करना है।"*

टॉमस (Thomas) के अनुसार- *"साख वह विश्वास है जिसके आधार पर एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपनी बहुमूल्य वस्तुऐं तथा सेवाऐं देता है, भले ही ये वस्तुऐं मुद्रा, सेवा तथा साख मुद्रा क्यों न हो और आशा करता है कि वह व्यक्ति इसको वापस लौटा देगा।"*

जी.डी.एच. कोल (G.D.H Cole) के अनुसार *"साख वह क्रय शक्ति है जो आय से प्राप्त नहीं होती अपितु वित्तीय संस्थाओं के द्वारा जमाकर्ताओं की बैंकों में जमा निष्क्रिय आय को सक्रिय बनाकर अथवा कुल क्रय शक्ति में वास्तविक वृद्धि करके इसका निर्माण किया जाता है।"*

चैण्डलर (Chandler) के अनुसार *"किसी व्यक्ति, व्यावसायिक फर्म अथवा सरकार की साख प्राप्त करने की क्षमता सम्भाव्य ऋणदाताओं के इस विश्वास पर निर्भर करती है कि ऋणी ऋण का भुगतान करने के लिए क्षम्य तथा तत्पर दोनों ही रहेगा।"*

किनले के अनुसार साख को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है – *"साख से हमारा अभिप्राय किसी भी व्यक्ति की उस शक्ति को भविष्य में भुगतान की प्रतिज्ञा पर अपनी आर्थिक वस्तुऐं समर्पित करने के लिए प्रेरित करता है। अतः साख ऋणी का एक गुण अथवा शक्ति है।"*

केन्ट ने भी साख को इस प्रकार से परिभाषित किया है - *"साख की परिभाषा , वस्तुओं के तात्कालिक हस्तानतरण के कारण, माँग पर अथवा भविष्य में किसी समय पर भुगतान पाने के अधिकार अथवा भुगतान करने के दायित्व के रूप में की जा सकती है।"*

जीड के अनुसार – *"साख एक ऐसा विनिमय कार्य है, जो कि निश्चित अवधि के उपरान्त भुगतान करने पर पूर्ण होता है।"*

हाम के अनुसार – *"व्युत्पन्न जमा कर निर्माण ही साख का सृजन है।"*

9.4 वाणिज्यिक बैंकों की साख सृजन की प्रक्रिया (Credit Creation Process of Commercial Bank)

साख के आशय को समझने के बाद अब आपको साख-सृजन की प्रक्रिया भली-भांति समझ में आ सकती है। आपको साख-सृजन की प्रक्रिया समझने से पूर्व उन तत्त्वों को अच्छी तरह समझना होगा जिन पर साख-सृजन की प्रक्रिया जारी रहती है।

सबसे पहले आपको यह समझना होगा कि साख-सृजन की प्रक्रिया नकद जमा या वास्तविक जमा तथा व्युत्पन्न जमा या गौण जमा पर आधारित होती है। वास्तविक जमा से हमारा तात्पर्य उस जमा से है जिसे व्यक्ति अपने पास से मुद्रा के रूप में नकद बैंक खाते में जमा करता है। इस नकद जमा को वह व्यक्ति बैंक से कब और कितनी मात्रा में निकालेगा, यह उसकी आवश्यकता एवं खाते के प्रकार आदि पर निर्भर करती है। कुल मिलाकर इस वास्तविक जमा का पूर्ण या आंशिक भाग कुछ दिनों या समयावधि तक बैंक के पास रखा जाता है।

व्युत्पन्न जमा से हमारा आशय उस राशि से है जिसे व्यक्ति बैंक से उधार/ऋण लेकर बैंक खाते में जमा करता है। इस प्रकार बैंक वास्तविक जमा से कई गुना राशि व्युत्पन्न जमा के रूप में व्यक्तियों के खातों में जमा करता है। अपने पास से बैंक नकद मुद्रा व्यक्ति को नहीं देता है। यदि व्यक्ति मांग करता है तो उसे चैक दे दिया जाता है और उसे दूसरी बैंक में डाला जाता है। इस प्रकार चैक से नकदी में बदलने पर कुछ समय लग जाता है।

साख सृजन का दूसरा महत्वपूर्ण तत्त्व नकद आरक्षित अनुपात है। नकद आरक्षित अनुपात के अन्तर्गत बैंक की नकद या वास्तविक जमाओं का एक निश्चित अनुपात बैंकों को अपने पास सुरक्षित रखना पड़ता है। नकद आरक्षित अनुपात का निर्धारण भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है। नकद आरक्षित अनुपात जितना कम होगा साख-सृजन की मात्रा उतनी ही अधिक होगा साख-सृजन की मात्रा उतनी ही कम होगी।

नकद आरक्षित अनुपात के आधार पर साख-सृजन की मात्रा को निम्न रूप में अंतर्संबंधित कर सकते हैं। साख-सृजन को जमा गुणक या साख गुणक के रूप में जाना जाता है।

साख-गुणक (dm) $= \frac{1}{r}$

जहाँ r से हमारा तात्पर्य नकद आरक्षित अनुपात से है। इसे एक उदाहरण द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। माना नकद आरक्षित अनुपात (r) 25 प्रतिशत अर्थात 1/4 है तो जमा गुणक

$$dm = \frac{1}{\frac{1}{4}} = 1 \times 4 = 4$$

अर्थात् नकद आरक्षित अनुपात 1/4 होने पर बैंक द्वारा 4 गुना साख-सृजन किया जायेगा। वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख-सृजन की प्रक्रिया को निम्न उदाहरण द्वारा अच्छी तरह से समझाया जा सकता है।

सबसे पहले हम एक बैंक प्रणाली के अन्तर्गत् साख निर्माण की व्याख्या करेंगे। माना नकद आरक्षित अनुपात 20 प्रतिशत है। बैंक को रू0 100000 की जमा प्राप्ति होती है। बैंक को इस धनराशि पर ब्याज देनी होती है तथा बैंका को यह भ अनुमान है कि रू0 100000 की धनराशि जमा करने वाले ग्राहक एक साथ बैंक में धनराशि निकालने नहीं आयेंगे। इसीलिए इस धनराशि का प्रयोग बैंक कर सकता है। जमा राशि का 20 प्रतिशत रू0 20000 बैंक अपने पास सुरक्षित रखेगी तथा रू0 80000 को अन्य ग्राहकों को उधार दे देता है या अन्य प्रतिभूतियों में निवेश करता है। अन्य ग्राहकों को दिये गये ऋण को बैंक उनके खाते में ही जमा कर लेता है तथा इस ऋण राशि का कुछ ही भाग ग्राहक तत्काल रूप में नकद मुद्रा निकालते हैं। शेष मुद्रा बैंके के पास ही जमा रहती है। इस राशि का प्रयोग बैंक अपने ग्राहकों की नकद मांग को पूरा करने में करती है। इस प्रकार एक बैंक प्रणाली में जमा राशि से नकद आरक्षित अनुपात के बराबर धनराशि निकालकर शेष धनराशि के बराबर साख-सृजन कर सकती है।

इसके सापेक्ष वहु बैंक प्रणाली के अन्तर्गत बैंकों द्वारा जमा राशियों का कई गुना तक साख-सृजन किया जा सकता है। इसका यह भी अर्थ है कि व्युपन्न जमाओं का आकार नकद जमाओं का कई गुना अधिक हो सकता है। सामान्यतः नकद आरक्षित अनुपात को 100 से भाग देने पर भागफल के बराबर गुना जमाओ सृजन किया जाता है अर्थात नकद आरक्षित अनुपात 25 प्रतिशत होने पर 4 गुना , 20 प्रतिशत पर 5 गुना तथा 10 प्रतिशत पर 10 गुना तक जमा निर्मित होती है।

साख-सृजन की इस प्रक्रिया को निम्न तालिका द्वारा अत्यन्त ही आसानी से समझाया जा सकता है।

बैंक	नयी जमा	नकद आरक्षित अनुपात	साख-सृजन की धनराशि
1	1,00,000	20000	80000
2	80,000	16000	64000
3	64,000	12800	51200
4	51200	10240	40960
5	40960	8192	32768
6	32768	6553	26215
7	26215	5243	20972
8	209272	4164	16778
9	16778	....	....
10	....	......	....

इस प्रकार साख सृजन की प्रक्रिया उस सीमा तक जारी रहेगी जब तक कि प्रारम्भिक जमा तथा व्युपन्न जमाओं का योग नकद आरक्षित अनुपात (20 प्रतिशत) के 1/.20 अर्थात 5 गुना यानी रू0 500000 के बराबर हो जाता है। इससे अधिक की बैंक जमाऐं सृजित नहीं की जा सकती हैं।

भारतीय रिजर्व बैंक एवं वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख-निर्माण

आपको शायद ज्ञात हो कि भारत का केन्द्रीय बैंक 'भारतीय रिवर्ज बैंक' बैंकों का बैंक है। इसीलिए वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख-निर्माण की प्रक्रिया में भारतीय रिजर्व बैंक की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। आपको

यह भी मालूम होगा कि भारतीय रिजर्व बैंक के कार्य अन्य वाणिज्यिक बैंकों के कार्यों से भिन्न हैं। यह केन्द्रीय बैंक लाभ कमाने के उद्देश्य से कार्य नहीं करता है। प्रस्तुत विन्दु के अन्तर्गत वाणिज्यिक बैंकों की साख-निर्माण की प्रक्रिया में भारतीय रिजर्व बैंक के योगदान तथा नियन्त्रण की भूमिका का अध्ययन किया जायेगा।

वाणिज्यिक बैंकों की साख- सृजन तथा केन्द्रीय बैंक के मध्य सम्बन्धों को दो आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है। प्रथमतः केन्द्रीय बैंक द्वारा बैंकिंग प्रणाली पर नियन्त्रण तथा द्वितीयतः केन्द्रीय बैंक द्वारा वाणिज्यिक बैंकों की साख-प्रणाली पर नियंत्रण।

प्रथमतः विन्दु पर यह स्पष्ट है कि भारतीय रिजर्व बैंक , बैंकों का बैंक है। नये बैंकों की स्थापना, संरचना में परिवर्तन, अर्थव्यवस्था के साथ सामंजस्य स्थापित करना , बैंकों के अधिकार तथा उत्तरदायित्व आदि में आवश्यक परिवर्तन की दिशा में केन्द्रीय बैंक महत्वपूर्ण निर्णय देता है। वही द्वितीयतः वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख-सृजन की दिशा में साख-विस्तार तथा साख संकुचन सम्बन्धी नीतियों का निर्धारण केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता है। जिनके क्रियान्वयन एवं अनुपालन कराने के अधिकार भारतीय रिजर्व बैंक के पास सुरक्षित हैं। इस प्रकार वाणिज्यिक बैंकों की साख-सृजन की प्रक्रिया में केन्द्रीय बैंक की भूमिका को अलग नहीं रखा जा सकता है।

जैसा कि आपको ज्ञात है कि भारतीय रिजर्व बैंक का मुख्य कार्य देश में आर्थिक स्थिरता को कायम करना है। मूल्य अस्थिरता, मुद्रा पूर्ति, साख की पूर्ति आदि पर भारतीय रिजर्व बैंक का सीधा नियंत्रण है। वही सरकार तथा भारतीय रिजर्व बैंक के मध्य आर्थिक मुद्दों पर अन्तर्सम्बन्ध भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सरकार की बैंकिंग सम्बन्धी नीतियों का निर्धारण करना एवं उनका क्रियान्वयन करना वाणिज्यिक बैंकों के साथ-साथ केन्द्रीय बैंक के बिना सहयोग के सफल नहीं है।

देश में आर्थिक अस्थिरता व्यापारी किसान तथा उद्योगपतियों के लिए हानिकारक होती है। मूल्यों एवं समूची आर्थिक क्रिया का प्रमुख कारण समस्त मांग का घटना तथा बढ़ना है। समस्त मांग , विशेषकर निवेश मांग, मुद्रा की पूर्ति पर निर्भर करती है। मुद्रा की पूर्ति का सबसे प्रमुख साधन बैंक-साख (Bank Credit) है। इसीलिए साख की पूर्ति निवेश मांग में परिवर्तन करके कीमतों , राष्ट्रीय आय तथा रोजगार को प्रभावित करती है।

भारतीय रिजर्व बैंक का कर्तव्य है कि वह वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख की पूर्ति को नियमित तथा नियन्त्रित करे। आर्थिक अस्थिरता समाप्त करने के लिए केन्द्रीय बैंक आवश्यकतानुसार साख की पूर्ति को कम अथवा अधिक करने का कार्य करती है। आपको शायद यह भी ज्ञात होगा कि वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख की पूर्ति को नियन्त्रित या प्रभावित करने वाले समस्त महत्वपूर्ण उपकरणों पर भारतीय रिजर्व बैंक का ही नियन्त्रण है। आपको शायद यह भी मालूम हो कि भारतीय रिजर्व बैंक वाणिज्यिक बैंकों के लिए

अन्तिम ऋणदाता के रूप में भी कार्य करता है। यह केन्द्रीय बैंक साख की पूर्ति का अन्तिम स्रोत है। अब तक साख की पूर्ति को नियन्त्रित करने की बात कही गयी लेकिन साख की मांग को भी नियन्त्रित करने में यह केन्द्रीय बैंक अहम् भूमिका निभाता है। केन्द्रीय बैंक की साख नियन्त्रण के उपायों में साख की मांग और पूर्ति दोनों को ही प्रभावित किया जाता है। यह भारतीय रिजर्व बैंक वाणिज्यिक बैंकों के लेन-देन का निपटारा भी करता है। जो बैंकों द्वारा साख-सृजन की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख-सृजन पर नियन्त्रण (Control over Credit Creation by Commercial Banks)- कभी-कभी वाणिज्यिक बैंकों तथा भारतीय रिजर्व बैंक की साख नीति के मध्य टकराव जैसी स्थिति पैदा होने लगती है ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि भारतीय रिजर्व बैंक को देश में साख सृजन की आवश्यकताओं के अनुसार ही अपनी प्राथमिकता तय करनी होती है। देश में आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के लिए वांछित स्तरपर साख सृजन आवश्यक होता है। इसके लिए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा समय-समय पर साख विस्तार की नीति को अपनाया है। साख-विस्तार अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के ही अनुकूल हो इसके लिए नियन्त्रित साख विस्तार नीति की आवश्यकता होती है। आपको शायद ज्ञात हो कि आवश्यकता

से अधिक साख सृजन अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीतिकारी स्थिति पैदा करता है जो विकास के मार्ग में भी वाधक हो जाता है।

आपको यहां पर यह भी बताना आवश्यक होगा कि साख-सृजन दीर्घकालीन प्रभाव डालता है। साख-विस्तार के दीर्घकालीन प्रभाव सकारात्मक तथा उद्देश्यों के अनुकूल होते हैं लेकिन साख-विस्तार की नीति अल्पकाल में प्रतिकूलात्मक प्रभाव डालती है जिसके लिए भारतीय रिजर्व बैंक तथा वाणिज्यिक बैंकों द्वारा सावधानीपूर्वक साख-सृजन के कदम उठाने होते हैं। इसीलिए अल्प काल में साख-विस्तार को नियन्त्रित करने के प्रयास किये जाते हैं। गत वर्षों तथा विभिन्न समय-अवधियों में साख-सृजन का मूल्यांकन करने पर यह ज्ञात होता रहा है कि भारतीय रिजर्व बैंक ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। वाणिज्यिक बैंकों को साख-विस्तार के लिए प्राथमिकता क्षेत्रों के लिए लक्ष्य निर्धारण किये गये तथा उनकी प्राप्ति के लिए सार्थक प्रयास किये गये। प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के लिए ऋण उपलब्धता के लिए केन्द्रीय बैंक द्वारा साख-निर्माण करना अत्यन्त आवश्यक हुआ है। इस दिशा में सरकार द्वारा भी नवीन नीतियां तय की गयी हैं।

आपको यहां पर यह भी बता दें कि भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा साख-सृजन की विस्तार वादी नीतियों में बैंकदार, नकद आरक्षित अनुपात, वैधानिक तरलता अनुपात, खुल बाजार की क्रियाऐं आदि से सम्बन्धित अनेक प्रकार के वांछित परिवर्तन समय-समय पर किये गये हैं। इसके साथ-साथ प्रतिभूतियों के प्रति मार्जिन सीमा में आवश्यक परिवर्तन, वस्तुओं के प्रति अधिकतम् राशि की सीमा का निर्धारण , ऋण पत्रों पर भितिकाय आदि में परिवर्तन के साथ वाणिज्यिक बैंकों के लिए नैतिकता के आधार पर आवश्यक परामर्श समय-समय पर दिये जाते रहते हैं। इस प्रकार से वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख-सृजन दीर्घकाल में अर्थव्यवस्था के लिए एक सकारात्मक कार्य है जो भारतीय रिजर्व बैंक तथा भारत सरकार की साख-विस्तार की नीतियों पर निर्भर करता है।

कृषि साख (Agriculture Credit)- साख ने कृषि क्षेत्र के विकास के लिए बैंकों द्वारा दिये जाने वाले ऋणों में वृद्धि के लिए भारी प्रयास किये हैं। वर्ष 2010-11 में कृषि क्षेत्र के लिए प्रदत्त संस्थागत साख में वृद्धि दर्ज की गयी। वाणिज्यिक बैंक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा कृषि क्षेत्र को उपलब्ध करायी जाने वाली साख को निम्नलिखित तालिका द्वारा दर्शाया जा सकता है -

तालिका

बैंकों द्वारा कृषि साख का विस्तार

(रूपये करोड़ में)

बैंक	**2009-10**		**2010-11**	
	लक्ष्य	**वास्तविक ऋण**	**लक्ष्य**	**वास्तविक ऋण**
वाणिज्यिक बैंक	250000	285000	280000	314182
केन्द्रीय ग्रामीण बैंक	30000	35217	40000	43273
योग	**280000**	**320217**	**320000**	**357455**

स्रोत -

ऊपर दी गयी तालिका से स्पष्ट होता है कि वाणिज्यिक बैंक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक द्वारा वर्ष 2009-10 में रुपये 280000 करोड़ के कृषि साख का लक्ष्य निर्धारित किया गया जिसे संदर्भ में रूपये 320217 करोड़ का साख उपलब्ध कराया गया। इसी प्रकार वर्ष 2010-11 में 320000 करोड़ का लक्ष्य रखा गया जिसके जबाव में रू 357455 करोड़ का साख उपलब्ध कराया गया। कृषि मंत्रालय से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2009-10 में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा 285000 करोड़ का कृषि ऋण दिया गया जो वर्ष 2010-11 में 314182 करोड़ रूपये के स्तर पर पहुँच गया , इसी प्रकार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक द्वारा वर्ष 2009-10 में रूपये 35217 करोड़ का

ऋण उपलब्ध कराया गया। वर्ष 2010-11 में वाणिज्यिक बैंकों की ऋण राशि रूपये 314182 करोड़ तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की ऋण राशि रूपये 43273 करोड़ रूपये हो गयी।

आपको यह बताना भी अत्यन्त आवश्यक है कि वर्ष 2006-07 से ही सरकार द्वारा किसानों को रियायती ब्याज दर पर फसल ऋण उपलब्ध कराये जा रहे हैं इसके साथ अल्पकालीन ऋणों को समय पर चुकाने पर 3 प्रतिशत की विशेष रियायत किसानों को उपलब्ध करायी जाती रही है। वर्ष 2009-10 में यह विशेष सरकारी सहायता 1 प्रतिशत थी जो वर्ष 2010-11 में 2 प्रतिशत तथा वर्ष 2011-12 में यह सरकारी सहायता को बढ़ाकर 3 प्रतिशत तक बढ़ाया गया। यह पूरी रियायत वर्ष 2012-13 में भी सरकार द्वारा उपलब्ध करायी गयी।

9.5 साख सृजन की सीमाऐं एवं समस्याऐं (Limitation and Problems of Credit Creation)

साख का आशय, तथा साख सृजन की प्रक्रिया को समझने के बाद आप समझ सकेंगे कि साख-सृजन किस सीमा तक किया जा सकता है। तथा कौन-कौन से तत्त्व साख-निर्माण को सीमित करते हैं।

1. **नकद आरक्षित अनुपात (Cash Reserve Ratio)-** आपको पूर्व में भी बताया जा चुका है कि नकद आरक्षित अनुपात साख-सृजन की सबसे सीमा है। नकद आरक्षित अनुपात ऊँचा होने पर साख सृजन कम तथा अनुपात नीचा होने पर बैंकों द्वारा अधिक मात्रा में साख सृजन किया जाता है।
2. **प्रारम्भिक जमाऐं (Primary Deposits)-** बैंकों में प्रारम्भिक जमाऐं जितनी अधिक होगी , साख का सृजन भी उतना ही अधिक होगा , इसके सापेक्ष प्रारम्भिक जमाऐं कम होने पर साख-सृजन कम होता है।
3. **लोगों का व्यवहार (Human Behaviour)-** साख सृजन की सीमाओं में लोगों के आर्थिक व्यवहार को भी अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। नकदी को घर पर रखना , बैंक से ऋण न लेना , बचतों का दुरुपयोग करना, चैकों का प्रयोग न करना आदि आदतों से साख-सृजन की प्रक्रिया प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है।
4. **केन्द्रीय बैंक की नीतियां (Policies of Central Bank)-** भारतीय रिजर्व बैंक की साख-नियंत्रण तथा साख-विस्तार सम्बन्धी नीतियां वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख सृजन की क्षमता को प्रभावित करती हैं।
5. **केन्द्रीय बैंक के पास आरक्षित कोष (Cash Reserves held by Central Bank)-** वाणिज्यिक बैंकों द्वारा केन्द्रीय बैंक में रखे जाने वाले तरलतम मुद्रा अनुपात भी साख-सृजन को प्रभावित करती हैं।
6. **मुद्रा का चलन वेग (Velocity of Money)-** जनता द्वारा धन कमाना तथा वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग का स्तर भी साख सृजन को सीमित करता है।

साख-सृजन की समस्याऐं (Problems of Credit Creation)- आप पूर्व में दिये गये विवरण से वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख-सृजन हेतु अपनायी जाने वाली प्रक्रिया से अच्छी तरह से परिचित हुए होंगे। वाणिज्यिक बैंकों को साख-सृजन की प्रक्रिया के दौरान तथा साख-सृजन के उपरान्त अनेक प्रकार की कठिनाईयों का सामाना करना पड़ता है जिन्हें हम निम्न रूप में स्पष्ट कर सकते हैं।

1. **परम्पराओं का प्रभाव (Effect of Traditions)-** भारत में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा किये जाने वाले साख-सृजन में परम्परागत तत्वों का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है जिससे बैंकों की साख-सृजन की प्रक्रिया नकारात्मक रूप से भी प्रभावित होती है। ग्राहकी की परम्पराऐं , सरकार की परम्परागतियां तथा केन्द्रीय बैंक की परम्परागत व्यवस्थाओं से साख-निर्माण की प्रक्रिया समय-समय पर वाधित होती रहती है।

2. **अपूर्ण नियंत्रण (Imperfect Control) -** वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख-सृजन की प्रक्रिया में नियन्त्रणात्मक कठिनाईयों का भी सामना करना होता है। भारत में भारतीय रिजर्व बैंक का सभी मौद्रिक सृजन तथा साख उपलब्धता का भी कार्य करती हैं, जिससे वाणिज्यिक बैंकों की साख-सृजन की प्रक्रिया भी वाधित होती है। आपको यहां पर यह भी ध्यान होगा कि किसी वाणिज्यिक बैंक द्वारा साख-सृजन में अन्य बैंकों की साख सम्बन्धी रणनीतियां , ग्राहकों को साख उपलब्धता का स्तर , ग्राहकों का व्यवहार तथा उनका दृष्टिकोण भी प्रभावित करता है। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि वाणिज्यिक बैंक को साख-सृजन की प्रक्रिया में मांग पक्ष सम्बन्धी अनियमितता भी बाधक है।
3. **बैंकों का पारस्परिक असहयोग (Mutual non cooperation of Banks) -** वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख-सृजन की प्रक्रिया में सम्बद्ध बैंकों तथा शाखाओं का पूर्ण सहयोग आवश्यक है। भारत में वाणिज्यिक बैंकों में सार्वजनिक , निजी तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक शामिल हैं तथा इन सभी की कार्यप्रणाली, साख नीतियों में विभिन्नता पायी जाती है। विकास के दौर में बैंकिंग क्षेत्र में प्रतियोगिता विद्यमान है जो किसी एक वाणिज्यिक बैंक की साख-सृजन की प्रक्रिया में असहयोग का भी कार्य करती है जिससे इस पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वहीं पर केन्द्रीय बैंक को साख-सृजन नीति पर भी सम्बद्ध बैंकों का पूर्ण प्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त नहीं होता है और वाणिज्यिक बैंक लक्ष्यानुसार साख का सृजन नहीं कर पाते हैं।
4. **साख विविधता (Credit Diversification)-** वाणिज्यिक बैंकों के सामने साख-सृजन में साख के विभिन्न रूप का होना भी एक समस्यात्मक पहलू है। साख को कई श्रेणियों में रखा गया है जैसे बैंक साख, किताबी साख , वाणिज्यिक साख आदि। अलग-अलग क्षेत्रों की मांग का अनुमान लगाने में समस्याऐं आती हैं जो वाणिज्यिक बैंकों की साख-सृजन की मात्रा तथा स्वरूप को प्रभावित करती हैं।
5. **साख उपयोग सम्बन्धी समस्या (Credit Utilization Problem)-** वाणिज्यिक बैंकों के सामने साख-सृजन में आने वाली समस्याओं में साख उपयोग के स्तर पुनर्भुगतान (Recovery) तथा उपयोग कोआकार भी शामिल है। इससे साख-सृजन की प्रक्रिया प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है।

9.6 भारत में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख सृजन का महत्व (Importance of Credit Creation by Indian Commercial Banks)

भारत जैसे विकासशील अर्थव्यवस्था वाले देश में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख सृजन का अत्यन्त ही महत्व है। यदि इन बैंकों द्वारा साख सृजन नहीं किया जाय तो बैंकों के निजी उद्देश्यों के साथ सरकार के उद्देश्यों को भी पूरा करना सम्भव नहीं होगा। वाणिज्यिक बैंकों द्वारा किये जाने वाले साख सृजन का महत्व निम्नलिखित विन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1. **उपभोग में वृद्धि (Increase in Consumption)-** साख सृजन से जनता के उपभोग के स्तर में वृद्धि सम्भव हुई है। वर्तमान में वस्तुओं एवं सेवाओं के क्रय-विक्रय में नकद भुगतान की जगह चैक द्वारा भुगतानों की अपेक्षा अधिक मात्रा में भुगतान किये जा सकते हैं। साख सृजन द्वारा भुगतानों को स्थगित किया जा सकता है।
2. **व्यापारिक उन्नति (Business Progress)-** साख सृजन व्यापारिक उन्नति में अत्यन्त ही सहायक है। छोटे, माध्यम तथा बड़े व्यापारिक कार्यों का संचालन साख-सृजन के बिना सम्भव नहीं है। बैंकों की नकद जमाओं के आधार पर व्यापारिक क्रियाओं को वांछित दिशाओं में गति दे पाना सम्भव नहीं है। व्यापारिक कार्यों में अधिक मात्रा में धन की आवश्यकता होती है जो साख सृजन के बिना सम्भव नहीं है।

3. **भुगतानों में सहायता (Assistance with Payments)** - साख सृजन द्वारा जनता के आपासी भुगतानों के साथ-साथ बैंकों द्वारा किये जाने वाले भुगतानों में सहायता मिली है। साख सृजन द्वारा क्षमता से अधिक मात्रा में भुगतानों को किया जाना सम्भव हुआ है। व्यवहारिक जीवन में अनेक क्रिया कलापों का सम्पादन वास्तविक आय से अधिक मात्रा में करना होता है। इसके साथ भुगतानों के लिए खातों का प्रयोग करने से एक दूसरे के पास नकद मुद्रा लेकर जाना आवश्यक नहीं रहा है।
4. **बचत को प्रोत्साहन (Encouragement to Saving)**- बैंकों द्वारा साख सृजन का कार्य ग्राहकों द्वारा जमा वास्तविक जमाओं के आधार पर किया जाता है जिसका लाभ बैंक तथा ग्राहकों दोनों को ही मिलता है। सरकार द्वारा तथा बैंकों द्वारा अनेक वित्तीय योजनाऐं संचालित हैं जो ग्राहकों की बचतों पर आधारित हैं। इससे समाज में बचतों को बैंकों में जमा करने को प्रोत्साहन मिला है।
5. **मुद्रा को लाने तथा ले जाने में सहायक (Helpful in Carrying Currency)** - आपको पूर्व में भी अवगत कराया गया है कि वहुबैंक प्रणाली में एक बैंक द्वारा स्वीकृत उधार राशि को दूसरे बैंक में चैक द्वारा हस्तान्तरित की जाती है जिसमें नकद राशि को निकालने की आवश्यकता नहीं होती है। इसी प्रकार से दूसरे बैंकों से जमा स्वीकार करने में भी नकद मुद्रा का प्रयोग नहीं होता है जिससे साख सृजन को बल मिलता है।
6. **आर्थिक समस्या में सहायक (Help in Financial Problems)**- बैंकों द्वारा साख सृजन मूलरूप से जनता की आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए ही किया जाता है। जनता की आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए अधिक मात्रा में धन की आवश्यकता होती है जिसका समाधान साख सृजित करके ही किया जाता है। जनता द्वारा जमा की गयी बचतें उनकी आर्थिक समस्या में काम आती हैं।
7. **विकास कार्यक्रमों में सहायक (Assistant in Development Programs)** - सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रमों एवं योजनाओं का संचालन बैंकों द्वारा किया जाता है। अधिकांश कार्यक्रम लोगों को वित्तीय सहायत पर आधारित है जिसके लिए बैंकों द्वारा साख सृजन किया जाना आवश्यक होता है। इसके लिए अधिक साख सृजन हेतु सरकार द्वारा भी प्रयास किये जाते हैं।

9.7 सारांश (Summary)

साख सृजन की प्रक्रिया को समझने से पूर्व साख के अर्थ को समझना आवश्यक होता है। यद्यपि विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा साख को अलग-अलग शब्दों में परिभाषित किया गया है लेकिन उनके मूल अर्थ में साख का अर्थ एक ही है। संक्षिप्त में साख से हमारा तात्पर्य बैंक द्वारा उपलब्ध कराया ऋण की उस मात्रा से है जो ऋणी की ऋण वापसी की क्षमता के बराबर होती है। बैंक किसी को उस सीमा तक ही ऋण/उधार देती है जिसे वह आसानी से वापस कर सके। साख का निर्माण बैंकों द्वारा किया जाता है। व्यापारिक बैंकों द्वारा नकद जमा के आधार पर व्युत्पन्न जमा उत्पन्न करती है जिसे साख-सृजन कहा जाता है।

साख सृजन की प्रक्रिया को नकद जमा , नकद आरक्षित अनुपात तथा ग्राहकों द्वारा ऋण की मांग आदि तत्त्वों द्वारा एक बड़ी सीमा तक प्रभावित किया जाता है। व्यापारिक बैंकों द्वारा साख सृजन दो प्रकार की स्थिति में किया जाता है। प्रथमतः एक बैंक प्रणाली के अन्तर्गत साख-सृजन, द्वितीयतः बहु बैंक प्रणाली के अन्तर्गत साख सृजन/सामान्य रूप से विशेषकर भारत में बहुबैंक प्रणाली प्रचलित है। अतः साख-सृजन मूल जमा की कई गुना तक निर्मित किया जा सकता है। सामान्य मान्यताओं के अन्तर्गत नकद आरक्षित अनुपात जिनता कम होता है साख का सृजन उतना ही अधिक होता है। साख सृजन को जमा गुणक भी कहा जाता है। साख-गुणक (dm) $= \frac{1}{r}$ के बराबर सृजित किया जाता है। वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख सृजन की प्रक्रिया बैंक की फर्म नीति, केन्द्रीय बैंक को आर्थिक नीति, ग्राहकों का आर्थिक व्यवहार आदि सीमाओं द्वारा प्रभावित होता है।

वाणिज्यिक बैंकों द्वारा किये गये साख सृजन के सामने अनेक प्रकार की समस्यायें भी पैदा होती हैं जिसमें अनेक प्रकार की बैंकिंग परम्परा ए, वाणिज्यिक बैंकों पर केन्द्रीय बैंक का अपूर्ण नियन्त्रण , पारस्परिक सहयोग की कमी, साख उपयोग की समस्या तथा साख की विविधता जैसी अनेक समस्याओं को शामिल किया जा सकता है।

9.8 शब्दावली (Glossary)

- **वाणिज्यिक बैंक (Commercial Bank) -** सामान्यतः वाणिज्यिक बैंकों से हमारा तात्पर्य उन अनुसूचित बैंकों से है जो जनता से सीधे जमा प्राप्त करते हैं तथा जनता को ऊँची दर पर ऋण प्रदान कर लाभ कमाते हैं।
- **बहु बैंक प्रणाली (Multi Bank System)-** बहु बैंक प्रणाली से हमारा तात्पर्य उस बैंकिंग प्रणाली से है जिसमें एक साथ अनेक बैंक कार्य करते हैं तथा ये बैंक अपनी-अपनी शाखाओं का विस्तार करते हैंं।
- **व्युपन्न जमा (Derivative Deposit)-** जनता द्वारा प्राप्त नकद जमा के आधार पर बैंक जनता को अधिक साख-सृजन करते हैं तथा इस साख को बैंक ग्राहक के खाते में ही जमा कर देते हैं जिसे व्युत्पन्न जमा कहा जाता है।
- **मुद्रा का चलन वेग (Velocity of Money)-** मुद्रा के चलन वेग से तात्पर्य मुद्रा की एक इकाई नोट या सिक्के को जनता द्वारा निश्चित समय में कितनी बार स्वीकार किया जाता है तथा उसे क्रय-विक्रय के लिए प्रयोग किया जाता है।

9.9 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Question)

(1) निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिए?

I. साख क्या है?
II. साख-सृजन से आपका क्या आशय है?
III. नकद आरक्षित अनुपात तथा साख-सृजन के मध्य क्या सम्बन्ध हैं?
IV. साख सृजन की तीन प्रमुख सीमाऐं बताओ?
V. साख सृजन का महत्व संक्षेप में लिखो?

(2) नीचे दिये कथनों में से सत्य तथा असत्य कथनों को छाँटिये?

I. साख सृजन वाणिज्यिक बैंकों द्वारा किया जाता है। (सत्य/असत्य)
II. भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा भी साख सृजन किया जाता है। (सत्य/असत्य)
III. साख गुणांक $dm = \frac{1}{r}$ (सत्य/असत्य)
IV. घर पर नकदी रखने से साख-सृजन की प्रक्रिया सीमित होती है। (सत्य/असत्य)
V. साख-सृजन आर्थिक विकास में बाधक है। (सत्य/असत्य)

(3) नीचे दिये गये कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए?

(i) भारतीय रिजर्व बैंक भारत का .... है।
(केन्द्रीय बैंक, ग्रामीण बैंक, निजी बैंक)

(ii) "व्युत्पन्न जमा का निर्माण ही साख का सृजन है।" यह कथन .... का है।
(केन्ट, हॉम, जीड)

(iii) नकद जमा को .... भी कहा जाता है।

(व्युत्पन्न जमा , वास्तविक जमा, गौण जमा)

(iv) नकद आरक्षित अनुपात तथा साख-निर्माण के मध्य .... सम्बन्ध है।

(सीधा , विपरीत, अनुकूल, कोई नहीं)

(v) भारत में .... संचालित है।

(एक बैंक प्रणाली, बहु बैंक प्रणाली)

(vi) प्रारम्भिक जमाऐं बढ़ने पर साख सृजन .... होता है।

(अधिक , कम, स्थिर)

उत्तर - 2- (i) सत्य (ii) असत्य (iii) सत्य
(iv) सत्य (v) असत्य

3- (i) केन्द्रीय बैंक (ii) हाम (iii) वास्तविक जमा
(iv) विपरीत (v) बहु बैंक प्रणाली (vi) अधिक

9.10 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Question)

निम्नलिखित प्रश्नों का विस्तृत रूप में उत्तर दीजिए -

1. साख से आप क्या समझते हैं तथा इसे प्रभावित करने वाले कौन-कौन से कारक हैं?
2. वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख सृजन की प्रक्रिया को समझाइए?
3. वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख सृजन की प्रमुख सीमाओं की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए?
4. वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख सृजन के महत्व को विस्तृत रूप में समझाइए?
5. वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख सृजन में आने वाले प्रमुख समस्याओं की विवेचना कीजिए?

9.11 संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)

- आहूजा, एच0एल0 (2001) उच्चतर समष्टि अर्थशास्त्र , एस.चन्द एण्ड कम्पनी लि0 रामनगर , दिल्ली-110055
- मिश्रा एवं पुरी (2011) भारतीय अर्थव्यवस्था , हिमालय पब्लिकेशन्स हाउस, नई दिल्ली
- वैश्य, एम0सी0 (2001) मौद्रिक अर्थशास्त्र, एस.चन्द एण्ड कम्पनी लि0 रामनगर, दिल्ली-110055
- गौरव दत्त एवं अश्वनी महाजन (2013) भारतीय अर्थव्यवस्था , एस.चन्द एण्ड कम्पनी लि0 रामनगर, दिल्ली-110055

9.12 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)

- के0सी0 शेखर एवं लक्ष्मी शेखर (2006) Banking Theory and Practice, Vikas Publication House Pvt. Ltd., Masjid Road, Jangpura, New Delhi
- मिश्र, जगदीश नारायण (2005) भारतीय अर्थव्यवस्था, पुस्तक महल, दरियागंज, नई दिल्ली।
- सेठी टी0टी0 (2008) मुद्रा , बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं राजस्व , लक्ष्मी नारायण अग्रवाल , पुस्तक प्रकाशक संजय पैलेस, आगरा (उ0प्र0)

इकाई-10 केन्द्रीय बैंकः कार्य एवं सिद्धान्त (Central Bank: Function and Theory)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)
10.2 उद्देश्य (Objectives)
10.3 केन्द्रीय बैंक की परिभाषा (Definition of Central Bank)
10.4 केन्द्रीय बैंक एवं व्यापारिक बैंक की तुलना (Camparison of Central Bank and Commercial Bank)
10.4.1 समानताएं (Similarities)
10.4.2 असमानताएं (Inequalities)
10.5 केन्द्रीय बैंक के कार्य (Function of Central Bank)
10.6 केन्द्रीय बैंक के कुछ कार्यो पर प्रतिबन्ध (Restrictions on Certain Functions of The Central Bank)
10.7 केन्द्रीय बैकों के निर्देशक सिद्धान्त (Guiding Principles of Central Bank)
10.8 आर्थिक विकास में केन्द्रीय बैंक(रिर्जव बैंक ऑफ इण्डिया) की भूमिका (Role of Central Bank in Economic Development)
10.9 सारांश (Summary)
10.10 शब्दावली (Glossary)
10.11 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Question)
10.12 संदर्भ सहित ग्रन्थ (Bibliography)
10.13 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)
10.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी देश का शिखर बैंक उसका केन्द्रीय बैंक होता है जो उस देश की मौद्रिक एवं वित्तीय प्रणाली की केन्द्रीय धुरी के समान है। सरकार की आर्थिक क्रियायें केन्द्रीय बैंक के माध्यम से ही संचालित होती हैं। विभिन्न देशों में इसके अलग-अलग नाम हैं जैसे भारत में इसे रिजर्व बैंक आफ इण्डिया , इंग्लैंड में में बैंक आफ इंग्लैंण्ड, अमेरिका में फेडरल रिजर्व सिस्टम , फ्रांस में बैंक ऑफ फ्रांस , स्वीडन में स्विस बैंक इत्यादि नामों से जाना जाता है।

एक देश की बैंकिंग व्यवस्था में उस देश की केन्द्रीय बैंक का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक से अपना निर्देशन प्राप्त करते हैं और विभिन्न प्रकार से इस पर निर्भर रहते हैं।

एक पथप्रदर्शक , दार्शनिक के रूप में केन्द्रीय बैंक देश की अन्य बैंकों को सहायता प्रदान करता है। व्यवसाय को नियमित करने तथा मौद्रिक नीति को लागू करने में केन्द्रीय बैंक अहम् भूमिका निभाता है। इसके महत्व को देखते हुये बैंकिंग व्यवस्था में केन्द्रीय बैंकिंग के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करना आवश्क हो जाता है।

10.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप-

- ✓ केन्द्रीय बैंक से परिचित हो सकेंगे।
- ✓ केन्द्रीय बैंक के विभिन्न कार्यो से अवगत हो सकेंगे।
- ✓ केन्द्रीय बैंक एवं व्यापारिक बैंक के बीच अंतर को समझ सकेंगे।
- ✓ केन्द्रीय बैंक द्वारा साख नियंत्रण को समझ सकेंगे।
- ✓ केन्द्रीय बैंक के विकास को जान सकेंगे।
- ✓ केन्द्रीय बैंक के मुख्य निर्देशक सिद्धान्त से अवगत हो सकेंगे।
- ✓ आर्थिक विकास में केन्द्रीय बैंक की भूमिका को जान सकेंगे।

10.3 केन्द्रीय बैंक की परिभाषा (Definition of Central Bank)

देश के मौद्रिक तथा बैकिंग क्षेत्र में मुख्य स्थान होने के कारण उसे देश के केन्द्रीय बैंक की संज्ञा दी गयी है। इस केन्द्रीय बैंक को देश के अधिनियम द्वारा कुछ विशेष शक्तियां प्रदान की जाती हैं जिसके द्वारा यह अन्य व्यापारिक बैंकों को नियंत्रित करती है।

केन्द्रीय बैंक की कई परिभाषाएं उसके कार्यों पर आधारित हैं।

हॉट्रे (Hawtrey) के विचार में केन्द्रीय बैंक बैंकों का बैंक है क्योंकि यह अन्य बैंकों के लिये अन्तिम युग का ऋणदाता का कार्य करता है।

क्राउथर (Crowther) के अनुसार, “केन्द्रीय बैंक का अन्य बैकों के साथ ठीक वही सम्बन्ध होता है जैसा स्वयं अन्य बैंकों का जनता के साथ होता है।“

शॉ (Shaw) के अनुसार, “केन्द्रीय बैंक देश में साख मुद्रा का नियन्त्रण रखने वाला बैंक है।“

केन्ट (Cant) के अनुसार, “केन्द्रीय बैंक एक ऐसी संस्था है, जिसे सामान्य जनहित को दृष्टि में रखते हुए मुद्रा की मात्रा के विस्तार और संकुचन का प्रबन्ध करने की जिम्मेदारी सौंपी जाती है।“

ए.सी.एल.डे. का कहना है “केन्द्रीय बैंक वह है जो मौद्रिक एवं बैंकिंग प्रणाली को नियंत्रित एवं स्थिर करने में सहायक होता है।“

वेरा स्मिथ (Bera Smith) के अनुसार, “केन्द्रीय बैकिंग की प्राथमिक परिभाषा है- ऐसी बैकिंग प्रणाली जिसमें कोई एकल बैंक करेन्सी नोट जारी करने का पूर्ण अथवा अवशिष्ट एकाधिकार रखता है।“

सैम्यूल्सन (Samuelson) के द्वारा दी गयी व्यापक परिभाषा के अनुसार "केन्द्रीय बैंक बैंकरों का बैंक है इसका कर्तव्य मौद्रिक आधार को नियन्त्रित करना है और इस उच्चस्तरीय मुद्रा के नियन्त्रण के माध्यम से समुदाय को मुद्रा पूर्ति को नियंत्रित करना है।"

केन्द्रीय बैंक की उचित परिभाषा (Proper Definition of Central Bank)- केन्द्रीय बैंक एक ऐसी संस्था है जो देश की मौद्रिक बैकिंग तथा साख व्यवसाय का इस प्रकार नियमन एवं निर्देशन करती है जिससे देश की आर्थिक प्रगति वांछित गति से उचित दिशाओं में होती रहै।

केन्द्रीय बैंक की आवश्यकता (Need for Central Bank)- केन्द्रीय बैंक किसी भी देश के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसकी आवश्कता विभिन्न कारणों से होती है। एक पथप्रदर्शक, दार्शनिक के रूप में केन्द्रीय बैंक देश की अन्य बैंकों को सहायता प्रदान करता है।

10.4 केन्द्रीय बैंक एवं व्यापारिक बैंक की तुलना (Camparison of Central Bank and Commercial Bank)

10.4.1 समानताएं (Similarities)

- दोनों केन्द्रीय एवं वाणिज्यक बैंक मुद्रा का व्यवसाय करते हैं। जहां केन्द्रीय बैंक मुद्रा का निर्माण करता है वहीं व्यापारिक बैंक मुद्रा का लेन-देन और साख मुद्रा का निर्माण करता है।
- दोनो ही साख का निर्माण करते हैं। केन्द्रीय बैंक नोटों का निर्गमन करके साख का निर्माण करता है वहीं व्यापारिक बैंक व्युत्पन्न जमाओं के रूप में साख निर्माण में सहायक है।
- दोनों ही बैंक न तो अचल सम्पत्ति के आधार पर ऋण और न ही दीर्घकालीन ऋण देते हैं।

10.4.2 असमानताएं (Inequalities)

केन्द्रीय बैंक एवं व्यापारिक बैंक के मध्य असमानताओं को एक सारिणी के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है।

क्र.सं.	अन्तर का आधार	केन्द्रीय बैंक	व्यापारिक बैंक
1	संख्या	अमेरिका को छोड़कर (12 केन्द्रीय बैंक) अन्य सभी देशों में एक केन्द्रीय बैंक होता है।	प्रत्येक देश में अनेक व्यापारिक बैंक होते हैं।
2	बैंकिग व्यवस्था में स्थान	इसका स्थान सर्वोच्च होता है और अन्य बैंकों का नियंत्रण करता है।	यह सम्पूर्ण प्रणाली का एक अंग होता है।
3	नोट निर्गमन	इसे पत्र मुद्रा का निर्गमन करने का अधिकार होता है।	व्यापारिक बैकों का यह अधिकार नहीं होता है।
4	सरकार का बैंकर	यह सरकार की ओर से लेन-देन करते हैं।	इनका ऐसा कोई विशेष दायित्व नहीं होता है।
5	जनता से सम्बन्ध	यह जन साधारण के साथ प्रत्यक्ष व्यवसाय नहीं करता है।	ये जन साधारण से व्यवसाय करते है।
6	ब्याज	यह अपने पास जमा कराये गये धन पर ब्याज नहीं देता है।	ये अपने जमा धन पर ब्याज देते हैं।
7	स्वामित्व	इन पर सरकार का स्वामित्व होता है।	ये प्रायः अंशधारियों के बैंक होते हैं।
8	उद्देश्य	राष्ट्रहित में बैकिंग प्रणाली का	लाभ कमाना इनका मुख्य

		सफल संचालन करना इसका प्रमुख उद्देश्य है।	उद्देश्य है।
9	ऋण	यह अन्तिम ऋणदाता है और व्यापारिक बैकों को बिल भुनाने की सुविधा देता है।	ये केन्द्रीय बैंक से ऋण लेते हैं।
10	सम्बन्ध	यह व्यापारिक बैंकों का भी बैंक है।	ये केन्द्रीय बैंक के ग्राहक होते हैं।
11	समाशोधन गृह	यह समाशोधन गृह का कार्य करता है।	केवल केन्द्रीय बैंक के निर्देश पर ही ये समाशोधन गृह का कार्य कर सकते हैं।
12	स्वतंत्र नीति	अर्थव्यवस्था के हित में यह स्वतंत्र एवं क्रियाशील नीति अपनाता है।	ये केन्द्रीय बैंक के निर्देशन में अपना कार्य करते हैं।
13	मुख्य प्रशासक	केन्द्रीय बैंक का मुख्य प्रशासक गवर्नर कहलाता है।	व्यापरिक बैंकों का मुख्य प्रशासक चेयरमैन कहलाते हैं।

10.5 केन्द्रीय बैंक के कार्य (Function of Central Bank)

केन्द्रीय बैंक के कार्यो के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किये हैं। प्रो0एम एच डी कॉक के अनुसार केन्द्रीय बैंक के कार्य निम्लिखित हैं-

1. नोट निर्गमन का एकाधिकार।
2. सरकार का बैंकर, एजेण्ट तथा सलाहकार।
3. बैकों का बैंक।
4. विदेशी विनिमय कोषों का संरक्षक।
5. समाशोधन एवं स्थानान्तरण सुविधा।
6. साख नियन्त्रण।
7. आर्थिक विकास में सहायक।
8. ऑकड़े संकलित करना।

1. नोट निर्गमन का एकाधिकार (Monopoly & Note Issue)- केन्द्रीय बैंक के इस कार्य के कारण इसे निर्गमन बैंक भी कहा जाता है। यह अधिकार इसको देने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं-

- मुद्रा प्रणाली में एकरूपता।
- साख निर्माण पर नियन्त्रण।
- मुद्रा प्रणाली में लोच।
- जनता का विश्वास केन्द्रीय बैंक द्वारा जारी किये गये नोटों के प्रति अधिक रहता है।
- नोटों से प्राप्त सम्पूर्ण लाभ सरकार को मिल जाता है।
- मुद्रा के मूल्य मंे स्थिरता बनी रहती है क्योंकि मुद्रा की मात्रा को नियंत्रित करना आसान होता है।
- केन्द्रीय बैंक द्वारा सरकारी नीति का पालन करने में सुविधा होती है।

इस प्रकार के केन्द्रीय बैंक नोट निर्गमन पर एकाधिकार रखकर देश में सस्ती व उपयुक्त चलन प्रणाली की व्यवस्था करता है तथा मुद्रा के मूल्य में स्थिरता लाने का प्रयास करता है।

2. सरकार के बैंकर, एजेण्ट तथा सलाहकार (Banker, Agent and Advisor of the Government)

- **सरकार का बैंकर (Banker of the Government)-** इस रूप में केन्द्रीय बैंक सरकार को वो सेवाएं प्रदान करता है जो व्यापारिक बैंक जनता को प्रदान करते हैं। यह सरकारी विभागों के खाते रखता है और कोषों की व्यवस्था करता है। सरकार को आवश्यकता पड़ने पर ऋण भी देता है। सरकार की ओर से विदेशी मुद्राओं का क्रय-विक्रय भी करता है।
- **सरकार के एजेण्ट के रूप में (As an Agent of the Government)-** सरकारी अभिकर्ता के रूप में यह सरकार की ओर से प्रतिभूतियों ट्रेजरी बिलों आदि का क्रय-विक्रय करता है। सरकार जिन देशों से भी आर्थिक लेन-लेन के समझौते करती है , वे सब केन्द्रीय बैंक के माध्यम से किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय तथा अन्ताराष्ट्रीय संस्थाओं तथा सम्मेलनों में केन्द्रीय बैंक के विशेषज्ञ सरकार के प्रतिनिधि का कार्य करते हैं।
- **सरकार के आर्थिक सलाहकार के रूप में (As Economic Advisor of the Government)-**केन्द्रीय बैंक सरकार को आर्थिक व वित्तीय मामलों में सलाह भी देता है। केन्द्रीय बैंक की सहायता से सरकार मुद्रा एवं बैंकिंग सम्बन्धी नीति निर्धारित करती है।

डी कॉक के अनुसार "सरकारी बैंकर के रूप में केन्द्रीय बैंक केवल इसीलिए सुविधाजनक तथा मितव्ययी हैं, वरन् इसलिये भी कि सार्वजनिक वित्त तथा मौद्रिक मामलों में घनिष्ट सम्बन्ध होता है।"

3. बैंको का बैंक (Banker's Bank)- केन्द्रीय बैंक का अन्य बैंकों के साथ सम्बन्ध वैसा ही होता है जैसा व्यापारिक बैंकों का ग्राहकों के साथ होता है। वह न सिर्फ व्यापारिक बैंकों की रकम जमा करता है बल्कि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें ऋण देता है। कुछ देशों में व्यापारिक बैकों को केन्द्रीय बैंक के पास नकद रखना अनिवार्य कर दिया गया है। संक्षेप में बैंको के बैंक के रूप में केन्द्रीय बैंक निम्न कार्य करता है-

- व्यापारिक बैकों के नकद कोष अपने पास रखता है।
- आवश्यकता पड़ने पर उन्हें ऋण देता है।
- व्यापारिक बैकों के श्रेष्ठ बिलों की पुर्नकटौती करता है।

इसके कई लाभ हैं:-

- राष्ट्रीय संकट के समय जमा राशि का समुचित रूप से उपयोग किया जाता है।
- इससे साख प्रणाली में लोच उत्पन्न होती है।
- इसे व्यापारिक बैकों की साख निर्माण नीति तथा ऋण नीति को नियंत्रित करने का अवसर मिल जाता है।
- बैंकों का आपसी लेन-देन सरल हो जाता है।

4. विदेशी विनिमय कोषों का संरक्षक (Custodian of Foreign Reserves)- देश को विदेशी व्यापार विदेशी ऋण और अनुदानों से जितनी विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है उसका श्रेष्ठतम प्रकार से प्रयोग करते हुए केन्द्रीय बैंक विदेशी विनिमय कोषों के संरक्षक के रूप में भी कार्य करता है।

- सभी विदेशी मुद्रा केन्द्रीय बैंक में जमा होती है।
- विदेशी मुद्रा के लेन-देन पर प्रतिबन्ध रखा जाता है।
- विदेशी विनिमय का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक कार्यो के लिये ही किया जाता है।
- विदेशी भुगतानों के लिये आवश्यक रकम की व्यवस्था की जाती है।
- अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के विकास तथा विनिमय दरों की स्थिरता के लिये विदेशी मुद्रा के कोषों को उचित मात्रा में बनाये रखने की आवश्यकता होती है। अतः केन्द्रीय बैंक अर्न्तराष्ट्रीय विनिमय पर नियंत्रण रखता है।

5. व्यापारिक बैंकों के लिये अंतिम ऋणदाता(Lender of Last Resort)-
केन्द्रीय बैंक दो प्रकार से व्यापारिक बैकों की सहायता करता है:-

- श्रेष्ठ व्यापारिक बिलों की पुर्नकटौती द्वारा तथा
- प्रथम श्रेणी की प्रतिभूतियों की धरोहर पर ऋण द्वारा।

जब अन्य किसी साधन से उधार मिलने की आशा नहीं रहती है तब केन्द्रीय बैंक रकम उपलब्ध कराता है , इस कारण केन्द्रीय बैंक को अंतिम ऋणदाता कहा गया है। केन्द्रीय बैंक जो रकम उधार में देता है वह सरकारी प्रतिभूतियों की जमानत पर देता है। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक मुद्रा बाजार में मुद्रा की पूर्ति पर देता है। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक मुद्रा बाजार में मुद्रा की पूर्ति को बढ़ाता है।

चूंकि केन्द्रीय बैंक अंतिम ऋणदाता के रूप में उपलब्ध होता है , इस कारण व्यापारिक बैकों को अधिक नकद कोष रखना पड़ता है और बैकों पर नियंत्रण रखना और सरल हो जाता है।

6. समाशोधन एवं स्थानान्तरण सुविधा (Clearing & Transfer Facility)-केन्द्रीय बैंक एक समाशोधन ग्रह के रूप में ऐसी व्यवस्था करता है कि विभिन्न बैकों के पारस्परिक लेन-देन अथवा एक दूसरे पर लिखे गये चैकों के भुगतान का निबटारा केवल खातों में आवश्यक परिवर्तन द्वारा किया जा सके। इस प्रकार करोड़ों रूप्ये का हिसाब-किताब केवल खातों में जमा या नाम लिखने मात्र से हो जाता है। दैनिक लेन-देन का समायोजन केन्द्रीय बैंक द्वारा बड़े-बड़े नगरों में समाशोधन गृह की स्थापना द्वारा सहजता से हो जाता है।

7. साख का नियन्त्रण (Controller of Credit)- साख नियन्त्रण से तात्पर्य साख मुद्रा की मात्रा में देश की मौद्रिक आवश्यकताओं के अनुसार कमी अथवा वृद्धि करने से है। साख नियन्त्रण के माध्यम से केन्द्रीय बैंक देश की अर्थव्यवस्था को स्थिर करने का प्रयास करता है ताकि आर्थिक उच्चावच नों बचा जा सके। प्रो . शॉ ने साख नियन्त्रण को केन्द्रीय बैंक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य माना है।साख की मात्रा आवश्यकता से अधिक होने पर मुद्रा स्फीति की स्थिति उत्पन्न होती है और कम होने पर मुद्रा संकुचन की स्थिति। केन्द्रीय बैंक साख को नियन्त्रित करके इन स्थितियों पर अंकुश लगता है। अतः यह इसका प्रधान कार्य माना गया है।

1931 से पूर्व साख नियन्त्रण का मुख्य उद्देश्य विदेशी विनिमय दर में स्थिरता रखना होता था पर 1931 में स्वर्णमान के पतन के बाद इसका प्रमुख उद्देश्य आन्तरिक मूल्यों में स्थिरता बनाये रखना हो गया। वस्तुतः साख नियन्त्रण का उद्देश्य दोनों में स्थायित्व की प्राप्ति होना चाहिये।

8. कुछ अन्य कार्य (Some Other Functions)
डी कॉक द्वारा बताये गये केन्द्रीय बैंक के उपर्युक्त सात कार्यों के अतिरिक्त केन्द्रीय बैंक के कुछ अन्य कार्य भी हैं जैसे-

- **आर्थिक विकास में सहायक होना (Aiding in Economic Development)-** वर्तमान केन्द्रीय बैंक न महज आर्थिक स्थिरता अपितु आर्थिक विकास को भी प्रोत्साहन देते हैं व्यापारिक बैंकों को सरकारी बैंकों सहकारी बैंकों अन्य वित्तीय संस्थाओं तथा बिल बाजार के विकास एवं विस्तार के लिये केन्द्रीय बैंक कार्य करता है। ताकि निवेश के साधनों का विस्तार किया जा सके। सरकार को हीनार्थ प्रबन्धन के माध्यम से वित्तीय साधन उपलब्ध कराता है। विकासशील देशों में केन्द्रीय बैंक की भूमिका विकास सम्बन्धी कार्य के लिये अधिक सजग है।
- **आंकड़े संकलित करना (Compiling Data)-** देश को मुद्रा साख बैंकिग , विदेशी निवेश आदि से सम्बन्धित आर्थिक स्थिति के बारे में आंकड़े व सूचनाएं एकत्र करना तथा उन्हें जन हित में प्रकाशित करना केन्द्रीय बैंक के कार्यो में सम्मिलित है। ये आंकड़े व्यापारिक तथा औद्योगिक विकास के लिए देश की आर्थिक स्थिति का ज्ञान कराते हैं। इससे आर्थिक नियोजन में सफलता मिलती है।

10.6 केन्द्रीय बैंक के कुछ कार्यो पर प्रतिबन्ध (Restrictions on Certain Functions of The Central Bank)

डी कॉक के अनुसार केन्द्रीय बैंक के सफल संचालन और अर्थव्यवस्था के हित के लिये आवश्यक है कि उसके कुछ कार्यों पर प्रतिबन्ध लगा रहे। जैसे जनता से प्रत्यक्ष रूप में नकदी न स्वीकार करना, न ही जनता को प्रत्यक्ष रूप से ऋण प्रदान करना बल्कि व्यापारिक बैकों के माध्यम से यह कार्य करने चाहिए। व्यापारिक बैंक से प्रतिस्पर्घा न हो अतएव केन्द्रीय बैंक को व्यापारिक बैंकों के कार्य नहीं करने चाहिए। उसे निष्पक्ष होकर देश की मुद्रा प्रणाली का संचालन करना चाहिए।

भारत के संदर्भ में रिजर्व बैंक पर यह प्रतिबन्ध लगा दिये हैं कि वे निम्नलिखित कार्य नहीं कर सकता-

1. कोई उद्योग अथवा व्यापार नहीं खोल सकता।
2. किसी बैंक या कम्पनी के शेयर नहीं खरीद सकता।
3. अचल सम्पत्ति की जमानत पर ऋण नहीं दे सकता।
4. बिना जमानत के ऋण नहीं दे सकता।
5. मियादी बिल न लिख सकता है और न ही स्वीकार कर सकता है।
6. जमाओं पर ब्याज नहीं दे सकता।

ऐसा करने से केन्द्रीय बैंक कार्यों में निष्पक्षता सरलता एवं सुरक्षा तथा तरलता बनाये रखता है।

10.7 केन्द्रीय बैकों के निर्देशक सिद्धान्त (Guiding Principles of Central Bank)

केन्द्रीय बैकों का स्वरूप संगठन उद्देश्य तथा कार्य व्यापारिक बैकों से भिन्न होने के कारण केन्द्रीय बैंक के निर्देशन भी भिन्न होते हैं।

केन्द्रीय बैंक मुख्यतः निम्नलिखित सिद्धान्तों को अपनाता है-

1. **सम्पूर्ण देशहित की प्रमुखता का सिद्धान्त (Principle of Priority to National Interest)-** लाभ कमाने के उद्देश्य से नहीं वरन लोक तथा राष्ट्र कल्याण की भावना से प्रेरित होकर केन्द्रीय बैंक को कार्य करना चाहिए। लोकहित प्राप्ति को गौण मानना चाहिए। डी कॉक भी यह मत प्रस्तुत करते हैं।
2. **मौद्रिक तथा वित्तीय स्थिरता का सिद्धान्त (Principle of Monetary and Financial Stability)-** मौद्रिक एवं वित्तीय स्थिरता के अभाव में देश की आर्थिक स्थिति कमजोर हो सकती है। अतः केन्द्रीय बैंक को देश में मुद्रा , साख, विदेशी विनिमय तथा सार्वजनिक ऋण के नियमन के लिये एक सक्रिय नीति अपनाना चाहिए।
3. **राजनीतिक प्रभाव से स्वतंत्र रहने का सिद्धान्त अथवा निष्पक्षता का सिद्धान्त (Principle of being free from Political influence or Principle of Impartiality)-** किसी विशेष समुदाय अथवा राजनीतिक वर्ग का पक्षपात करते हुए नीति का निर्धारण न करें। निष्पक्ष नीति का अनुसरण करें। राजनीतिक दलबन्दी के प्रभाव से मुक्त रहते हुए सरकार का सहयोंग करना चाहिए चाहे वह किसी दल की सरकार हो।
4. **मुद्रा निर्गमन का एकाधिकार (Monopoly of Currency Issuance)-**केन्द्रीय बैंक के अतिरिक्त नोट निर्गमन का अधिकार अन्य किसी संस्था को नहीं होना चाहिए। तभी यह देश में मुद्रा तथा साख व्यवस्था पर उचित तथा प्रभावपूर्ण नियंत्रण रख पायेगा। न ही तब मुद्रा स्फीति का भय रहेगा और आर्थिक स्थिरता भी बनी रहेगी।
5. **साधारण बैंकिंग कार्यों से अलग (Different from the Functions of a Commercial Bank)-** केन्द्रीय बैंक को व्यापारिक बैकों की भांति सामान्य लेन-देन के कार्य न करें अर्थात वह न तो जनता से प्रत्यक्ष रूप से जमा राषियां स्वीकार करे और न ही सीधे ऋण दे। व्यापारिक बैंक से प्रतिस्पर्धा नहीं करनी चाहिए ये बैकिंग व्यवसाय के विकास के लिए हितकर रहेगा। यह सिद्धान्त सर्वमान्य है। केन्द्रीय

बैंक को केवल केन्द्रीय बैंक के ही कार्य करने चाहिए। इससे देश की मुद्रा की पूर्ति पर उसका प्रभावपूर्ण नियंत्रण रहे एवं चलन प्रणाली में एकरूपता बनी रहे।

10.8 आर्थिक विकास में केन्द्रीय बैंक (रिर्जव बैंक ऑफ इण्डिया) की भूमिका (Role of Central Bank in Economic Development)

विकासशील देशों में केन्द्रीय बैंक की व्यापारिक बैंकिंग प्रणाली तथा मुद्रा एवं पूंजी बाजार विकसित करने में अधिक गतिशील भूमिका होती है। विकसित देशों में व्यापारिक बैंक का पूर्ण रूप से विकास हुआ रहता है एवं उनके मुद्रा एवं पूंजी बाजार भी सुगठित रहते हैं अतः इन देषों में इनकी भूमिका भिन्न होती है। सेयर्स का मानना है कि अर्द्धविकसित देषों में केन्द्रीय बैंक को व्यापारिक बैंकों के कुछ कार्य भी करने चाहिए परन्तु यह ऐसे विवाद का विवाद विषय है । निम्न बिन्दुओं द्वारा यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि विकासशील देशों में व्यापारिक बैकिंग प्रणाली को विकसित करने में केन्द्रीय बैंक एक अहम् भूमिका निभाता है।

1. **प्रभावपूर्ण मौद्रिक नीति (Effective Monetary Policy)-** अर्द्धविकसिक देशों में असंगठित बैंकिंग प्रणाली नियोजित आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करती है। लोगों में बैकिंग आदत का अभाव होना बैंकों की संख्या कम होना अर्थव्यवस्था में विकास को रोकती है। ऐसे में केन्द्रीय बैंक द्वारा एक सुदृढ़ मौद्रिक नीति को अपनाना अहम् हो जाता है।
2. **पूंजी निर्माण में सहायक (Helpful in Capital Formation)-** केन्द्रीय बैंक को अर्द्धविकसित देशों में पूंजी के निर्माण में एक अहम भूमिका निभानी चाहिए। बचत को गतिशील बनाने हेतु केन्द्रीय बैंक उचित कदम उठा सकता है और इस बचत को उत्पादक कार्यों में निवेश करने के लिये बैकिंग प्रणाली को विकसित किया जाना चाहिए।
3. **साख की सुविधा में वृद्धि (Increase in the Credit Facility)-** अर्द्धविकसित देशों की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर निर्भर होती है परन्तु इन क्षेत्रों में प्रचारित सुविधा न होने के कारण ये देश अर्द्धविकास के नियम चक्र में फंसे रहते हैं अतः केन्द्रीय बैंक को चाहिये कि वह ऐसी व्यवस्था करें कि ग्रामीण क्षेत्रों के कृषकों के माध्यम एवं दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध हो सके। कृषि साख संस्थाओं का विकास होना चाहिए। उदाहरण के लिये भारत में नाबार्ड के माध्यम से रिजर्व बैंक यह सुविधा उपलब्ध कराता है।
4. **औद्योगिक क्षेत्र का विकास (Development of the Industrial Sector)-** विशिष्ट औद्योगिक वित संस्थाओं की स्थापना करके औद्योगिक क्षेत्र का विकास केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। जैसे भारत में औद्योगिक विकास बैंक भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना में केन्द्रीय बैंक ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन संस्थाओं से देष की औद्योगिक वित की आवष्यकता की पूर्ति हो पा रही है।
5. **विदेशी विनिमय रिजर्व का प्रबन्ध (Management of the Foreign Exchange Reserve)-** केन्द्रीय बैंक विदेषी कोषों का संरक्षक होता है अतः उसे बहुत सोच समझाकर इन विदेषी विनिमय का प्रयोग करना चाहिए ताकि देष में कच्चा माल , मषीने आदि आयातों की आवष्यकता की पूर्ति की जा सके जिससे कि देष की भुगतान संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़ सके।
6. **सार्वजनिक ऋण का प्रबन्ध (Management of Public debt)-**प्रत्येक देष में केन्द्रीय बैंक सार्वजनिक ऋण प्रबन्ध करता है। केन्द्रीय बैंक की एक महत्वपूर्ण भूमिका अर्थव्यवस्था के आर्थिक नियोजन के लिये वित्तीय व्यवस्था करना है। केन्द्रीय बैंक सार्वजनिक ऋण का समुचित प्रबन्ध करता है जिससे देष को विदेषी ऋण पर आश्रित न रहना पड़े।

7. **व्यापरिक बैंकों के लिये प्रशिक्षित अधिकारियों एवं कर्मचारियों की व्यवस्था (Arrangement of trained officials and workers for the Commercial Bank)-** यह केन्द्रीय बैंक का कार्य है कि वह व्यापारिक बैंक के कुशल कार्य प्रणाली हेतु प्रशिक्षित कर्मचारियों की उचित व्यवस्था करे। सभी कर्मचारियों का उच्च प्रषिक्षण हेतु प्रबन्ध की जिम्मेदारी केन्द्रीय बैंक की होती है क्योंकि व्यापारिक बैंक इसके उचित व्यवस्था कराने में असक्षम होते हैं। साथ ही व्यापारिक बैंकों की शाखाओं का विस्तार और उनका सन्तुलित विकास केन्द्रीय बैंक को करना चाहिए।
8. **सरकार की सलाहकार की भूमिका (Role of Advisor to the Government)-** सरकार को मौद्रिक वित्तीय एवं तकनीकी सलाह देना केन्द्रीय बैंक के कार्यो मे शामिल है किन्तु एक अर्द्धविकसि त देश में यह भूमिका और भी अहम हो जाती है। सरकार को आर्थिक , सामाजिक तथा तकनीकी सर्वेक्षण करके रिपोर्ट प्रस्तुत करना केन्द्रीय बैंक की जिम्मेदारी है जिससे कि सरकार उनका अवलोकन करके उचित नीतियां बना सके।

ऊपर दिये बिन्दुओ से यह स्पष्ट होता है कि अर्द्धविकसित देश की आर्थिक विकास को गति प्रदान करने में केन्द्रीय भूमिका एक अहम् भूमिका अदा करता है।

10.9 सारांश (Summary)

एक देश की बैंकिंग व्यवस्था में उस देश की केन्द्रीय बैंक का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। एक पथप्रदर्शक, दार्शनिक के रूप में केन्द्रीय बैंक देश की अन्य बैंकों को सहायता प्रदान करता है। विभिन्न देशों में इसके अलग-अलग नाम हैं जैसे भारत में इसे रिजर्व बैंक आफ इण्डिया , इंग्लैंड में में बैंक आफ इंग्लैण्ड , अमेरिका में फेडरल रिजर्व सिस्टम, फ्रांस में बैंक ऑफ फ्रांस, स्वीडन में स्विस बैंक इत्यादि नामों से जाना जाता है। केन्द्रीय बैंक को देश के अधिनियम द्वारा कुछ विशेष शक्तियां प्रदान की जाती हैं जिसके द्वारा यह अन्य व्यापारिक बैंकों को नियंत्रित करती है।

केन्द्रीय बैंक के कार्यो के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किये हैं। केन्द्रीय बैंक नोट निर्गमन पर एकाधिकार रखकर देश में सस्ती व उपयुक्त चलन प्रणाली की व्यवस्था करता है तथा मुद्रा के मूल्य में स्थिरता लाने का प्रयास करता है। केन्द्रीय बैंक सरकार को वो सेवाएं प्रदान करता है जो व्यापारिक बैंक जनता को प्रदान करते हैं। सरकार जिन देशों से भी आर्थिक लेन-लेन के समझौते करती है, वे सब केन्द्रीय बैंक के माध्यम से किये जाते हैं। केन्द्रीय बैंक सरकार को आर्थिक व वित्तीय मामलों में सलाह भी देता है। बैंको के बैंक के रूप में केन्द्रीय बैंक कार्य करता है। केन्द्रीय बैंक विदेशी विनिमय कोषों के संरक्षक के रूप में भी कार्य करता है और अर्न्तराष्ट्रीय विनिमय पर नियंत्रण रखता है। जब अन्य किसी साधन से उधार मिलने की आशा नहीं रहती है तब केन्द्रीय बैंक रकम उपलब्ध कराता है , इस कारण केन्द्रीय बैंक को अंतिम ऋणदाता कहा गया है। केन्द्रीय बैंक एक समाशोधन ग्रह के रूप में ऐसी व्यवस्था करता है कि विभिन्न बैकों के पारस्परिक लेन-देन अथवा एक दूसरे पर लिखे गये चैकों के भुगतान का नि पटारा केवल खातों में आवश्यक परिवर्तन द्वारा किया जा सके। साख नियन्त्रण के माध्यम से केन्द्रीय बैंक देश की अर्थव्यवस्था को स्थिर करने का प्रयास करता है ताकि आर्थिक उच्चावचनों बचा जा सके। केन्द्रीय बैंक साख को नियन्त्रित करके इन स्थितियों पर अंकुश लगता है। अतः यह इसका प्रधान कार्य माना गया है।

विकासशील देशों में केन्द्रीय बैंक की भूमिका विकास सम्बन्घी कार्य के लिये अधिक सजग है। व्यापारिक बैंक से प्रतिस्पर्घा न हो अतएव केन्द्रीय बैंक को व्यापारिक बैंकों के कार्य नहीं करने चाहिए। उसे निष्पक्ष होकर देश की मुद्रा प्रणाली का संचालन करना चाहिए। विकासशील देषों में केन्द्रीय बैंक की व्यापारिक बैंकिंग प्रणाली तथा मुद्रा एवं पूंजी बाजार विकसित करने में अधिक गतिशील भूमिका होती है। विकासशील देशों में व्यापारिक बैकिंग प्रणाली को विकसित करने में केन्द्रीय बैंक एक अहम् भूमिका निभाता है।

10.10 शब्दावली (Glossary)

- **संकुचन (Contraction)-** संकुचन अर्थव्यवस्था की वह अवस्था है जब GDP रोजगार और उत्पादन में लगातार गिरावट होती है।
- **आर्थिक प्रगति (Economic Progress)-** आर्थिक प्रगति एक व्यापक आर्थिक अवधारणा है जो किसी देश या समाज के आर्थिक विकास से आगे बढ़कर उसके जीवन स्तर , सामाजिक कल्याण, तकनीकी उन्नति और संस्थागत सुधारों को समाहित करती है।
- **मुद्रा चलन (Currency in Circulation) -** मुद्रा चलन से तात्पर्य अर्थव्यवस्था में प्रचलित भौतिक नकदी से है जो केन्द्रीय बैंक द्वारा जारी की गई होती है।
- **वित्तीय एजेण्ट (Financial Agent)-** एक वित्तीय एजेंट एक व्यक्ति या संस्था होता है जो किसी अन्य पक्ष की ओर से वित्तीय लेनदेन एवं सेवाएं प्रबंधित करता है।
- **पुर्नकटौती (Rediscount)-** पुर्नकटौती वह प्रक्रिया है जिसमें वाणिज्यिक बैंक अपने द्वारा क्रय किए गए वाणिज्यिक बिलों को केंद्रीय बैंक के पास पुनः कटौती पर बेचते हैं ताकि तरलता प्राप्त कर सकें।
- **वित्तीय स्थिरता (Financial Stability)-** वित्तीय स्थिरता से तात्पर्य एक ऐसी आर्थिक स्थिति से है जिसमें वित्तीय प्रणाली सुचारू रूप से कार्य करती है और आर्थिक झटकों को अवशोषित करने में सक्षम होती है। यह अर्थव्यवस्था के सतत विकास के लिए आवश्यक आधारभूत स्थिति है।

10.11 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Question)

1. केन्द्रीय बैंक के दो प्रमुख कार्य लिखिये।
2. भारत के केन्द्रीय बैंक का नाम बताइये और यह कहाँ स्थित है।
3. भारत का केन्द्रीय बैंक कब स्थापित हुआ था और इसका राष्ट्रीयकरण कब हुआ?
4. केन्द्रीय बैंक एवं व्यापारिक बैंक के बीच दो मुख्य अंतर बताइये।

उत्तर -

1. नोट निर्गमन का एकाधिकार, बैंकों का बैंक
2. रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, मुम्बई
3. 1935, 1949,
4. (i) केन्द्रीय बैंक की संख्या एक (अमेरिका को छोड़कर) होती है जबकि व्यापारिक बैंक अनेक होते हैं।
   (ii) केन्द्रीय बैंक जन साधारण के साथ प्रत्यक्ष व्यवसाय नहीं कर सकता जबकि व्यापारिक जन साधारण के साथ व्यवसाय करते है।

10.12 संदर्भ सहित ग्रन्थ (Bibliography)

- सिहाई, जी. सी., जे पी मिश्रा एवं के. पुल गुप्ता: अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा।
- सेठी, टी. टी.: मुद्रा बैकिंग एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा।
- झिंगन, एम. एल.ः समष्टि अर्थषास्त्र, वृंदा पब्लिरिकन, नई दिल्ली।

10.13 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)

- Mithani, D.M. (2008) International Economics, Himalaya Publishing House.
- Mithani, D. M. (1998), Modern Public Finance, Himalaya Publishing House. Mumbai.

- Musgrave, R. A. and P. B. Musgrave (1976), Public Finance in Theory and Practice McGraw Hill, Kogakusha, Tokyo.
- Agrawal, Deepak (2009), Money Banking, Public Finance & International Economics, Himalaya Publishing House.

10.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. आधुनिक अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय बैंक की भूमिका की विवेचना कीजिए।
2. केन्द्रीय बैंक क्या है? इसके प्रमुख कार्यों की विवेचना कीजिए।
3. केन्द्रीय बैंक के निर्देषन सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।

इकाई - 11 साख नियन्त्रण परिणात्मक एवं गुणात्मक विधियां

11.1 प्रस्तावना (Introduction)
11.2 उद्देश्य (Objectives)
11.3 केन्द्रीय बैंक द्वारा साख नियंन्त्रण (Credit Control by Central Bank)
11.4 साख नियंत्रण के उद्देश्य (Objectives of Credit Control)
11.5 साख नियन्त्रण की विधियां (Methods of Credit Control)
    11.5.1 परिमाणात्मक विधियां (Quantitative Methods)
    11.5.2 गुणात्मक विधियां (Qualitative Methods)
    11.5.3 साख नियंत्रण की कठिनाइयां (Diffculties in Credit Control)
11.6 सारांश (Summary)
11.7 शब्दावली (Glossary)
11.8 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Question)
11.9 संदर्भ सहित ग्रन्थ (Bibliography)
11.10 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)
11.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछली इकाई में हमने केन्द्रीय बैंक की परिभाषा और उसके विभिन्न कार्यों पर प्रकाष डाला। केन्द्रीय बैंक के विभिन्न कार्यों में साख नियंत्रण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। साख के नियंत्रण से केन्द्रीय बैंक देश की अर्थव्यवस्था मे मुद्रा स्फीति की स्थिति को न सिर्फ नियंत्रित कर सकता है बल्कि अवस्फीति की द शा में साख विस्तार से इस समस्या का समाधान भी कर सकता है।

प्रस्तुत इकाई में साख नियंत्रण को विस्तृत रूप से समझाया गया है। केन्द्रीय बैंक द्वारा साख नियंत्रण के इस कार्य के विभिन्न उद्देश्यों और इसको क्रियान्वित करने के विभिन्न विधियों पर भी प्रकाष डाला गया है।

साख नियंत्रण की विधियों के द्वारा केन्द्रीय बैंक की स शक्त भूमिका का पता चलता है। अर्थव्यवस्था की स्थितियों अनुकूल केन्द्रीय बैंक द्वारा साख का सकु शल नियंत्रण देश को विकास के पथ पर ले जाती है। मौद्रिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु केन्द्रीय बैंक का ये कार्य अति महत्वपूर्ण कार्यों में एक हैं।

11.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- ✓ साख नियंन्त्रण के उद्देश्य को जान सकेंगे।
- ✓ साख नियंन्त्रण की विधियों से परिचित हो सकेंगे।
- ✓ साख नियन्त्रण की कठिनाइयों को समझ सकेंगे।

11.3 केन्द्रीय बैंक द्वारा साख नियंन्त्रण (Credit Control by Central Bank)

केन्द्रीय बैंक के विभिन्न कार्यों में साख नियन्त्रण का कार्य व्यापारिक बैंक की साख निर्माण षक्ति को नियन्त्रित करता है।

वर्तमान समय में साख मुद्रा का प्रयोग अत्यधिक बढ़ जाने से साख की मात्रा पर प्रभाव पड़ने लगा है जिससे देश की अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है। मुद्रा की मात्रा का नियमन बहुत कुछ साख के नियन्त्रण से ही सम्बन्धित है क्योंकि मुद्रा में चलन तथा साख मुद्रा दोना ही सम्मिलित हैं।

अतएव केन्द्रीय बैंक की साख नियन्त्रण नीति तथा मौद्रिक नीति में विशेष रूप से कोई अंतर नहीं होता। साख को नियन्त्रित करना अत्यन्त कठिन होता है। इसके माध्यम से केन्द्रीय बैंक देश की अर्थव्यवस्था को स्थिर करने का प्रयास करता है। आर्थिक उच्चावचनों से अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसीलिये प्रो. शॉ ने भी साख नियन्त्रण को केन्द्रीय बैंक का महत्वपूर्ण कार्य बताया है जिसके द्वारा केन्द्रीय बैंक अर्थव्यवस्था को स्थिरता प्रदान कर सके।

11.4 साख नियंत्रण के उद्देश्य (Objectives of Credit Control)

प्रो. राबर्टसन ने उचित ही कहा है कि जहॉं मुद्रा मानव जाति के अनेक सुखों का स्रोत है वहीं नियन्त्रण के यह संकट का कारण भी बन जाती है।

साख नियन्त्रण के उद्दे श्यो में समय-समय पर परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होता रहा है। जहाँ पूर्व में स्वर्णमान युग में विनिमय दरों की स्थिरता पर बल दिया जाता था और मुद्रा की आन्तरिक मूल्य अथवा कीमत स्तर की स्थिरता को गौण समझा जाता था तब साख नियन्त्रण का उद्देश्य विनिमय दरों में स्थिरता प्राप्त करना था। परन्तु तीसी की महामन्दी के पश्चात् विनिमय दरों की अपेक्षा कीमत स्थिरता देश के आर्थिक हितों के लिये अधिक आवश्यक माना गया। अतः साख नियन्त्रण का उद्देश्य विनिमय स्थिरता से हटकर आन्तरिक मूल्य या कीमत स्तर पर आ गया।

परन्तु आज की आधुनिक विचारधारा के अर्न्तगत दोनों विनिमय स्थिरता एवं मूल्य स्थिरता ही आवश्यक है और यह प्रयास किया जाता है कि दोनो उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके। महामन्दी से उबरने के पश्चात्

केन्स की आर्थिक विचारधारा का गहरा प्रभाव दिखाई दिया। आय एवं रोजगार में स्थिरता को महत्व दिया जाने लगा। न महज स्थिरता को महत्व बल्कि आर्थिक नीति का उद्देश्य आय एवं रोजगार में वृद्धि करना भी था। अतः साख नियन्त्रण का उद्देश्य आय एवं रोजगार को उच्च स्तर पर स्थिरता प्राप्त करना हो गया।

आर्थिक विकास को गति शील करना अहम हो गया था क्योंकि द्वितीय महायुद्ध में विश्व की कई अर्थव्यवस्था चरमरा गयी थी। अर्द्धविकसित देशों के लिये यह आवश्यक हो गया था कि वह कुशल आर्थिक नियोजन की नीति बना ये। इसके लिये भारी मात्रा में निवे श करना और अर्थव्यवस्था की बढ़ी हुयी मात्रा में मौद्रिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना आवश्यक होता है। इसके लिये साख का उचित विस्तार एवं प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है। अतः साख नियन्त्रण महज स्थिरता प्रदान करने के लिये वरन् आर्थिक विकास में सहायता करना भी होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि केन्द्रीय बैंक की साख नियन्त्रण नीति का केवल एक उद्देश्य न हो के भिन्न-भिन्न उद्देश्य हैं। साख नियन्त्रण के उद्देश्य वही होते हैं जो कि किसी देश द्वारा निर्धारित मौद्रिक नीति के उद्देश्य होते हैं।

विस्तृत रूप से साख नियन्त्रण के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं -

1. **आर्थिक स्थायित्व एवं पूर्ण रोजगार (Economic stability and full employment)-** आधुनिक अर्थषात्रियों के अनुसार देश की मौद्रिक और साख की नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे व्यापार चक्रों को रोका जा सके तथा देश में आर्थिक स्थायित्व और पूर्ण रोजगार स्थापित किया जा सके।
2. **विनिमय दर में स्थिरता (Stability in Exchange Rate):-** यदि साख में वृद्धि करने से स्फीति की स्थिति उत्पन्न होने लगती है तो विनिमय दर गिरने लगती है। ऐसा होने पर देश की अर्थव्यवस्था में गड़बड़ी होने का भय रहता है और मुद्रा का अवमूल्यन करना पड़ सकता है।
3. **कीमत स्तर में स्थायित्व (Stability in Price Level) -** कीमत स्तर में स्थिरता बनाये रखना भी साख नियन्त्रण का उद्देश्य होता है। साख की मात्रा और देश की व्यापारिक आवश्यकताओं के बीच उचित सामंजस्य बनाये रखने से इस उद्देश्य की पूर्ति होती है।
4. **आर्थिक विकास (Economic Development)-** साख का नियन्त्रण इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे कि अर्थव्यवस्था में उचित विकास की दशाएं उत्पन्न हो सके।

यह उल्लेखनीय है कि उपरोक्त उद्देश्यों की सफल पूर्ति के लिये राजकोषीय नीति का भी सहयोग आवश्यक है।

11.5 साख नियन्त्रण की विधियां (Methods of Credit Control)

साख नियन्त्रण के लिए केन्द्रीय बैंक दो रीतियां अपनाता है। ये रीति परिमाणात्मक तथा गुणात्मक होती हैं। जहाँ एक और परिमाणात्मक अथवा मात्रात्मक विधियों का उद्देश्य साख की लागतें तथा मात्रा को नियन्त्रित किया जाना है वहीं गुणात्मक विधियां साख के प्रयोग और दिषा को नियन्त्रित करती हैं।

साख नियन्त्रण को दो भागों में बांटा जा सकता है -

परिमाणात्मक	गुणात्मक
बैंक दर	चयनात्मक साख नियन्त्रक
खुले बाजार की क्रियाएं	साख की राषनिंग
परिवर्तनषील कोषानुपात	नैतिक दबाव
तरल कोषानुपात	प्रचार
	प्रत्यक्ष कार्यवाही

11.5.1 परिमाणात्मक विधियां (Quantitative Methods)

1. **बैंक दर या कटौती दर (Bank Rate or Discount Rate):-**

यह वह दर है जिस पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैकों को उधार देता है या जिस दर पर व्यापारिक बैंक द्वारा प्रस्तुत प्रथम श्रेणी के बिलों की पुर्नकटौती करता है। इस बैंक दर में परिवर्तन करके केन्द्रीय बैंक साख का नियन्त्रण करता है। इंग्लैण्ड अमरीका आदि देशों में बिलों की पुर्नकटौती को महत्व देने के कारण इस दर को कटौती दर भी कहा जाता है।

यदि अर्थव्यवस्था के लि ए साख बढ़ाने की जरूरत हो तो केन्द्रीय बैंक बैंक दर को घटा देता है। ऐसा करने से व्यापारिक बैंक अधिक उधार लेंगे और आगे उपभोक्ताओं को कम दर पर कर्ज देगें। जिससे कि व्यापार क्रिया को प्रोत्साहन मिलता है और साख का विस्तार होता है कीमते बढ़ने लगतीं हैं। यही प्रक्रिया विपरीत हो जाती है जब साख का संकुचन करना होता है। अर्थात बैंक दर को बढ़ा दिया जाता है।

बैंक दर और बाजार दर में यह अंतर होता है कि बैंक दर केन्द्रीय बैंक की बैंको की कटौती करने की दर होती है। बैंक दर में वृद्धि अथवा कमी प्रत्यक्ष प्रभाव बाजार दर पर पड़ता है।

सार रूप में बैंक दर बढ़ाने से साख में संकुचन एवं बैंक दर घटाने से साख में विस्तार होता है।

बैंक दर की सफलता के लिये आवश्यक शर्तें-

I. देश की अर्थव्यवस्था लोचदार होनी चाहिए।
II. मुद्रा बाजार में प्रचलित अन्य ब्याज की दरें बैंक दर में होने वाले परिवर्तन के अनुरूप होनी चाहिए
III. व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक पर निर्भर होने चाहिए
IV. उद्यमी और व्यापारी वर्ग का दृष्टिकोण बैंक दर के अनुकूल होना चाहिए।

बैंक दर कम करने से साख के विस्तार के फलस्वरूप व्यापारी का प्रोत्साहित होता है और आन्तरिक कीमत स्तर ऊँचा उठ जाता है।

बैंक दर में वृद्धि से बाजार दर बढ़ जाती है ब्याज अधिक मिलने के कारण विदेषी बैकों से तरल पूंजी ऊंची ब्याज दर पर लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से देश में आयात होने लगते हैं। और विलोम:

इसके अलावा बढ़ी बैंक दर के कारण विदेषी पूंजी को अधिक ब्याज मिलने के फलस्वरूप इसका जो आगमन बढ़ जाता है उससे देश की भुगतान शेष सु धार जाता है। बैंक दर के गिर जाने से विपरीत स्थिति दृष्टिगत होती है।

बैंक दर की सीमाएं (Limitation of Bank Rate)- निम्नलिखित परिस्थितियों के कारण बैंक दर असफल हो जाती हैं -

I. साख या मुद्रा स्फीति - बैंक दर तब प्रभावित हो जाती है जब देश में लाभ में निरन्तर वृद्धि हो रही हो या फिर मन्दीकाल में कम ब्याज दर पर भी ऋणों की मांग को नहीं बढ़ाया जा सकता।
II. बैंक में परिवर्तन का तत्कालीन प्रभाव बाजार दर पर पडना चाहिए और मुद्रा बाजार भी संगठित होनी चाहिए नही तो निर्धारित उद्देश्य सफल नहीं हो पाता।
III. लोचपूर्ण अर्थव्यवस्था के होने से ही बैंक दर में परिवर्तन का प्रभाव कीमत स्तर , रोजगार, उत्पादन पर वांछित दिषा में हो सकेगा।
IV. पूंजी के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह पर किसी प्रकार का नियन्त्रण होने से बैंक दर में होने वाला परिवर्तन अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल नहीं हो पाता।
V. व्यापारिक बैकों को केन्द्रीय बैकों पर अंतिम ऋणदाता के रूप में निर्भर रहना आवश्यक है।
VI. एक विकसित बिल बाजार के होने पर ही बैंक दर में परिवर्तन सफल होगा।
VII. बैंक दर की नीति का महत्व वहाँ कम हो जाता है जहाँ अधिकांष निवेष सार्वजनिक क्षेत्र में किया जाता है।

VIII. बैंक दर में परिवर्तन के परिणामस्वरूप ब्याज दरों तथा मुद्रा पूर्ति को एक साथ निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

डी कॉक के शब्दों में *"यदि वर्तमान काल की परिस्थितियां तथा नीतियां स्वतन्त्र कटौती दर की रीति के लिये अवसर नहीं देती हैं तथापि इस विष्वास का काफी दृढ़ आधार है कि वैधानिक कटौती दर की अब भी साख नियंत्रण की अन्य विधियों के साथ उपयोगी कार्य करना है।"*

2. खुले बाजार की क्रियाएं (Open Market Operations)-

डी कॉक के अनुसार "विस्तृत अर्थ में खुले बाजार की क्रियाओं का अर्थ केन्द्रीय बैंक द्वारा बाजार में किसी भी प्रकार के बिलों अथवा प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय करना है। किन्तु संकुचित अर्थ में खुले बाजार की क्रियाओं का आशय केन्द्रीय बैंक द्वारा केवल सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय से होता है।

खुले बाजार की क्रियाओं के दो प्रमुख उद्देश्य हैं:-

(1) व्यापारिक बैंकों की आरक्षितयों को प्रभावित करना ताकि उनकी साख निर्माण की शक्ति पर नियंत्रण रखा जा सके।

(2) ब्याज की बाजार दरों को प्रभावित करना ताकि व्यापारिक बैंक साख पर नियन्त्रण रखा जा सके।

कार्य प्रणाली - इन क्रियाओं की कार्य प्रणाली इस प्रकार से है-

जब साख के विस्तार में तेजी हो रही होती है, तब केन्द्रीय बैंक उसे रोकने हेतु वह सरकारी प्रतिभूतियों को बेचने लगता है। यह प्रतिभूतियों व्यापारिक बैंक खरीद लेते हैं और रकम केन्द्रीय बैं को चुकानी पड़ती है। इस प्रकार व्यापारिक बैकों के नकद कोष केन्द्रीय बैंक के पास पहुँच जाते हैं। नकद कोषों के कम होने से व्यापारिक बैंक की उधार देने की शक्ति कम हो जाती है।

इसके विपरीत केन्द्रीय बैंक देश में साख विस्तार बढ़ाने के लिए बाजार में सरकारी प्रतिभूतियाँ विदेशी विनिमय आदि खरीदना प्रारम्भ कर देता है जिसके फलस्वरूप मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है और बैकों में जमा राशि भी बढ़ जाती है। व्यापारिक बैकों की साख निर्माण की शक्ति में वृद्धि हो जाती है।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि साख में वृद्धि करने के लिये केन्द्रीय बैंक सरकारी प्रतिभूतियाँ खरीदता है और उसमें कमी करने हेतु प्रतिभूतियों को बेचता है। इस प्रकार प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय से व्यापारिक बैकों के नकद कोषों में परिवर्तन होता है जिससे उनके साख निर्माण की शक्ति में कमी या वृद्धि होने लगती है।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण - मान लीजिए अर्थव्यवस्था में स्फीति की द शा को नियन्त्रित करने हेतु केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैकों का साख निर्माण की शक्ति को रोकना चाहता है। इस उद्देश्य से यदि वह मुद्रा बाजार में 5 करोड़ रुपये की सरकारी प्रतिभूतियां बेचता है तो केन्द्रीय बैंक को व्यापारिक बैकों के नाम उसी राषि का चेक मुद्रा बाजार द्वारा दिया जाता है। इनमें जनता के खाते होते हैं। केन्द्रीय बैंक अपने पास उनके हिसाब से यह राशि कम कर देता है। यदि व्यापारिक बैंक भी केन्द्रीय बैंक से प्रतिभूतियां खरीदता है तो यह नियम उन पर भी लागू होता है। इससे व्यापारिक बैकों के पास वास्तविक नगदी अनुपात 5 करोड़ रूपये तक कम हो जाता है। फलस्वरूप बैकों को उधार दी गयी राशि घटानी पड़ती है।

इसके विपरीत जब मंदी का दौर होता है तो केन्द्रीय बैंक विस्तारात्मक नीति अपनाता है। वह प्रतिभूतियां खरीदता है और विक्रेताओं को अपने नाम का चेक देता है। जिसे व्यापारिक बैकों में जमा कर दिया जाता है और इन बैकों के रिजर्व बढ़ जाते हैं। ये नकदी रिजर्व होते हैं।

यह क्रियाएं मुद्रा की पूर्ति परिवर्तन लाती हैं जिससे ब्याज की बाजार दर भी प्रभावित होती है। केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रतिभूतियां बेचने पर मुद्रा पूर्ति घटती है और बाजार दरे ऊँची हो जाती हैं उसी प्रकार प्रतिभूतियों को खरीदने पर मुद्रा पूर्ति बढ़ती है और बाजार दरें नीची हो जाती हैं।

दशाएं- खुली बाजार क्रियाएं निम्न दषाओं में अपनायी जाती हैं-

- बैंक दर नीति को सफल बनाने के लिए।
- पूंजी का निर्यात रोकने के लिए।
- सरकारी प्रतिभूतियों के मूल्य को ऊँचा रखने के लिए।
- स्वर्ण के आयात निर्यात प्रभावों को समाप्त करने के लिए।
- लोगों का बैंक पर विष्वास बनाये रखने के लिए।

खुली बाजार प्रक्रिया को सफल बनाने हेतु आवश्यक तत्व-

- **विकसित मुद्रा बाजार** -जिससे कि प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय में कोई कठिनाई न हो।
- **स्कन्ध विनिमय बाजार** - अच्छे स्टॉक एक्सचेंज होने से सभी प्रकार की सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय में आसानी होती है।
- **प्रतिभूतियां रखने की आदत** - व्यापारिक बैकों के लिये सरकारी प्रतिभूतियां रखना अनिवार्य होना चाहिए जिससे उसका समय अनुसार क्रय-विक्रय किया जा सके।
- **मूल्यों में स्थायित्व** - सरकारी प्रतिभूतियों में बहुत विशेष कमी या वृद्धि न हो जिससे उसके क्रय-विक्रय में रूकावट पैदा हो जाये।

सीमाएं-

- अर्द्धविकसित एवं अल्पविकसित देशों में यह क्रियाएं पूर्ण विकसित न होने के कारण सफल नहीं पाती।
- ऐसे देशों में मुद्रा बाजार कम विकसित होते हैं।
- बैकों को सरकारी प्रतिभूतियां रखने की विशेष आदत नहीं होती।
- मूल्यों में अधिक उतार-चढ़ाव भी प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय को सीमित करते हैं।
- देश की असाधारण राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियां इन क्रियाओं को सीमित करती हैं।

3. परिवर्तनशील कोषानुपात (Variable Reserve Ratio)-

इसे साख नियन्त्रण के सुझाव के रूप में सबसे पहले केन्ज ने अपनी पुस्तक **'Treatise on Money(1930)'** में दिया था और इसे 1935 में अमरीका के **Federal Reserve System** ने अपनाया था।

बै कों का बैंक होने के नाते केन्द्रीय बैंक के पास व्यापारिक बैंकों को एक निश्चित प्रतिशत अनुपात केन्द्रीय बैंकों के पास नकद कोष के रूप में जमा रखना होता है। इस अनुपात में परिवर्तन करके केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैकों की साख निर्माण को शक्ति को नियन्त्रित करती है। अनुपात में वृद्धि के प्रभाव से केन्द्रीय बैंक के पास अधिक राषि केन्द्रीय बैंक के पास रखनी होती है जिससे कि व्यापारिक बैकों के पास अतिरिक्त रिजर्व बढ़ पाता है और अधिक साख का निर्माण कर सकते हैं।

भारत में सभी अनुसूचित (Scheduled) बैकों को अपनी कुल जमाओं का कम से कम 4 प्रतिशत रिजर्व बैंक में जमा रखना पड़ता है। इस प्रतिशत में वृद्धि करने पर रिजर्व बैंक के पास रखे रिजर्व बढ़ जाते हैं और व्यापारिक बैकों की साख निर्माण की शक्ति प्रभावित होती है। अब उनके अतिरिक्त रिजर्व कम हो जाने के कारण वे अपेक्षाकृत कम उधार दे सकते हैं। इसे जमा गुणक फार्मूले (Deposit Multiplier) की सहायता से भी निकाल सकते हैं।

व्यापारिक बैंक के पास कुल जमा = 200 करोड़ रूपये

आवश्यक रिजर्व अनुपात = 10 प्रतिशत

केन्द्रीय बैंक के पास रखे गये रिजर्व = 200×10/100 = 20 करोड़

अतिरिक्त रिजर्व = 180 करोड़ रू.

साख का निर्माण = 180×1/10% [ER/RRr]

= 180×100/10

=1800 करोड़ रू.

(यहाँ ER अतिरिक्त रिजर्व है और RRr आवश्यक रिजर्व अनुपात)
यदि अब केन्द्रीय बैंक इस अनुपात को बढ़ाकर 20 प्रतिशत कर देता है तो व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण की शक्ति बढ़कर 3800 करोड़ रू. हो जायेगी।

सीमाएं (Limitations)-

- व्यापारिक के पास नकद कोषों की अधिकता जिससे उनकी साख निर्माण की शक्ति में कमी नहीं आती।
- यदि व्यापारिक बैकों के पास तरल विनियोग पर्याप्त मात्रा में है तो केन्द्रीय बैंक द्वारा अधिक रकम मांगे जान पर वह अपनी कुछ प्रतिभूतियों बेच देगा और इसके उधार देने की शक्ति अप्रभावित रहेगी।

4. वैधानिक तरल कोषानुपात (Statutory Liquidity Ratio)-

व्यापारिक बैंक अपनी सम्पत्ति का कुछ अं श तरल रूप में रखते हैं। कई देशों में यह वैधानिक रूप से निर्धारित किया जाता है जैसे भारत में व्यापारिक बैंकों को अपनी सम्पत्ति का कम से कम 30 प्रतिशत तरल भाग (नकद, बिल, अन्य बैकों में जमा याचना रा शि सरकारी प्रतिभूतियों के रूप में) रखना अनिवार्य है। आवश्यकतानुसार इससे परिवर्तन भी किया जा सकता है। इस अनुपात में वृद्धि करने पर बैकों की उधा र देने की क्षमता कम हो जाती है और विलोमषः।

11.5.2 गुणात्मक विधियां (Qualitative Methods)

जहाँ एक ओर परिमाणात्मक विधियों का उद्देश्य साख की मात्रा तथा कीमत को नियन्त्रित करना होता है वहीं दूसरी ओर साख के प्रयोग को नियंत्रित करने के लिये गुणात्मक विधियों का प्रयोग किया जाता है। गुणात्मक विधियां साख के वास्तविक व्यवहार से सम्बन्ध रखती हैं -

1- चयनात्मक साख नियन्त्रण (Selective credit control)-

I. भिन्न कटौती दरें
II. नकद कोषों में रियायत
III. आयात पूर्व जमा
IV. ऋणों पर नियंन्त्रण और उनकी जाँँच
V. उपभोक्ता साख का नियमन
VI. सीमान्तर में वृद्धि

I. **भिन्न कटौती दरे (Different Deduction Rates)-** केन्द्रीय बैंक विभिन्न प्रकार के बिलों कि लिए भिन्न-भिन्न कटौती दरें लागू करता है। यह इसलि ए किया जाता है कि कुछ क्षेत्रों में ऋण की मात्रा को नियन्त्रित किया जा सके। यदि कुछ क्षेत्रों को प्रोत्साहन देना होता है जैसे निर्यात या कृषि क्षेत्र का , वो केन्द्रीय बैंक निर्यात एवं कृषि बिलों की कटौती दर कम निर्धारित करता है और व्यापार एवं उद्योगों को कठिन शर्तों पर तथा महंगी साख उपलब्ध कराती है जिससे उनको सीमित ऋण मिल सके।

II. **नकद कोषों में रियायत (Concession in Cash Reserves)-** केन्द्रीय बैंक कभी कभी व्यापारिक बैकों को उसके पास रखे गये नकद कोषों में रियायत दे देती हैं। यह रियायत वि शेष उद्योगों को प्रोत्साहन हेतु दी जाती है। जैसे यदि इस्पात उद्योग को ऋण की जितनी रकम दी जाय उस रकम को केन्द्रीय बैंक में जमा की तरह मान लिया जायेगा। इस तरह व्यापारिक बैंक को अपने दिये गये ऋण पर ब्याज मिलने लगता है।

III. **आयात पूर्व जमा (Pre Import Deposits)-** आयातों को निरूत्साहित करने हेतु केन्द्रीय बैंक कुछ ऐसे नियम बनाती है जिससे कि आयातकर्ता को आयात लाइसेंस का प्रार्थना पत्र मिलते समय आयात मूल्य का एक हिस्सा केन्द्रीय बैंक अथवा किसी अन्य अधिकृत बैंक के पास जमा करें। इस जमा पर उसे ब्याज भी नहीं मिलता।

IV. **ऋणों पर नियन्त्रण एवं उनकी जॉच (Control and Monitoring of Loans)-** केन्द्रीय बैंक को यदि व्यापारिक बैंकों को कुछ विशेष क्षेत्रों के लिये ऋण सीमित करना हो तो वह निश्चित राशि से अधिक ऋण देने पर रोक लगा दी जाती है। कई बाद तो नयी कम्पनियों के शेयर खरीदने पर भी व्यापारिक बैंक ऋण नहीं देती दे सकती जिससे कि जनता से ही पूँजी प्राप्त की जा सके।

V. **उपभोक्ता साख में नियमन (Regulation in Consumer Credit)-** वस्तुओं की मांग को नियन्त्रित करने के लिए केन्द्रीय बैंक उपभोक्ता साख का भी नियमन करती है। जैसे द्वितीय युद्धकाल में सभी यूरोपीय देशों पर लगाये गये थे। उपभोक्ता ऋणों का भुगतान शीघ्र कर सके इस कारण किस्त साख की अधिकतम भुगतान अवधि निश्चित कर दी जाती है। इसका उद्देश्य उपभोक्ताओं पर माल खरीदार विक्रेताओं पर माल बेचने तथा बैंकों द्वारा ऋण देने पर प्रतिबन्ध लगाना है। इससे साख के प्रसार पर रोक लगाई जा सकती है। यदि उपभोक्ता द्वारा मांग को बढ़ाना हो तो कम दर पर ऋण को उपलब्ध कराना, किस्तों पर कम ब्याज दरे लगाना, भुगतान अवधि सहज कर देना जैसे नियमों को लागू किया जाता है।

VI. **सीमान्तर में वृद्धि (Marginal Increase)-** केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों को यह आदेश जारी कर सकता है कि वे अनाज, सीमेन्ट या अन्य वस्तुओं की जमानत पर दिये जाने वाले ऋणों पर पहले से ही अधिक सीमान्तर रखते थे। जैसे 120 रूपये का सामान जमानत में रखने पर 100 रूपये का सामान जमानत में रखने पर 100 रूपये का ऋण वही अब केन्द्रीय बैंक उसे बढ़ाकर 30 या 40 प्रतिशत कर सकता है।

2- साख की राषनिंग (Credit Rationing)-

यह साख को नियन्त्रित करने का एक महत्वपूर्ण तरीका है। जब केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंक की साख की मांग को पूरी तरह से पूर्ण नहीं कर पाता है तो वह साख की रा शनिंग करता है। साख निर्माण की अधिकतम सीमा निश्चित करके विभिन्न बैंको के लिये कोटा निधार्रित कर दिया जाता है। चार प्रकार से केन्द्रीय बैंक साख की राशनिंग कर सकता है-

- किसी बैंक की बिलो को पुनः भुनाने की सुविधा पूर्ण रूप से समाप्त करके ।
- किसी बैंक की बिलों को पुनः भुनाने की सुविधा सीमित करके।
- कुछ बैंकों की ऋण प्राप्ति की सीमाएं निर्धारित करके।
- विभिन्न बैकों के लिये एवं विभिन्न कार्यों के लिये साख के अभ्यंश निर्धारित करके।

बेजमैन ने लिखा है कि *"अधिक पिछड़ी आर्थिक स्थितियों में साख का कोटा निर्धारित कर देना ही केवल एक ऐसी निर्णायक विधि है जो केन्द्रीय बैंक द्वारा व्यवसाय की ओर से अधिक साख की मांग को रोकने के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है।"*

3- नैतिक दबाव (Moral Suasion)-

केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों पर नैतिक दबाव डालकर भी साख का गुणात्मक नियन्त्रण कर सकती है। यहा पर केन्द्रीय बैंक मात्र परामर्श सुझाव एवं सलाह देकर व्यापारिक बैंक को साख का नियन्त्रण करने को कहती है। यह सुझाव व्यापारिक बैंकों के सम्मेल नों पर अधिकारियों के लाखों, गर्वनर की चिट्ठियों द्वारा भी दिया जा सकता है। बैकों को यह सुझाव अरूचिकर नहीं लगते और और दोनो में सद्भावना बनी रहती है। बैंक अपना सहयोग देते हैं परन्तु ऐसा न करने पर आदेश भी दिया जा सकता है।

4- प्रचार (Publicity)-

केन्द्रीय बैंक अपनी साख एवं मौद्रिक नीति का प्रचार करके भी साख पर नियन्त्रण रख सकते हैं। इन नीतियों के आधार पर व्यापारिक बैंक अपनी साख नीति में परिवर्तन करते हैं। विकसित देशों में पत्र-पत्रिकाओं , भाषण, गोष्ठियों के माध्यम से प्रचार तुरंत प्रभावी हो जाता है।

5- प्रत्यक्ष कार्यवाही (Direct Action) -

यदि व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैक की सलाह मानने से इन्कार कर देता है या टालता रहता है तो केन्द्रीय बैंक प्रत्यक्ष कार्यवाही भी कर सकता है वह व्यापारिक बैंकों को ऋण देने पर रोक लगा सकता है या फिर उसके विनिमय पत्रों की कटौती से इंकार कर सकता है या ब्याज की दर बढ़ा सकता है।

11.5.3 साख नियंत्रण की कठिनाइयां (Difficulties in Credit Control)

1- मौद्रिक संस्थाओं पर अपूर्ण नियन्त्रण (Incomplete control over monetary institution)- कई ऐसी मौद्रिक संस्थाएं जैसे- देशी बैंकर, वित्तीय एवं गैर वित्तीय संस्थाएं जो ऋण सम्बन्धी लेन-देन का कार्य करती हैं, केन्द्रीय बैंक के नियन्त्रण से बाहर हैं जिस कारण पूर्ण नियन्त्रण का अभाव रहता है और साख नियन्त्रण का उद्देश्य सफल नहीं हो पाता है।

2- असंगठित बैकिंग व्यवस्था (Unorganised Banking System)- बैकिंग विकास पर्याप्त न होने के कारण साख नियन्त्रण में कठिनाई उत्पन्न होती है। बैंकों में पारस्परिक सहयोग या फिर केन्द्रीय बैंक को सम्बद्ध बैकों का पर्याप्त सहयोग न मिलने से भी ये नीति विफल हो जाती है।

3- सम्बद्ध बैकों का सहयोग (Cooperation of Affiliate Bank)- अपने निजी हितों की पूर्ति हेतु या फिर अधिक लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से बैंक केन्द्रीय बैंक के नियमों का उल्लंघन कर देते हैं। इससे केन्द्रीय बैंक को व्यापारिक बैंकों का वह परस्पर सहयोग नहीं मिल पाता जिस कारण साख नियन्त्रण विफल हो जाता है।

4- साख की विभिन्न किस्में (Different type of Credit)- कई किस्म की वाणिज्यिक साख होती है जैसे- बैक साख, किताबी साख, वाणिज्यिक साख आदि। केन्द्रीय बैंक का नियन्त्रण मात्र बैंक साख पर ही होता है जिस कारण साख पर नियन्त्रण पूर्ण रूप से नहीं हो पाता।

5- मुद्रा एवं पूंजी बाजार की स्थिति (State of Money and Capital Market)- कुछ देशों में मुद्रा एवं पूंजी बाजार पर केन्द्रीय बैंक की नीतियों का प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि केन्द्रीय बैंक को ही मुद्रा बाजार से प्रभावित होकर उसका अनुसरण करना पड़ता है।

6- परम्पराओं का अभाव (Lack of Traditions)- जहाँ ऐसी परम्परा है कि केन्द्रीय बैंक के मात्र संकेत से ही व्यापारिक बैंक तत्कालीन प्रभावी हो जाते हैं वहां तो साख नियन्त्रण सहज कार्य शील हो जाती है पर जहाँ यह परम्परा नहीं है, वहाँ कठिनाइयां आने लगती है।

7- साख के अंतिम उपयोग पर नियन्त्रण में कठिनाई (Difficulty in Controlling End use of Credit) - केन्द्रीय बैंक चाहे भी तो सट्टा कार्यों के लिये ऋण पर रोक नहीं लगा पाती। क्योंकि बैकों के ग्राहक व्यावसायिक उद्देश्य से ऋण लेकर उसे सट्टा कार्य में लगा सकते है। ऐसे में केन्द्रीय बैंक नियन्त्रण कैसे लगा पायेगा और साख नियन्त्रण का उद्देश्य व्यर्थ हो जायेगा।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि यदि केन्द्रीय बैंक को साख नियन्त्रण का पर्याप्त अधिकार प्राप्त हों और बैंकिंग व्यवस्था संगठित एवं विकसित हो तो उसके द्वारा किये गये प्रयोग एवं नीति पालन से निश्चित रूप से कुशलतापूर्वक उद्देश्य की पूर्ति हो सकेगी। इसके लिए पूंजी बाजार एवं मुद्रा बाजार का सहयोग भी आवश्यक है।

11.6 सारांश (Summary)

केन्द्रीय बैंक के विभिन्न कार्यो में साख नियन्त्रण का कार्य व्यापारिक बैंक की साख निर्माण शक्ति को नियन्त्रित करता है। इसके माध्यम से केन्द्रीय बैंक देश की अर्थव्यवस्था को स्थिर करने का प्रयास करता है। आज की आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत दोनों विनिमय स्थिरता एवं मूल्य स्थिरता ही आवश्यक है और यह प्रयास किया जाता है कि साख नियन्त्रण के दोनों उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके। साथ ही आय एवं रोजगार को उच्च स्तर पर स्थिरता प्राप्त करना भी हो गया। साख नियन्त्रण का उद्देश्य महज स्थिरता प्रदान करने के लिए वरन् आर्थिक

विकास में सहायता करना भी होता है। साख का नियन्त्रण इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे कि अर्थव्यवस्था में उचित विकास की दशाएं उत्पन्न हो सके।

साख नियन्त्रण के लिए केन्द्रीय बैंक दो रीतियां अपनाता है। ये रीति परिमाणात्मक तथा गुणात्मक होती हैं। जहाँ एक और परिमाणात्मक अथवा मात्रात्मक विधियों का उद्देश्य साख की लागतें तथा मात्रा को नियन्त्रित किया जाना है वहीं गुणात्मक विधियां साख के प्रयोग और दि शा को नियन्त्रित करती हैं। परिमाणात्मक विधि के अन्तर्गत बैंक दर , खुले बाजार की क्रियाएं , परिवर्तनषील कोषानुपात , एवं तरल कोषानुपात आते हैं तो दूसरी ओर गुणात्मक विधि के अन्तर्गत चयनात्मक साख नियन्त्रक , खुले बाजार की क्रियाएं, साख की राशनिंग, नैतिक दबाव, प्रचार एवं प्रत्यक्ष कार्यवाही है।

साख नियन्त्रण में कई कठिनाइयां आती हैं। बैकिंग विकास पर्याप्त न होने के कारण साख नियन्त्रण में कठिनाई उत्पन्न होती है। केन्द्रीय बैंक को व्यापारिक बैंकों का वह परस्पर सहयोग नहीं मिल पाता जिस कारण साख नियन्त्रण विफल हो जाता है। उसका नियन्त्रण मात्र बैंक साख पर ही होता है जिस कारण साख पर नियन्त्रण पूर्ण रूप से नहीं हो पाता। केन्द्रीय बैंक चाहे भी तो सट्टा कार्यों के लिये ऋण पर रोक नहीं लगा पाती। कुशलतापूर्वक उद्देश्य की पूर्ति के लिये पूंजी बाजार एवं मुद्रा बाजार का सहयोग भी आवश्यक है।

11.7 शब्दावली (Glossary)

- **आन्तरिक मूल्य स्तर (Internal Price Level)-**
- **परिमाणात्मक (Quantitative)-**
- **मौद्रिक प्रबन्ध (Monetary Management)-**
- **गुणात्मक नियन्त्रण (Qualitative Control)-**

11.8 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Question)

1. बैंक दर और बाजार दर का .... सम्बन्ध है।
2. खुली बाजार प्रचालन में केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रतिभूतियां बेचने पर साख का .... होता है।
3. साख की राषनिंग परिणात्मक/गुणात्मक साख नियन्त्रण की विधि है।
4. खुले बाजार की प्रक्रिया का सफलता के लिये स्कन्ध विनिमय बाजार की आवश्यकता नहीं पड़ती (सही/गलत)।
5. तरल कोषानुपात व्यापारिक बैंकों द्वारा कुल सम्पत्ति का एक भाग तरल रूप में रखना (अनिवार्य/वैकल्पिक) है।

उत्तर- 1- सीधा 2- संकुचन 3- गुणात्मक 4- गलत 5- अनिवार्य

11.9 संदर्भ सहित ग्रन्थ (Bibliography)

- सिंघाई, जी. सी., जे पी मिश्रा एवं के. पुल गुप्ता: अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा।
- सेठी, टी. टी.: मुद्रा बैकिंग एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा।
- झिंगन, एम. एल. समष्टि अर्थषास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

11.10 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)

- Mithani, D.M.(2008)International Economics, Himalaya Publishing House.

- Mithani, D. M. (1998), Modern Public Finance, Himalaya Publishing House. Mumbai.
- Musgrave, R. A. and P. B. Musgrave (1976), Public Finance in Theory and Practice McGraw Hill, Kogakusha, Tokyo.
- Agrawal, Deepak (2009), Money Banking, Public Finance & International Economics, Himalaya Publishing House.

11.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1- साख नियन्त्रण से क्या अभिप्राय है ? केन्द्रीय बैंक द्वारा अपनायी गयी साख नियन्त्रण की प्रमुख विधियों को समझाइये।

2- साख नियन्त्रण की आवश्यकताओं का विवेचन कीजिये। तथा यह बताइ ए कि साख को नियन्त्रित करने में केन्द्रीय बैंक किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

3- केन्द्रीय बैंक की परिमाणात्मक तथा गुणात्मक साख नियन्त्रण रीतियों का वर्णन कीजिय। इनमें कौन सी रीति सर्वश्रेष्ठ है?

इकाई-12 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रस्तावना (Introduction to International Economics)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)
12.2 उद्देश्य (Objectives)
12.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ (Meaning of International Trade)
12.4 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार (Basis of International Trade)
12.5 सारांश (Summary)
12.6 शब्दावली (Glossary)
12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Practice Question Answer)
12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
12.9 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)
12.10 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

मुद्रा बैंकिग एवं अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खण्ड चार अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र से सम्बन्धित यह बारहवीं इकाई है। अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , अर्थशास्त्र की ही विशेष स्थिति है। समस्त आंतरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक क्रियाओं का आधार वस्तुओं व सेवाओं का विनिमय या क्रय-विक्रय है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सम्बन्ध राष्ट्रों के मध्य समस्त आर्थिक सौदों से है।

प्रस्तुत इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधार और अर्थ के बारे में विस्तार से बताया गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की सामान्य जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

12.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अर्थ एवं प्रकृति को समझ सकेगें।
- ✓ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार में अन्तर को जान सकेगें।

12.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ (Meaning of International Trade)

व्यापार का अर्थ है वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय या क्रय-विक्रय। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार , व्यापार का ही एक विशेष स्वरूप है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ है राष्ट्रों के मध्य वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय या क्रय-विक्रय से है। स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ उस वाणिज्यिक नीति से है जो वस्तुओं तथा सेवाओं के घरेलु तथा विदेशी विनिमय के मध्य विभेद नहीं करती है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एक ऐसी क्रियाविधि या तरीका है जोकि वस्तुओं सेवाओं तथा संसाधनों के माध्यम से विभिन्न देशों को आपस में जोड़ता है। आर्थिक संवृद्धि मुख्यता श्रम विभाजन और विशिष्टिकरण पर निर्भर करता है जबकि श्रम विभाजन और विशिष्टिकरण बाजार के आकार पर निर्भर करता है। बाजार का आकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से बढ़ता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में एक अर्थव्यवस्था के स्थान पर एक से अधिक अर्थव्यवस्थाओं का अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन कीमत व रोजगार का स्तर तथा आर्थिक विकास को निर्धारित करने वाले घटकों को ध्यान में रखकर किया जाता है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र वह विज्ञान व कला है जिसमें राष्ट्रों के मध्य आर्थिक सम्बन्धों एवं उनसे उत्पन्न होने वाली आर्थिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है और समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त पूरे विश्व को एक समुदाय के रूप में देखता है जोकि देशों की सीमाओं में भले विभाजित हो परन्तु आय व रहन सहन के स्तर में वृद्धि के समान उद्देश्य से बन्धा है। यह विकास के अन्तर्मुखी रणनीति की अपेक्षा बहिर्मुखी रणनीति की वकालत करता है जोकि अपेक्षाकृत सरल और कम श्रम साध्य तरीका है। **सर डेनिस राबर्टसन** ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को किसी देश के आर्थिक संवृद्धि और विकास का इंजन कहा है।

विभिन्न अर्थशास्त्रियों नें अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र को इस प्रकार से परिभाषित किया है-

प्रो. हैरोड (Harrod) के अनुसार “अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र का सम्बन्ध उन सभी आर्थिक लेन-देन से है जो देश की सीमा से बाहर किये जाते है।“

प्रो. एल्सवर्थ (Ellsworth) के अनुसार “जिस प्रकार अर्थशास्त्र की परिभाषा यह कहकर की जाती है कि अर्थशास्त्र वह है जो अर्थशास्त्री करतें है , उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र का सम्बन्ध भी विभिन्न राष्ट्रों के बीच आर्थिक सम्बन्धों से है।“

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र सामान्य अर्थशास्त्र की वह शाखा है जिसमें विभिन्न राष्ट्रों के बीच व्यापार से उत्पन्न होने वाले आर्थिक सम्बन्धों और उससे सम्बन्धित आर्थिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

12.4 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार (Basis of International Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सामने एक मूलभूत प्रश्न यह रहा है कि दो या दो से अधिक देश आपस में व्यापार क्यों करते हैं? कोई भी देश व्यापार तभी करेगा जब उसे व्यापार से लाभ होगा।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार दो देशों के बीच लागतों या लागत दशाओं में जितना अधिक अंतर होगा उतना ही व्यापार से लाभ होगा , यह लाभ व्यापार में भाग लेने वाले एक या दोनों ही देशों को प्राप्त हो सकता है।

जिन कारणों से विभिन्न व्यक्ति आपस में व्यापार करते हैं उन्ही कारणों से विभिन्न राष्ट्र भी एक दूसरे से व्यापार करते हैं। कोई भी व्यक्ति अपने उपभोग के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन नहीं कर सकता है और यहीं बात राष्ट्रों के संदर्भ में भी लागू होती है। प्रकृति ने पृथ्वी की सतह पर उत्पादन के संसाधनों का वितरण असमान ढंग से किया है। जलवायु दशाओं , खनिज संसाधनों, श्रम तथा पूंजी संसाधनों , प्राकृतिक संसाधन प्रचुरता, तकनीकी क्षमताओं, उद्यमशीलता तथा प्रबंधकीय क्षमताओं और उन सभी चीजों जो कि किसी देश की उत्पादन क्षमता को निर्धारित करती है , में विभिन्न राष्ट्रों की स्थिति भिन्न होती है। उत्पादन संभावनाओं में यह अन्तर ऐसी स्थितियों को जन्म देता है जहाँ कुछ देश अन्य देशों की अपेक्षा कुछ वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन अधिक दक्षतापूर्वक कर सकते हैं और कोई भी देश सभी वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन पूरी दक्षता पूर्वक अर्थात न्यूनतम संभव उत्पादन लागत पर नहीं कर सकता है।

जिस प्रकार व्यक्तियों के बीच श्रम-विभाजन होता है उसी तरह विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के मध्य श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण हो सकता है। एक राष्ट्र उस वस्तु या सेवा के उत्पादन में विशिष्टता हासिल करता है जिसमें कि वह अन्य देशों की अपेक्षा उत्पादन में श्रेष्ठ होता है विनिमय की प्रक्रिया में व्यक्ति या उपभोक्ता जिस प्रकार अपनी संतुष्टि या विनिमय से लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है उसी प्रकार अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में एक राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से कम कीमत पर वस्तुओं तथा सेवाओं की खरीद करके लाभ प्राप्त करता है।

वस्तुतः वस्तुओं तथा सेवाओं के विनिमय से प्राप्त होने वाला लाभ ही अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार है यदि कोई लाभ प्राप्त नहीं होगा तो व्यापार नहीं होगा। व्यापार से लाभ का तात्कालिक कारण वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में विद्यमान अंतर है जो कि पूर्ति तथा माँग की दशाओं में अन्तर के कारण उत्पन्न होता है।

इस प्रकार वस्तु ओं व सेवाओं की कीमतों में अन्तर ,जो कि अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का आधार हैं, निम्नलिखित स्थितियों के कारण उत्पन्न हो सकता है

- **यदि पूर्ति-दशाओं में अन्तर हो**
- **यदि माँग-दशाओं में अन्तर हो**
- **यदि माँग और पूर्ति दोनों की दशाओं में अन्तर हों**

स्पष्ट है कि यदि दो देशों में माँग तथा पूर्ति , दोनों दशाएँ एक समान है, तो उनमें कोई व्यापार सम्भव नहीं है, क्योंकि तब व्यापार से किसी भी देश को लाभ नहीं होगा।

पूर्ति दशा ओं में अंतर बहुत सारे कारणों से पैदा हो सकते हैं, जैसे-आर्थिक संसाधनों की उपलब्धता, इन संसाधनों की दक्षता का स्तर, उत्पादन में प्रस्तुत तकनीकी का स्तर, श्रम की योग्यता, साधन गहनता इत्यादि। वास्तव में पूर्ति-पक्ष राष्ट्रों के बीच साधन-सम्पन्नता तथा उत्पादन-दक्षता में अंतर का बताता है , जो कि वस्तुओं तथा सेवाओं की उत्पादन लागतों और बिक्री कीमतों में व्यक्त होती है।

दो देशों के मध्य पूर्ति दशाएँ या उत्पादन लागत समान होने की स्थिति में भी , माँग दशाओं में अंतर के कारण कीमतों में भिन्नता हो सकती है। माँग में अन्तर मुख्यतः आय के स्तरों तथा रुचि पर निर्भर करता है।

हम उपरोक्त तीनों स्थितियों को चित्र के माध्यम से दर्शा सकते हैं-

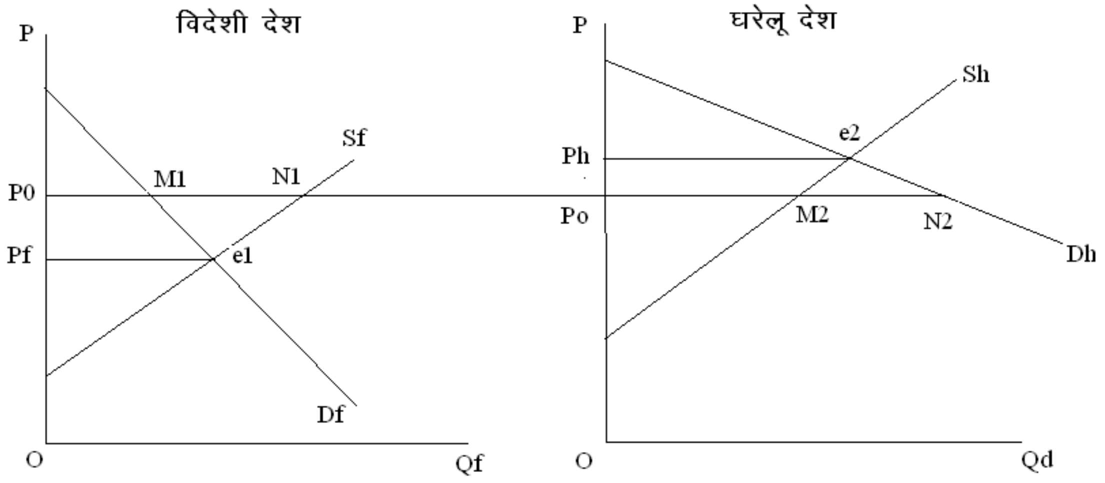

चित्र- जब पूर्ति दशाएँ समान हों, तथा मांग दशाओं में अन्तर हो

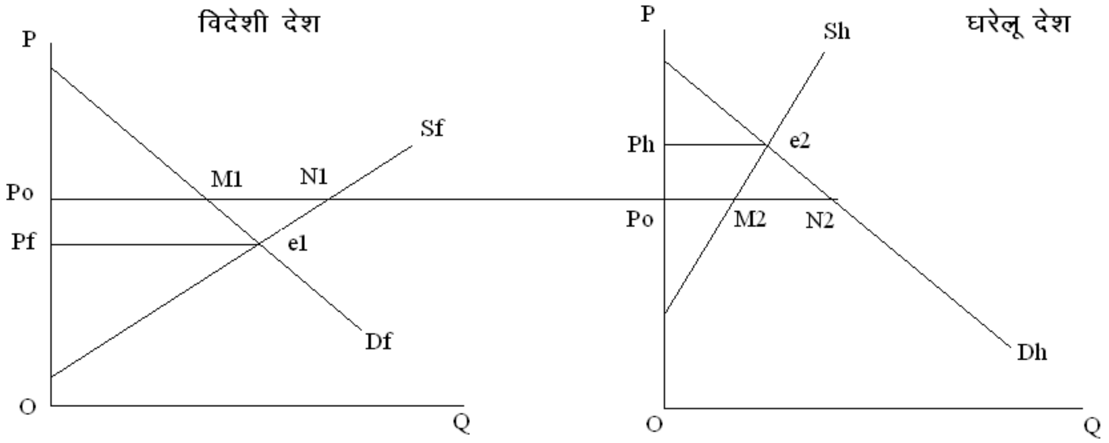

चित्र- जब पूर्ति दशाएँ समान हों, तथा मांग-दशाओं में अन्तर हो

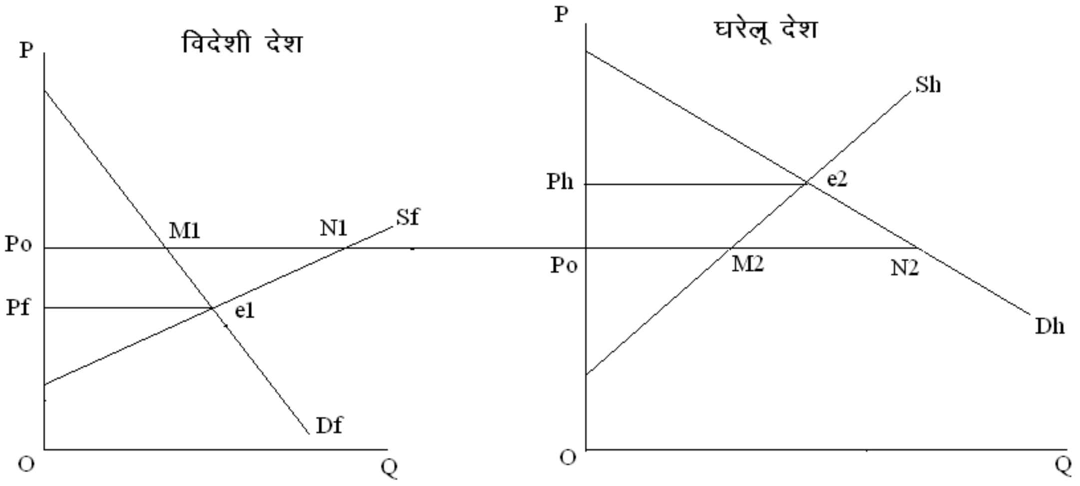

चित्र-जब पूर्ति तथा मांग दशाएँ दोनों भिन्न हों।

उपरोक्त तीनों चित्रों में विदेशी तथा घरेलू देश की , एक दिए हुए वस्तु या उत्पाद के संदर्भ में , माँग तथा पूर्ति की विभिन्न दशाओं को दर्शाया गया है। X-अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा Y अक्ष पर कीमत प्रदर्शित की गयी है। Sf तथा Df क्रमशः विदेशी देश के पूर्ति तथा मांग वक्र को और Sh तथा Dh क्रमशः घरेलू देश के पूर्ति तथा माँग वक्र है। Pf तथा Ph क्रमशः विदेशी तथा घरेलू देश में व्यापार न होने की दशा में कीमतें हैं। P_0 व्यापार शुरु के पश्चात् दोनों देशों की संतुलन कीमत को व्यक्त करता है।

उपरोक्त सभी चित्रों में , विदेशी देश में वस्तु की कीमत (Pf) घरेलू देश की कीमत (Ph) से कम हैं (Pf < Ph) यह अंतर निम्नलिखित कारणों से है-

- चित्र 1 में पूर्ति-दशाएँ भिन्न है। विदेशी पूर्ति वक्र (Sf) घरेलू पूर्ति वक्र (Sh) की अपेक्षा अधिक लोचदार है।
- चित्र 2 में मांग-दशाओं में भिन्नता है। घरेलू मांग वक्र (Dh) विदेशी मांग वक्र (Df) की अपेक्षा अधिक लोचदार है।
- चित्र 3 में पूर्ति तथा मांग-दशाएँ दोनों भिन्न है।

चूंकि घरेलू देश में वस्तु की कीमत विदेशी देश की अपेक्षा अधिक है , इसलिए विदेशी देश से घरेलू देश को वस्तु का आयात होगा। इस प्रकार कीमत अंतर के कारण वस्तु का व्यापार होगा जिसमें विदेशी देश निर्यातक तथा घरेलू देश आयातक होगा। वस्तु का विदेशी देश से निर्यात तथा घरेलू देश से आयात तब तक जारी रहेगा जब तक कीमतों में अंतर पूरी तरह सामाप्त नहीं हो जाता है और घरेलू देश का आयात विदेशी देश के निर्यात की मात्रा के बराबर और स्थिर नहीं हो जाता। चित्र में संतुलन की स्थिति में कीमत P_0 है जिस पर आयात और निर्यात की मात्राएँ स्थिर तथा एक दूसरे के बराबर है। P_0 कीमत पर, कीमत अंतर समाप्त हो जाने के बाद आगे व्यापार के लिए कोई प्रेरणा नहीं होगी।

चित्र 4 में दोनों देशों में समान पूर्ति और मांग की स्थितियाँ दर्शायी गयी है। चूँकि कीमतों में कोई अंतर नहीं है ($P_s = P_h$) इसलिए व्यापार संभव नहीं है।

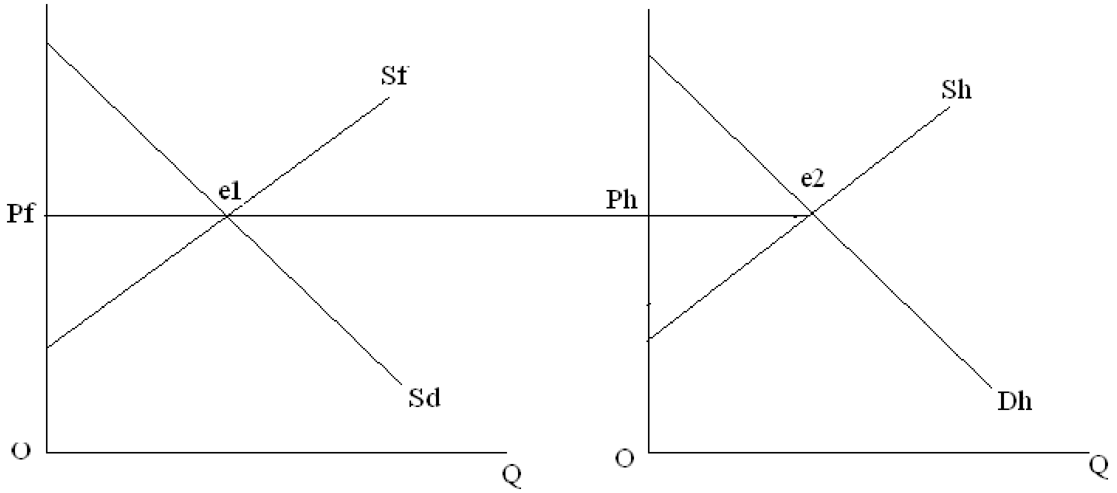

चित्र- जब पूर्ति व मांग दशाएँ दोनों समान हैं।

इस प्रकार जब कीमतों में अन्तर होगा तो व्यापार से दोनों देशों को लाभ होगा और उनके उपभोग तथा कल्याण के स्तर में वृद्धि होगी। दूसरी ओर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार विश्व के राष्ट्रों के समक्ष यह सम्भावनाएं खेल देता है कि वे उन आर्थिक गतिविधियों में विशिष्ठिकरण प्राप्त करें जिसमें वे सर्वाधिक सम्पन्न व दक्ष है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह उप-विभाजन तथा विशिष्टीकरण व्यापार में भाग लेने वाले सभी देशों को लाभ पहुँचाता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वस्तु कीमतों के साथ-साथ कीमतों में भी सामानीकरण लाता है।

12.5 सारांश (Summary)

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वैश्विक अर्थव्यवस्था की आधारशिला है , जो विभिन्न देशों के बीच वस्तुओं , सेवाओं और पूँजी के आदान-प्रदान को संभव बनाता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार राष्ट्रों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के विनिमय की प्रक्रिया है।

प्रो. हैरोड के अनुसार, यह "देश की सीमाओं से बाहर होने वाले सभी आर्थिक लेन-देन" से संबंधित है। यह श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण पर आधारित है, जो उत्पादन दक्षता बढ़ाता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वैश्विक सहयोग और आर्थिक एकीकरण का महत्वपूर्ण माध्यम है। यह न केवल संसाधनों के इष्टतम उपयोग को सुनिश्चित करता है , बल्कि विश्व शांति एवं विकास में भी योगदान देता है। इस इकाई के माध्यम से आपको अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की बुनियादी समझ विकसित करने में सहायता मिलती है।

12.6 शब्दावली (Glossary)

- **विनिमय (Exchange)-** विनिमय एक आर्थिक प्रक्रिया है जिसमें दो पक्ष (व्यक्ति समूह या देश) परस्पर लाभ के लिए वस्तुओं , सेवाओं या संसाधनों का आदान-प्रदान करते हैं। यह किसी मुद्रा (जैसे रुपया, डॉलर) या वस्तु विनिमय (Barter System) के माध्यम से हो सकता है।
- **श्रम विभाजन (Division of Labour)-** श्रम विभाजन उत्पादन प्रक्रिया में विभिन्न कार्यों को छोटे छोटे भागों में बाँटकर अलग-अलग श्रमिकों या समूहों को सौंपने की प्रणाली है। यह अर्थव्यवस्था और उद्योगों में दक्षता बढ़ाने का एक मूलभूत सिद्धांत है।
- **आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth)-** आर्थिक संवृद्धि से तात्पर्य किसी देश या अर्थव्यवस्था में वास्तविक राष्ट्रीय आय या प्रति व्यक्ति आय में दीर्घकालिक वृद्धि से है। यह एक मात्रात्मक अवधारणा है, जो अर्थव्यवस्था के आकार और उत्पादन क्षमता में वृद्धि को दर्शाती है।
- **साधन-सम्पन्नता (Resourcefulness)-** साधन सम्पन्नता किसी देश की आर्थिक क्षमता और व्यापारिक रणनीति को गहराई से प्रभावित करती है। यह अवधारणा बताती है कि देशों को अपने प्रचुर साधनों के आधार पर ही विशेषज्ञता विकसित करनी चाहिए। साधन सम्पन्नता किसी देश की आर्थिक क्षमता और व्यापारिक रणनीति को गहराई से प्रभावित करती है। यह अवधारणा बताती है कि देशों को अपने प्रचुर साधनों के आधार पर ही विशेषज्ञता विकसित करनी चाहिए।
- **उत्पादन-दक्षता (Production Efficiency)-** उत्पादन-दक्षता एक आर्थिक अवधारणा है जो यह दर्शाती है कि कोई अर्थव्यवस्था या फर्म न्यूनतम संभव लागत पर अधिकतम संभव उत्पादन कैसे प्राप्त कर सकती है। यह उत्पादन प्रक्रिया में संसाधनों के इष्टतम उपयोग को दर्शाता है।

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Practice Question Answer)

1. उत्पादन-दक्षता का क्या अर्थ है?
   a) अधिकतम लागत पर न्यूनतम उत्पादन प्राप्त करना
   b) न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त करना
   c) केवल उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद बनाना
   d) श्रमिकों की संख्या बढ़ाना
2. निम्नलिखित में से कौन-सा उत्पादन-दक्षता बढ़ाने का तरीका नहीं है?
   a) नई प्रौद्योगिकी अपनाना
   b) कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना

c) उत्पादन लागत बढ़ाना
d) अपशिष्ट प्रबंधन में सुधार करना

3. उत्पादन संभावना सीमा (PPF) के संदर्भ में, उत्पादन-दक्षता कहाँ प्राप्त होती है?
a) उत्पादन संभावना सीमा वक्र के नीचे
b) उत्पादन संभावना सीमा वक्र के ऊपर
c) उत्पादन संभावना सीमा वक्र पर
d) उत्पादन संभावना सीमा वक्र से बाहर

4. तकनीकी दक्षता और आर्थिक दक्षता में क्या अंतर है?
a) तकनीकी दक्षता में लागत कम करना जरूरी नहीं, जबकि आर्थिक दक्षता में जरूरी है
b) दोनों एक ही हैं
c) तकनीकी दक्षता केवल सेवा क्षेत्र में लागू होती है
d) आर्थिक दक्षता का संबंध केवल सरकारी नीतियों से है

5. निम्नलिखित में से कौन-सा कारक उत्पादन-दक्षता को प्रभावित नहीं करता?
a) श्रमिकों का कौशल स्तर
b) प्रबंधन की गुणवत्ता
c) बाजार में उत्पाद की कीमत
d) मशीनों की उत्पादक क्षमता

उत्तर- 1) B 2) C 3) C 4) A 5) C

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- H H. G. Mannur, International Economics, Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics, Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य , अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन , नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र,वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा , अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड , नई दिल्ली,1979.

12.9 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)

- H H. G. Mannur, International Economics, Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics, Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- एस० एन०लाल, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल , आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य , अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन , नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- डॉ. जी. सी. सिंघई एवं डॉ. जे. पी. मिश्रा , अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त , साहित्य भवन पब्लिकेशंस , आगरा, 2010

12.10 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. "अंतर्राष्ट्रीय व्यापार आधुनिक वैश्विक अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। " इस कथन की विवेचना करते हुए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्व एवं चुनौतियों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. "अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में माँग एवं पूर्ति की दशाएँ कीमत निर्धारण को किस प्रकार प्रभावित करती हैं ? विभिन्न परिस्थितियों का उदाहरण सहित विश्लेषण कीजिए।"

इकाई-13 अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (Theories of International Economics)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)
13.2 उद्देश्य (Objectives)
13.3 अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र का प्रतिष्ठित सिद्धान्त (Classical Theories of International Economics)
13.4 अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के प्रतिष्ठित सिद्धांत की मान्यताएं (Assumption of Classical Theory of International Economics)
13.5 अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के प्रतिष्ठित सिद्धांत की कमियां (Drawbacks of Classical Theory of International Economics)
13.6 सारांश (Summary)
13.7 शब्दावली (Glossary)
13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Practice Question Answer)
13.9 संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)
13.10 सहायक ग्रंथ सामग्री (Helpful Study Material)
13.11 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

आधुनिक युग में वैश्वीकरण और अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक एकीकरण के कारण देशों के बीच आर्थिक संबंध निरंतर गहन होते जा रहे हैं। अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र अर्थशास्त्र की वह शाखा है जो विभिन्न देशों के मध्य वस्तुओं , सेवाओं, पूँजी और श्रम के प्रवाह, व्यापार नीतियों, विनिमय दरों तथा आर्थिक सहयोग के सिद्धांतों का अध्ययन करती है। यह विषय न केवल वैश्विक व्यापार के स्वरूप को समझने में सहायक है, बल्कि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक नीतियों के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

इस अध्याय में हम अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के मूल सिद्धांतों , जैसे-निरपेक्ष लाभ एवं तुलनात्मक लाभ मॉडल की भूमिका तथा वर्तमान समय में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से जुड़ी चुनौतियों पर भी चर्चा की करेंगे।

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन आपको वैश्विक अर्थव्यवस्था की बुनियादी समझ प्रदान करेगा तथा उन्हें अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के विश्लेषण के लिए आवश्यक सैद्धांतिक और व्यावहारिक ज्ञान से परिचित कराएगा।

13.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के एडम स्मिथ का निरपेक्ष लाभ सिद्धांत की मुलभूत अवधारणा को समझ सकेंगे।
- ✓ अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के रिकार्डो का तुलनात्मक लागत सिद्धांत से अवगत हो सकेंगे।
- ✓ अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की मान्यताओं को जान सकेंगे।
- ✓ अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की कमियों को जान सकेंगे।

13.3 अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र का प्रतिष्ठित सिद्धान्त (Classical Theories of International Economics)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रतिष्ठित सिद्धान्त की भूमिका- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत का मुलभूत प्रश्न यह है की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार क्यों होता है? या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ क्यों होता है? प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने श्रम को उत्पादन का एक मात्र साधन मानते हुए कहा की विभिन्न देशों के बीच श्रम उत्पादकता में अंतर के कारण ही व्यापार होता है।

प्रतिष्ठित सिद्धांत से पूर्व आधुनिक राष्ट्र राज्य के विकास के दौरान 16वीं तथा 18वीं शताब्दी में वणिकवादी विचारधारा थी । वणिकवाद में कई आधुनिक तत्व थे । जैसे वणिकवादी अत्यधिक राष्ट्रवादी थे , उनके लिए अपने देश का कल्याण सर्वोपरि था, राष्ट्रीय उदेश्यों को प्राप्त करने के लिए वे आर्थिक गतिविधियों के नियमन और आयोजन के पक्ष में थे । वणिकवादियों के लिए एक देश के समृद्ध होने का सबसे महत्वपुर्ण उपाय अधिक से अधिक बहुमूल्य धातुएं विशेष रूप से सोना अर्जित करना है । निर्यात से यदि देश में बहुमूल्य धातुएं या सोना आता है तो उसका वे समर्थन करते हैं परन्तु आयात से सोना देश के बाहर जायेगा । इसलिए वे विनियमित, नियन्त्रित तथा प्रतिबंधित व्यापार नीति के पक्ष में थे।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों में एडम स्मिथ प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने दिखाया की किसी राष्ट्र के धन का सही मापन सोने से नहीं बल्कि उन वस्तुओं और सेवाओं से होता जो देश में उत्पादित होती है । अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **An Enquiry into the Nature Causes of Wealth of Nation (1776)** में उन्होंने वणिकवादी विचारधारा को गलत तथा अतार्किक बताया । उनके अनुसार यदि सरकार विदेशी व्यापार से वणिकवादी नियंत्रणों को हटा दे तो राष्ट्र के उत्पादन यानि धन में तेजी से वृद्धि होगी । स्मिथ वणिकवादियों की इस धारणा का भी खंडन करते हैं की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से एक देश को लाभ दुसरे की कीमत पर होगा । स्मिथ ने दिखाया की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन के द्वारा व्यापार में लगे सभी देशों को लाभ होता है।
स्मिथ और रिकार्डो की विचारधारा के केन्द्र में व्यक्ति है , राष्ट्र तो मात्र उसके नागरिकों का योग है । इसलिए उनके लिए अर्थशास्त्र का सबसे महत्वपूर्ण विषय उपभोक्ता था । मनुष्य मेहनत और उत्पादन उपभोग के लिए

करता है। और कोई भी चीज जो उपभोग को बढ़ा दे या रिकार्डो के शब्दों में 'आनंदों के योग' को बढ़ा दे, उसका समर्थन किया जाना चाहिए । स्मिथ और रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त मुख्यतः इसी बात की व्याख्या करता है की व्यापार से कैसे व्यापार में लगे देशों को लाभ होता है अर्थात देश के लोगों के उपभोग में वृद्धि होती है।

एडम स्मिथ ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत के निर्माण की आधारशिला रखी । परन्तु डेविड रिकार्डो ने एडम स्मिथ के सिद्धांत को और स्पष्ट किया , इसका विस्तार किया तथा इसे वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत को रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत तुलनात्मक लागत सिद्धांत या तुलनात्मक लाभ सिद्धांत द्वारा जाना जाता है । बाद में **जान स्टुअर्ट मिल** ने तुलनात्मक लागत सिद्धांत में मांग पक्ष को समिलित कर **प्रतिपूरक मांग** का सिद्धांत दिया।

एडम स्मिथ का निरपेक्ष लाभ सिद्धांत

एडम स्मिथ ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का निरपेक्ष लाभ सिद्धांत प्रस्तुत किया । एडम स्मिथ ने लागतों में निरपेक्ष अंतर के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत प्रस्तुत किया । यदि एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ तथा दुसरे वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष हानि हो तो फिर व्यापार होगा । प्रत्येक देश उस वस्तु का निर्यात करेगा जिसके उत्पादन मे निरपेक्ष लागत लाभ होगा और उस वस्तु का आयात करेगा जिसके उत्पादन मे निरपेक्ष लागत हानि होगी। इस तरह स्वतंत्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बाज़ार की सीमा में विस्तार करके श्रम के अत्यधिक विशिष्टिकरण को संभव बनता है, फलस्वरूप श्रम के सीमा पार क्षेत्रीय विभाजन से प्राप्त लाभों को बढाता है।

एडम स्मिथ के अनुसार अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से बाजार का विस्ता र होता है जिससे श्रम विभाजन की संभावना बढ़ जाती है। अर्न्तराष्ट्रीय श्रम-विभाजन और उसके फलस्वरूप होने वाले विशिष्टीकरण के कारण उत्पादन और उपभोग में हुई वृद्धि का लाभ व्यापार में सम्मिलित सभी देशों को होता है। जिस प्रकार दर्जी अपने जूतों को स्वयं नहीं बनाता, बल्कि कपड़े के बदले मोची से उसे खरीदता है। इस प्रकार दर्जी और मोची दोनों का लाभ होता है। उसी प्रकार, स्मिथ के अनुसार, एक देश भी दूसरे देशों के साथ व्यापार करके लाभ प्राप्त कर सकता है। स्मिथ के अनुसार दो दे शों के बीच व्यापार तभी होता है जब लागतों में निरपेक्ष अंतर हो अर्थात् एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ तथा दूसरे देश को दूसरी वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ हो। ऐसी स्थिति में प्रत्येक देश को उस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण हासिल करना चाहिए और निर्यात करना चाहिए, जिसमें उसे निरपेक्ष लाभ हो तथा उस वस्तु का आयात करना चाहिए जिसमें उसे निरपेक्ष हानि है। माना दो देश A और B हैं दो वस्तु X और Y का उत्पादन कर रहे हैं। दोनों देशों की लागत दशाओं को निम्नलिखित सारणी में दिखाया गया है।

सारणी 1 दो देशों में दो वस्तुओं की लागतों की तुलना

	प्रति इकाई उत्पादन लागत (श्रम घण्टों में)	
	इकाई वस्तु 1X की उत्पादन लागत	इकाई वस्तु 1Y की उत्पादन लागत
देश-A	100	200
देश-B	200	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि देश A में वस्तु X की उत्पादन लागत (100 श्रम घण्टे), देश B में X की लागत (200 श्रम घण्टे) की आधी है। इस प्रकार वस्तु Y की देश A में लागत देश B की अपेक्षा दुगुनी है। स्पष्ट है कि देश A, वस्तु X के उत्पादन में निरपेक्ष रूप से अधिक दक्ष है जबकि देश B, वस्तु Y के उत्पादन में अधिक दक्ष है। यदि देश A सिर्फ X का तथा B सिर्फ Y का उत्पादन करें तो कुल उत्पादन बढ़ जायेगा।

विशिष्टीकरण के पश्चात् देश A कुल 300 श्रम घण्टे (100 +200) से वस्तु X की 3 इकाई का उत्पादन करेगा, इसी प्रकार देश B, कुल 300 श्रम घण्टे (200+100) से 3 इकाई वस्तु Y का उत्पादन करेगा।

सारणी 2 दो देशों में दो वस्तुओं की व्यापार के पूर्व तथा पश्चात् उत्पादन की तुलना

	वस्तुX- उत्पादन		वस्तुY- उत्पादन		कुल उत्पादन	
	व्यापार के पूर्व	व्यापार के पश्चात्	व्यापार के पूर्व	व्यापार के पश्चात्	व्यापार के पूर्व	व्यापार के पश्चात्
देश-A	1	3	1	0	2	3
देश-B	1	0	1	3	2	3
कुल उत्पादन	2	3	2	3	4	6

सारणी 2 से स्पष्ट है कि विशिष्टीकरण के पश्चात् उतने ही संसाधनों (श्रम घण्टों) से दोनों ही देशों में दोनों ही वस्तुओं का एक-एक इकाई अधिक उत्पादन होगा तथा कुल संयुक्त उत्पादन 4 से बढ़कर 6 हो जाएगा।

व्यापार के फलस्परूप उत्पादन में हुई वृद्धि दोनों देशों के कल्याण या उपभोग में कितनी वृद्धि लाएगा यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त पर निर्भर करेगा। यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त या कीमत अनुपात 1x=1y हो तो दोनों देशों को व्यापार से लाभ होगा। जैसा कि सारणी 3 से स्पष्ट है-

सारणी 3 व्यापार के पश्चात् उपभोग(यदि अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात $1x = 1y$ हो)

	वस्तु-x	वस्तु-y	कुल
देश-A	2	1	3
देश-B	1	2	3

व्यापार से पूर्व दोनों देश वस्तु X और Y की एक-एक इकाई का उप भोग कर रहे थे , परन्तु अब देश A 1x के बदले 1y प्राप्त करेगा और बचे हुए 2 y का उपभोग करेगा। इसी प्रकार देश B भी पहले की अपेक्षा एक इकाई अधिक वस्तु y का उपभोग करेगा। इस प्रकार व्यापार से दोनों ही देशों के जीवन के रहन-सहन के स्तर में सुधार आएगा।

एडम स्मिथ की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापर से लाभ की व्याख्या अत्यंत सरल और स्पष्ट है। तथा स्वतंत्र व्यापार के पक्ष में बड़े ही दृढ़ता पूर्वक अपने तर्क को प्रस्तुत करती है। हालांकि यह सिद्धान्त संकीर्ण है और थोड़ी जटिल स्थितियों मे व्यापार से होने वाले लाभों की व्याख्या करने में असमर्थ है।

रिकार्डो का तुलनात्मक लागत सिद्धांत

रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त तुलनात्मक लागत सिद्धांत कहा जाता है । रिकार्डो एक कदम और आगे बढकर यह दिखाते हैं की यदि एक देश को दूसरे देश की अपेक्षा किसी भी वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ नहीं है तब भी व्यापार होगा और व्यापार में लगे सभी देशों को लाभ होगा। उनके अनुसार अन्य बातें सामान रहने पर एक देश उस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टिकरण प्राप्त करेगा और निर्यात करेगा जिसमें उसे अधिकतम तुलनात्मक लागत लाभ या न्यूनतम तुलनात्मक लागत हानि हो । इसी प्रकार देश उस वस्तु का आयात करेगा जिसमें उसे तुलनात्मक लागत लाभ न्यूनतम या तुलनात्मक लागत हानि अधिकतम हो । इस प्रकार देश अपने उत्पादन और उपभोग को अधिकतम करने में समर्थ होगा।

रिकार्डो ने अपने सिद्धांत को एक उदहारण द्वारा समझाया । माना दो देश इंग्लैंड और पुर्तगाल हैं जो दो वस्तुओं कपड़े और शराब का उत्पादन करते हैं।सारणी 1 में दोनों देशों की लागत दशाओं को दर्शाया गया है।

सारणी 4 इंग्लैंड और पुर्तगाल के लागत दशाओं की तुलना

देश	उत्पादन की लागत (श्रम घंटों में)		घरेलू विनिमय अनुपात
	1 इकाई शराब	1 इकाई कपड़ा	

पुर्तगाल	80	90	1 इकाई शराब =80/90 = 0.89 इकाई कपड़ा या 1इकाई कपड़ा =1.125 इकाई शराब
इंग्लैंड	120	100	1इकाई शराब =120/100 = 1.2 इकाई कपड़ा या 1इकाई कपड़ा = 0.83 इकाई शराब
तुलनात्मक लागत अनुपात	80/120 = 0.67	90/100 = 0.90	

तुलनात्मक लागत लाभ जानने के लिए हम दोनों देशों में एक वस्तु की उत्पादन लागत की तुलना दूसरे वस्तु की उत्पादन लागत से करते हैं। रिकार्डो के उदहारण में-

$$\frac{\text{पुर्तगाल में शराब की श्रम लागत}}{\text{इंग्लैंड में शराब की श्रम लागत}} < \frac{\text{पुर्तगाल में कपड़ा की श्रम लागत}}{\text{इंग्लैंड में कपड़ा की श्रम लागत}}$$

अर्थात $$\frac{80}{120} < \frac{90}{100} < 1$$

अर्थात $$0.67 < 0.90 < 1$$

पुर्तगाल में दोनों वस्तुओं की एक इकाई की उत्पादन लागत इंग्लैंड से कम है , पुर्तगाल दोनों वस्तुओं के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त कर रहा है। परन्तु वह कपड़े की अपेक्षा शराब के उत्पादन में अधिक तुलनात्मक लाभ प्राप्त कर रहा है। क्यूंकि एक इकाई शराब के उत्पादन में पुर्तगाल की श्रम लागत , इंग्लैंड में शराब की श्रम लागत का मात्र 67% है,जबकि कपड़े में यह 90% है।

स्पष्ट है कि इंग्लैंड दोनों वस्तुओं के उत्पादन में निरपेक्ष हानि प्राप्त कर रहा है । परन्तु वह कपड़े की अपेक्षा शराब के उत्पादन में अधिक तुलनात्मक हानि प्राप्त कर रहा है. रिकार्डो के अनुसार चूँकि पुर्तगाल का तुलनात्मक लाभ शराब के उत्पादन में अधिक है और इंग्लैंड की तुलनात्मक हानि कपड़े के उत्पादन में कम है इसलिए यदि पुर्तगाल शराब के उत्पादन में तथा इंग्लैंड कपड़े के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टिकरण करे तो व्यापार से दोनों देशों को लाभ होगा । अर्थात दक्षता को वहाँ विशिष्टिकरण करना चाहिए जहां वह अधिक हो और अदक्षता को वहाँ विशिष्टिकरण करना चाहिए जहां वह कम हो।

विशिष्टिकरण के पश्चात दोनों वस्तुओं , कपड़े और शराब , का उत्पादन व्यापार शुरू होने से पहले के उत्पादन की अपेक्षा अधिक होगा। इसे आप निम्नलिखित ढंग से समझ सकते हैं-

पुर्तगाल में कुल संसाधन =170 श्रम घंटे

इंग्लैंड में कुल संसाधन = 220 श्रम घंटे

सारणी 5 व्यापार ना होने की स्थिति में उत्पादन और उपभोग

देश	शराब	कपड़ा	कुल उत्पादन तथा उपभोग
पुर्तगाल	1	1	2
इंग्लैंड	1	1	2
विश्व	2	2	4

व्यापार ना होने की स्थिति में दोनों देश एक - एक इकाई कपड़े और शराब का उत्पादन तथा उपभोग करते हैं और कुल विश्व उत्पादन चार इकाई के बराबर है।

सारणी 6 व्यापार होने की स्थिति में उत्पादन और उपभोग

देश	शराब	कपड़ा	कुल उत्पादन तथा उपभोग
पुर्तगाल	2.1250	0	2.125
इंग्लैंड	0	2.2	2.2

विश्व	2.125	2.2	4.325

व्यापार शुरू होने के पश्चात विशिष्टिकरण के कारण दोनों वस्तुओं , कपड़े और शराब, का उत्पादन तथा उपभोग अधिक होगा। पुर्तगाल अब अपने कुल 170 श्रम घंटे संसाधन से 2 .125 इकाई शराब का उत्पादन करेगा जबकि इंग्लैंड में कुल 220 श्रम घंटे से 2 .2 इकाई कपड़े का उत्पादन करेगा और कुल विश्व उत्पादन 4 इकाई से बढ़कर 4.325 इकाई हो जायगा।

परन्तु वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाला उत्पादन लाभ यह सुनिश्चित नहीं करता की व्यापार से दोनों देशों के कल्याण या उपभोग में वृद्धि होगी। उत्पादन लाभ सकल राष्ट्रीय आय में लाभ या आय लाभ है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप व्यापारत देशों के आर्थिक रहन सहन का स्तर कितना ऊपर उठा इसके निर्धारण में उपभोग लाभ महत्वपूर्ण है। प्रत्येक देश के उपभोग या कल्याण में कितनी वृद्धि होगी यह पूरी तरह से व्यापार शर्त पर निर्भर करेगा।

इंग्लैंड एक इकाई शराब के उत्पादन के लिए 120 श्रम घंटे तथा एक इकाई कपड़े के उत्पादन के लिए 100 श्रम घंटे ले रहा है। स्पष्ट है कि इंग्लैंड में शराब की उत्पादन लागत कपड़े की उत्पादन लागत से अधिक है.

1 इकाई शराब = 120/100 या 1.2 इकाई कपड़ा

1 इकाई कपड़ा = 0.83 इकाई शराब।

पुर्तगाल एक इकाई शराब के उत्पादन के लिए 80 श्रम घंटे तथा एक इकाई कपड़े के उत्पादन के लिए 90 श्रम घंटे ले रहा हैं। स्पष्ट है कि पुर्तगाल में कपड़े की उत्पादन लागत शराब की उत्पादन लागत से अधिक है। 1 इकाई शराब = 80/90 या 0.89 इकाई कपड़ा।

यदि अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात या व्यापार शर्त हो-

1 इकाई कपड़ा = 1 इकाई शराब।

अर्थात पुर्तगाल शराब के 1 इकाई निर्यात से 1 इकाई कपड़ा प्राप्त करेगा , जबकि घरेलू स्तर पर सिर्फ 0 .89 इकाई कपड़ा मिलता था क्योंकि पुर्तगाल का घरेलू विनिमय अनुपात है- 1 इकाई शराब = 0.89 इकाई कपड़ा। तो पुर्तगाल को व्यापार से लाभ होगा- 1 – 0.89 = 0.11 इकाई कपड़ा।

शराब के पदों में देखें तो पुर्तगाल घरे लू स्तर पर 1 इकाई कपड़ा के लिए 1 .125 इकाई शराब देता है (क्योंकि पुर्तगाल का घरेलू विनिमय अनुपात है- 1 इकाई कपड़ा- 1.125 इकाई शराब) जबकि व्यापर के पश्चात सिर्फ 1 इकाई शराब के निर्यात से 1 इकाई कपड़ा प्राप्त करेगा अर्थात पुर्तगाल को व्यापार से लाभ होगा 1.125 - 1= 0.125 इकाई शराब।

इसी प्रकार इंग्लैंड को व्यापार से लाभ होगा 1 .20। 1 = 0.20 इकाई कपड़ा या 1 । 0.83 = 0.17 इकाई शराब, क्योंकि इंग्लैंड का घरेलू विनिमय अनुपात है - 1 इकाई शराब =1.20 इकाई कपड़ा या 1इकाई कपड़ात्र0.83 इकाई शराब. अर्थात इंग्लैंड घरेलू स्तर पर 1 इकाई शराब के लिए 1.20 इकाई कपड़ा देता है या 1 इकाई कपड़ा से सिर्फ 0.83 इकाई शराब ही मिलती है।

यदि व्यापार पुर्तगाल की घरेलू विनिमय अनुपात पर होता है तो इसे व्यापार से कोई लाभ नहीं होगा , व्यापार का समस्त लाभ इंग्लैंड को होगा । इसके विपरीत यदि व्यापार इंग्लैंड की घरेलू विनिमय अनुपात पर होता है व्यापार का समस्त लाभ पुर्तगाल ले जायेगा । वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात या व्यापार शर्त दो देशों के इन्हीं घरेलू विनिमय अनुपातों के बीच कहीं निर्धारित होगी। यदि व्यापार शर्त दो देशों के घरेलू विनिमय अनुपातों के बिलकुल बीच में स्थित है तों दोनों ही देशों को व्यापार से बराबर बराबर लाभ होगा।

13.4 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की मान्यताएं (Assumption of Classical Theory of International Economics)

चूंकि वास्तविक जगत में चीजें काफी जटिल हैं और तेजी से बदलती रहती हैं इसलिए प्रत्येक आर्थिक सिद्धांत कुछ निश्चित मान्यताओं पर आधारित होते हैं जो की वास्तविकता के ही सरलीकृत रूप होती हैं । अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रतिष्ठित सिद्धांत निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है-

1. केवल दो देश हैं जो दो समरूप वस्तुओं का व्यापार करते हैं।
2. श्रम ही उत्पादन का एकमात्र साधन है अर्थात् यह सिद्धांत 'मूल्य के श्रम सिद्धांत' पर आधारित है। सभी श्रम-इकाईयाँ समरूप हैं।
3. उत्पादन में पैमाने के स्थिर प्रतिफल की स्थिति है।
4. परिवहन लागतें शून्य है।
5. उत्पादन के साधन देश के भीतर पूर्णरूप से गतिशील तथा देशों के मध्य पूर्णरूप से अगतिशील हैं।
6. दोनों देशों में पूर्ण रोजगार है तथा पूर्ण-प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है।
7. अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं है। अर्थात् दो देशों में स्वतंत्र व्यापार हो रहा है।
8. दोनों देशों के मध्य वस्तु-विनिमय प्रणाली के आधार पर व्यापार होता है अर्थात् मुद्रा के अस्तित्व की उपेक्षा की गयी है।
9. उपभोक्ता की रुचि, उत्पादन फलन, उत्पादन के साधनों की मात्रा आदि को स्थिर मान लिया गया है।

13.5 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की कमियां (Drawbacks of Classical Theory of International Economics)

अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार का प्रतिष्ठित सिद्धांत बड़े ही तार्किक और सुन्दर ढंग से व्यापार से होने वाले लाभों की व्याख्या करता है। तुलनात्मक लागतों में विद्यमान अन्तर के कारण अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार सभी व्यापाररत देशों के लिए लाभदायक होगा। प्रतिष्ठित अथशास्त्री बड़े ही स्पष्ट ढंग से इस बात को कहते हैं कि विभिन्न देशों के उत्पादन फलन अलग-अलग होते हैं, इसी कारण तुलनात्मक लागतों में अन्तर होता है।

प्रथम विश्वयुद्ध तक यह सिद्धांत अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार का एक लोकप्रिय सिद्धांत बना रहा। संसाधनों के अनुकूलतम प्रयोग को सुनिश्चित करने और इस प्रकार कुल उत्पादन तथा उपभोग में वृद्धि करने की दृष्टि से इस सिद्धांत की खूबियाँ बिल्कुल स्पष्ट हैं। परन्तु यह सिद्धांत जिन मान्यताओं पर आधारित हैं वे व्यवहारिक रूप से अवास्तविक हैं। इसलिए इस सिद्धांत का विश्लेषणात्मक ढांचा काफी कमजोर रहा है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ओहलिन, ग्राहम आदि ने इस सिद्धांत की कमियों को महत्वपूर्ण रूप से रेखांकित किया है। सिद्धांत की महत्वपूर्ण आलोचनाएँ निम्नलिखित है-

1. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री यह बताने में असफल रहे कि विभिन्न देशो के उत्पादन फलन भिन्न-भिन्न क्यों होते हैं।
2. यह सिद्धांत 'मूल्य के श्रम सिद्धांत ' पर आधारित है जो कि अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित हैं किसी वस्तु की उत्पादन लागत उसके उत्पादन में लगे सिर्फ श्रम की मात्रा के बराबर नहीं होती है बल्कि उसमें सभी संसाधन लागतें सम्मिलित होती हैं। विभिन्न श्रम -इकाईयाँ भी समरूप नहीं होती हैं। श्रम अनेक वर्गों में विभक्त होता है जैसे , कुशल श्रम, अकुशल श्रम, अर्द्धकुशल श्रम इत्यादि और ये विभिन्न वर्गों के श्रम आपस में प्रतियोगी नहीं होते हैं।

श्रम की अन्र्तक्षेत्रीय पूर्ण गतिशीलता और श्रम-बाजार की पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता भी अवास्तविक है इसलिए आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने श्रम के मूल्य सिद्धांत को रद्द कर दिया है।

प्रतिष्ठित सिद्धांत के समर्थकों का तर्क है कि उनका विश्वास मुख्यतः कल्याणकारी अर्थशास्त्री में था। इसलिए अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त लाभ की माप के लिए उन्होंने श्रम लागत का प्रयोग 'वास्तविक लागत' के रूप में

किया है। 'वास्तविक लागत' की धारणा का प्रयोग सामान्यतः उत्पादन के दौरान श्रम की अनुपयोगिता या कष्टानुभूति के रूप में किया गया है। परन्तु अनुपयोगिता एक आत्मनिष्ठ प्रत्यय है जोकि देश, काल और व्यक्ति के अनुसार परिवर्तित होती रहती है।

सिद्धांत इस मान्यता पर भी आधारित है कि सभी वस्तुओं के उत्पादन में श्रम समान अनुपात में प्रयुक्त होता है। यह मूलतः एक स्थैतिक विश्लेषण है इसलिए अवास्तविक है।

परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने अन्य लागत की परिभाषाओं को लेकर भी स्मिथ तथा रिकार्डो के निष्कर्षों को सिद्ध किया है। प्रो . जगदीश भगवती के अनुसार रिकार्डो का सिद्धांत एक कल्याणकारी मॉडल के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसका उद्देश्य स्वतंत्र व्यापार का समर्थन था। यह सिद्धांत व्यापार के विभिन्न तथ्यों की व्याख्या के लिए निर्मित धनात्मक (Positive) मॉडल नहीं है।

3. प्रतिष्ठित सिद्धांत उत्पादन में पैमाने के स्थिर प्रतिफल की मान्यता मान लेता है और इस आधार पर सभी व्यापाररत देशों में पूर्ण विशिष्टीकरण की बात करता है।

वास्तविक जगत में न तो उत्पादन में स्थिर लागत की स्थिति और न ही किसी देश में पूर्ण विशिष्टीकरण की स्थिति पायी जाती है। अनेक देश अनेक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं और लागत दशाएँ उत्पादन में बड़ते हुए प्रतिफल से घटते हुए प्रतिफल के बीच परिवर्तित होती रहती है।

परंतु बाद में नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने अन्य लागत दशाओं में भी व्यापार-सिद्धांत का विस्तार किया और प्रतिष्ठित सिद्धांत के निष्कर्षों को सिद्ध करने की कोशिश की।

4. प्रतिष्ठित सिद्धांत में परिवहन लागतों की भी उपेक्षा की गयी है जबकि इन लागतों की अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार की मात्रा और दिशा दोनों को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उच्च परिवहन लागतें तुलनात्मक लाभों और व्यापार से लाभों को समाप्त कर सकती हैं।

यह आलोचना सिद्धांत को गम्भीर चुनौती पेश नहीं करती क्योंकि परिवहन लागतों व अन्य सम्बन्धित लागतों को जोड़कर कुल लागत के पदों में तुलनात्मक लाभों को पुनः परिभाषित करना सम्भव है।

5. सिद्धांत में उपभोक्ताओं की रुचियो , उत्पादन-फलन, उत्पादन साधनों की मात्रा आदि को स्थिर मान लिया गया है परन्तु व्यवहार में ये स्थिर नहीं है।
6. यह सिद्धांत सिर्फ कुछ संकीर्ण प्रश्नों के उत्तर देने तक ही सीमित हैं , जैसे- किसी दिए हुए समय में किन वस्तुओं का व्यापार किया जाएगा और व्यापार से क्या लाभ होगा ? यह इस बात को नहीं बताता कि समय के साथ व्यापार की मात्रा , संरचना तथा लाभ में किस प्रकार परिवर्तन होता है। दूसरे शब्दों में , यह सिद्धांत इस बात की व्याख्या नहीं करता कि समय के साथ तुलनात्मक लाभ की संरचना में कैसे परिवर्तन होगा।
7. रिकार्डो का सिद्धांत एकपक्षीय है क्योंकि यह अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के केवल पूर्ति पक्ष पर विचार करता है और मांग पक्ष को पूरी तरह से उपेक्षित कर देता है। तुलनात्मक लागत में भिन्नता के लिए मांग की दशाओं की उपेक्षा की गयी है।

वास्तव में प्रतिष्ठित सिद्धांत अल्पकालीन नहीं बल्कि दीर्घकालीन समस्या पर विचार करता है इसलिए इसलिए लागतों में अंतर के लिए सिर्फ पूर्ति दशाओं को ही प्रभावशाली मानता है। हालांकि बाद में जे .एस. मिल ने प्रतिष्ठित सिद्धांत की इस कमी को दूर करते हुए मांग पक्ष को भी सम्मिलित किया।

8. बर्टिल ओहलिन इस सिद्धांत को बेढंगा और अवास्तविक कहते हैं , क्योंकि यह विभिन्न देशों के मध्य सीधे सीधे पूर्ण लागत की भिन्नता पर विचार नहीं करता है। यह सिर्फ श्रम लागतों पर विचार करता है और अन्य लागतों की अवहेलना करता है। ओहलिन इस सिद्धांत को खतरनाक मानते हैं क्योकि यह केवल दो देशों तथा दो वस्तुओं वाली परिस्थितियों का विश्लेषण करता है और इससे प्राप्त निष्कर्षों को अनेक देशों और वस्तुओं वाली परिस्थितियों पर लागू करने का प्रयास करता है।

ओहलिन के अनुसार संसाधन न सिर्फ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि देश के भीतर भी विभिन्न क्षेत्रों के बीच अगतिशील होते हैं। इसलिए तुलनात्मक लाभ का सिद्धांत न सिर्फ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि सभी प्रकार के व्यापार में लागू होता है। इसलिए ओहलिन मूल्य के सामान्य सिद्धांत पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के नये सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं।

9. इस सिद्धांत की आलोचना करते हुए मिर्डल कहते हैं कि यह अन्तर्राष्ट्रीय असमानताओं और विकास तथा अल्पविकास की समस्याओं की उपेक्षा करता है।
10. फ्रैंक ग्राहम ने यह दिखाया कि इस सिद्धांत की मान्यता ओं के आधार पर भी पूर्ण विशिष्टीकरण सम्भव नहीं होगा। अपूर्ण या आंशिक विशिष्टीकरण निम्नलिखित स्थितियों में होगा-

I. यदि दो व्यापार कर रहे देशों में उत्पादन की दृष्टि से एक बहुत छोटा तथा दूसरा बहुत बड़ा हो।

II. यदि दोनों देशों के व्यापार में सम्मिलित वस्तुओं का मूल्य तुलनीय हो। जब एक वस्तु उच्च मूल्य वाली वस्तु हो तथा दूसरी वस्तु निम्न मूल्य वाली हो।

प्रथम स्थिति में छोटा देश पूर्व विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेगा परन्तु बड़ा देश पूर्ण विशिष्टीकरण नहीं कर सकेगा। यदि बड़ा देश पूर्ण विशिष्टीकरण करता है तो छोटे देश में उसकी खपत सम्भव नहीं है। दूसरी ओर छोटा देश पूर्ण विशिष्टीकरण के पश्चात् भी बड़े देश की मांग को संतुष्ट नहीं कर सकता है।

द्वितीय स्थिति में , उच्च मूल्य की वस्तु उत्पादित करने वाला देश पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त करने में समर्थ होगा जबकि निम्न मूल्य वाली वस्तु का उत्पादन करने वाला देश ऐसा नहीं कर सकेगा क्योंकि कम मूल्य वाली वस्तु के सम्पूर्ण निर्यात का मूल्य, उस देश की उच्च मूल्य की वस्तु की आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकता।

इस प्रकार , जब तक व्यापार में सम्मिलित देश समान आर्थिक आकार के न हों या व्यापारिक वस्तु एं लगभग समान उपभोग मूल्य की न हों उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण सम्भव नहीं है।

11. इस सिद्धांत की इस आधार पर भी आलोचना की जाती है कि यह सिर्फ 2 वस्तु ओं और 2 देशों को लेकर विश्लेषण करता है। परन्तु दो से अधिक देशों तथा वस्तुओं के संदर्भ में भी इस सिद्धांत को प्रस्तुत किया जा सकता है।
12. सिद्धांत की इस आधार पर भी आलोचना की जाती है स्वतंत्र व्यापार की मान्यता पर आधारित है। यह मान्यता सिद्धांत को अवास्तविक बना सकती है परन्तु यह किसी भी तरह इसे अवैध नहीं बनाती , गैर स्वतंत्र व्यापार स्थिति में भी व्यापार-संतुलन को दिखाया जा सकता है।

मूल्यांकन-

तुलनात्मक लाभ सिद्धांत की इस आधार पर आलोचना कि इसकी मान्यताएँ वास्तविक जगत से मेल नहीं खाती हैं, बहुत उचित नहीं है। इनमें से अधिकांश मान्यताएँ सैद्धान्तिक सरलता के लिए ली गयी है।

एक तो विश्व की वास्तविकताएँ काफी जटिल हैं और दूसरे ये समय के साथ बदलती रहती है। सिद्धांत के पक्ष में यह बात उल्लेखनीय है कि आर्थिक सिद्धांत आदर्शों को वास्तविकता की ओर ले जाने की अपेक्षा वास्तविकता को आर्दशात्मक बनाने का प्रयास करते हैं। वास्तव में , सिद्धांत यह बताता है कि आर्थिक नीति के उद्देश्य आदर्श स्थितियों को उत्पन्न करना और उन्हें वास्तविकता में परिवर्तित करना होना चाहिए और उन आदर्शों को पूरा करने के बाद सिद्धांत यह कहता है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन के लिए हमें तुलनात्मक लाभ सिद्धांत का अनुसरण करना चाहिए , जिससे कि आगे विश्व में संसाधनों का अत्यधिक अनुकूलतम आवंटन सुनिश्चित होगा तथा पूरे विश्व के आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी। इस आधार पर तुलनात्मक लाभ सिद्धांत आर्दशात्मक सिद्धांत हो जाता है , यह वर्णनात्मक की अपेक्षा निर्देशात्मक हो जाता है। यह सामान्य धनात्मक अर्थशास्त्र की अपेक्षा आर्दशात्मक कल्याण अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु बन जाता है।

स्मिथ व रिकार्डो यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि राष्ट्रों के हित एक दूसरे से टकराएँ यह जरूरी नहीं है। वे विश्व के राष्ट्रों के बीच एक अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं , यह दिखाकर कि कुछ

व्यापार, व्यापार न होने से बेहतर है। राष्ट्रों के बीच व्यापार को प्रतिबंधित करने की अपेक्षा इसे प्रोत्साहित करना विश्व के उत्पादन में वृद्धि लायेगा तथा सार्वभौमिक कल्याण को अधिकतम करेगा। तुलनात्मक लागत सिद्धान्त का यही संदेश था और अब भी है। सिद्धांत व्यापार के पक्ष में रहा है और स्वतंत्र व्यापार का समर्थन करता है। अपनी सभी सीमाओं के बावजूद यह सिद्धांत समय की कसौटी पर खरा उतरा है। यद्यपि इसमें काफी सुधार किये गए हैं, पर इसका मूल ढांचा वैसा ही है। सिद्धांत उल्लेखनीय रूप से अपने उद्देश्यों को पूरा करने में सफल रहा है।

13.6 सारांश (Summary)

एडम स्मिथ ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत के निर्माण की आधारशिला रखी । परन्तु डेविड रिकार्डो ने एडम स्मिथ के सिद्धांत को और स्पष्ट किया , इसका विस्तार किया तथा इसे वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत को रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत तुलनात्मक लागत सिद्धांत या तुलनात्मक लाभ सिद्धांत द्वारा जाना जाता है । बाद में जान स्टुअर्ट मिल ने तुलनात्मक लागत सिद्धांत में मांग पक्ष को समिलित कर प्रतिपूरक मांग का सिद्धांत दिया । एडम स्मिथ ने लागतों में निरपेक्ष अंतर के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत प्रस्तुत किया । यदि एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ तथा दुसरे वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष हानि हो तो फिर व्यापार होगा । प्रत्येक देश उस वस्तु का निर्यात करेगा जिसके उत्पादन मे निरपेक्ष लागत लाभ होगा और उस वस्तु का आयात करेगा जिसके उत्पादन मे निरपेक्ष लागत हानि होगी। रिकार्डो यह दिखाते हैं की यदि एक देश को दुसरे देश की अपेक्षा किसी भी वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ नहीं है तब भी व्यापार होगा । उनके अनुसार एक देश उस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टिकरण प्राप्त करेगा और निर्यात करेगा जिसमें उसे अधिकतम तुलनात्मक लागत लाभ या न्यूनतम तुलनात्मक लागत हानि हो । इसी प्रकार देश उस वस्तु का आयात करेगा जिसमें उसे तुलनात्मक लागत लाभ न्यूनतम या तुलनात्मक लागत हानि अधिकतम हो । जे.एस. मिल ने तुलनात्मक सिद्धांत की व्याख्या करते हुए उसमें संशोधन किया और अपने प्रतिपूरक माँग सिद्धांत में यह बताया कि वास्तविक व्यापार-शर्त का निर्धारण कैसे और कहाँ होता है। मार्शल तथा एजबर्थ ने प्रस्ताव वक्रों के माध्यम से मिल के सिद्धांत को आगे बढ़ाया।

13.7 शब्दावली (Glossary)

- **वास्तविक लागत (Real Cost)-** वास्तविक लागत से आशय किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किए गए वास्तविक संसाधनों के त्याग से है। यह केवल मौद्रिक लागत नहीं, बल्कि उत्पादन प्रक्रिया में खर्च किए गए श्रम , पूँजी, प्राकृतिक संसाधनों और अन्य उत्पादन के साधनों के वास्तविक उपयोग को दर्शाती है।
- **लागतों का निरपेक्ष अन्तर (Absolute Difference in Costs)-** कुछ देश कुछ विशेष प्राकृतिक सुविधाओं के अधिक मात्र में उपलब्ध होने के कारण कुछ वस्तुओं का उत्पादन अन्य देशों की अपेक्षा कम लागत पर कर सकते हैं। लागत के इस अंतर को निरपेक्ष अंतर कहते हैं। माना दो देश X तथा Y हों, जो दो वस्तुओं का A तथा B उत्पादन करते हों, यदि देश X में A की श्रम लागत X_a तथा B की श्रम लागत X_b तथा देश Y में क्रमशः Y_a तथा Y_b हो तों लागत के निरपेक्ष अंतर निम्न प्रकार से दिखाया जा सकता है-

$$\frac{X_a}{X_b} < 1 > \frac{Y_a}{Y_b}$$

अर्थात् देश X को A वस्तु के उत्पादन में तथा देश Y को B के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ है । एक देश की एक वस्तु के उत्पादन में लागत कम है तथा दूसरे देश की दूसरे वस्तु के उत्पादन में लागत कम है, अर्थात् एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ तथा दूसरी वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष हानि हो।

- **लागतों में तुलनात्मक अन्तर (Comparative Difference in Costs)-** यदि एक देश की उत्पादन लागत दोनों ही वस्तु के संदर्भ में दूसरे देश से कम हो तो , उसे दोनों ही वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ प्राप्त होगा। ऐसी स्थिति में यह देखना होगा कि वह देश किस वस्तु के उत्पादन में अधिक दक्ष है अर्थात् उसकी तुलनात्मक लागत कम है तथा दूसरे देश की किस वस्तु के उत्पादन में तुलनात्मक हानि कम है।

उपरोक्त उदाहरण से लागत के सापेक्ष अंतर को निम्न प्रकार से दिखाया जा सकता है-

$$\frac{X_a}{X_b} < \frac{Y_a}{Y_b} < 1$$

अर्थात देश X को दोनों ही वस्तुओं के उत्पादन में देश Y की अपेक्षा निरपेक्ष लाभ है परन्तु वस्तु A के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ वस्तु B की अपेक्षा अधिक है।

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Practice Question Answer)

1. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रतिष्ठित सिद्धांत किस पर आधारित है?
   A. पूँजी की उत्पादकता
   B. श्रम की उत्पादकता
   C. प्रौद्योगिकी का स्तर
   D. मुद्रा आपूर्ति
2. "निरपेक्ष लाभ सिद्धांत" किस अर्थशास्त्री ने प्रस्तुत किया?
   A. डेविड रिकार्डो
   B. एडम स्मिथ
   C. जॉन मेनार्ड कीन्स
   D. अल्फ्रेड मार्शल
3. तुलनात्मक लाभ सिद्धांत का प्रतिपादन किसने किया?
   A. कार्ल मार्क्स
   B. जे.एस. मिल
   C. डेविड रिकार्डो
   D. बर्टिल ओहलिन
4. यदि देश A, वस्तु X का उत्पादन देश B की तुलना में कम लागत पर करता है , तो यह किस सिद्धांत को दर्शाता है?
   A. तुलनात्मक लाभ
   B. निरपेक्ष लाभ
   C. साधन समानीकरण
   D. वणिकवाद
5. वणिकवादी विचारधारा का मुख्य उद्देश्य क्या था?
   A. व्यापार घाटे को बढ़ावा देना
   B. सोने-चाँदी के भंडार में वृद्धि करना
   C. उदार व्यापार नीति अपनाना

D. श्रमिकों के कल्याण पर ध्यान देना

6. यदि पुर्तगाल शराब और इंग्लैंड कपड़े के उत्पादन में विशेषज्ञता रखते हैं , तो यह किस सिद्धांत का उदाहरण है?

A. निरपेक्ष लाभ
B. तुलनात्मक लाभ
C. पैमाने की अर्थव्यवस्था
D. मुद्रास्फीति

7. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ का मुख्य कारण क्या है?

A. संसाधनों का कुशल आवंटन
B. सरकारी नियंत्रण
C. मुद्रा अवमूल्यन
D. उच्च कराधान

उत्तर- 1- B 2- B 3- C 4- B 5- B 6- B 7- A

13.9 संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)

- H H. G. Mannur, International Economics ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य , अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन , नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा , अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड , नई दिल्ली,1979.

13.10 सहायक ग्रंथ सामग्री (Helpful Study Material)

- H H. G. Mannur, International Economics ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.

- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- एस० एन०लाल, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य , अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन , नई दिल्लीए 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- डॉ. जी. सी. सिंघई एवं डॉ. जे. पी. मिश्रा , अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त , साहित्य भवन पब्लिकेशंस , आगरा, 2010

13.11 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की व्याख्या कीजिए। एडम स्मिथ के निरपेक्ष लाभ सिद्धांत और डेविड रिकार्डो के तुलनात्मक लाभ सिद्धांत में अंतर स्पष्ट कीजिए।
2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की मान्यताओं और आलोचनाओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई 14 भुगतान संतुलन खाते : अर्थ एवं संघटक (Balance of Payment Accounts : Meaning and Components)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

14.2 उद्देश्य (Objectives)

14.3 भुगतान संतुलन का अर्थ (Meaning of Balance of Payment)

14.4 भुगतान संतुलन के घटक (Components of Balance of Payment)

14.5 सारांश (Summary)

14.6 शब्दावली (Glossary)

14.7 अभ्यास प्रश्नों उत्तर (Practice Question Answer)

14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

14.9 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)

14.10 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत इकाई मुद्रा, बैंकिंग एवं अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खण्ड चार की तीसरी इकाई "भुगतान संतुलन खाते: अर्थ एवं संघटक" हैं, प्रस्तुत इकाई में आप भुगतान संतुलन के अर्थ एवं इसके संघटक के बारे में जानेंगे। आधुनिक वैश्विक अर्थव्यवस्था में प्रत्येक देश का अन्य देशों के साथ वस्तुओं , सेवाओं और पूँजी का निरंतर आदान-प्रदान होता है। इन सभी आर्थिक लेन-देनों का व्यवस्थित ब्यौरा भुगतान संतुलन में दर्ज किया जाता है। भुगतान संतुलन किसी देश की अर्थव्यवस्था के विदेशी व्यापार और वित्तीय स्थिति का एक महत्वपूर्ण सूचकांक है, जो नीति निर्माताओं, अर्थशास्त्रियों और निवेशकों के लिए आवश्यक डेटा प्रदान करता है।

14.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- ✓ भुगतान संतुलन के अर्थ को समझ सकेंगे।
- ✓ भुगतान संतुलन के घटकों को जान सकेंगे।

14.3 भुगतान संतुलन का अर्थ (Meaning of Balance of Payment)

प्रत्येक देश का विश्व के अन्य देशों के साथ व्यापार होता है। आप जानते हैं कि कोई देश यदि वस्तुओं या सेवाओं को दूसरे देशों को बेचता है तो उसे 'निर्यात' कहते है तथा यदि दूसरे देशों से खरीदता है तो उसको 'आयात' कहते हैं। एक देश का विश्व के अन्य सभी देशों के साथ होने वाले समस्त प्रकार के लेन-देन , चाहे वह वस्तुओं के रूप में हो, सेवाओं के रूप में हो या फिर पूँजी के रूप में , का एक सुव्यवस्थित लेखा भुगतान-संतुलन है। भुगतान संतुलन एक दी हुई समयावधि में किसी देश द्वारा किए गए समस्त अंतर्राष्ट्रीय लेन-देन का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता हो।

भुगतान-संतुलन का लेन-देन एक दिए हुए वर्ष में सभी विदेशी प्राप्तियों तथा भुगतानों को सम्मिलित करता हैं। भुगतान शेष लेखा की दोहरी-प्रविष्टि (Double Entry) बहिखाता सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें प्रत्येक सौदा, बैलेंस शीट में क्रेडिट (लेनदरियाँ या प्राप्तियाँ) तथा डेबिट (देनदारियाँ या भुगतान) पक्ष में दर्ज किया जाता है। प्राप्तियों में विदेशी विनिमय के सभी प्रकार के अर्जन (Earnings) तथा उधार (Borrowings) सम्मिलित होते हैं जो कि क्रेडिट मद के रूप में रिकार्ड किया जाता है। भुगतानों में विदेशी विनिमय के सभी प्रकार के व्यय तथा दिए गए उधार सम्मिलित किए जाते हैं और इसे डेबिट मद के रूप में रिकार्ड किया जाता है।

इस प्रकार सभी प्रकार की विदेशी प्राप्तियाँ एक वर्ष में हुए समस्त वित्तीय अंतर्प्रवाह को तथा समस्त भुगतान वित्तीय बर्हिप्रवाह को बताता है।

14.4 भुगतान संतुलन के घटक (Components of Balance of Payment)

भुगतान संतुलन के घटक अंतर्गत मुख्यत: 6 प्रमुख खाते होते हैं-

1. वस्तु खाता
2. सेवा खाता
3. एकपक्षीय हस्तांतरण खाता
4. दीर्घकालिक पूँजी खाता
5. अल्पकालिक पूँजी खाता
6. अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाता

1.वस्तु खाता (Commodity Account)- इसके अंर्तगत दृश्य वस्तुओं का लेन-देन आता हैं। व्यापारिक वस्तु के निर्यात से प्राप्त विदेशी मुद्रा को प्राप्तियों तथा उनके आयात पर व्यय विदेशी मुद्रा को भूगतानों के अंर्तगत सम्मिलित किया जाता है। यदि वस्तु के निर्यातों का मूल्य, वस्तुओं के आयातों के मूल्य से अधिक होगा तो वस्तु-खाता धनात्मक होगा जो कि उस देश के 'पक्ष' में या अनुकूल कहा जाएगा, जबकि आयातों के मूल्य को निर्यातों के मूल्य से अधिक होने पर ऋणात्मक वस्तु-खाता उस देश के विपक्ष में होगा।

2.सेवा खाता (Service Account)- वस्तुओं की तरह ही सेवाओं का भी व्यापार निर्यात-आयात होता है। सेवा खाते में एक देश द्वारा एक वर्ष के किए गए सभी सेवाओं के निर्यातों तथा आयातों का ब्यौरा होता है। चूँकि सेवाएँ वस्तुओं की तरह दृश्य नहीं होती है इसलिए सेवाओं के लेन-देन को भुगतान संतुलन की अदृश्य मदें कहा जाता है। व्यापारिक वस्तुओं की तरह बंदरगाहों पर इनकी आवाजाही रिकार्ड नहीं की जाती है। सेवा खातें में मुख्यतः निम्नलिखित सेवाएँ सम्मिलित है-

a) परिवहन, बैकिंग तथा बीमा

b) पर्यटन, यात्रा सेवाएँ, पर्यटनों द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं की खरीद

c) शिक्षा सेवाएँ

d) सरकरों द्वारा दूतावासों और उनके स्टाफ पर होने वाला व्यय

e) डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक आदि विशेषज्ञों की सेवाएँ

f) ब्याज, लाभ, लाभांश तथा रॉयल्टी इन मदों को 'निवेश आय' कहा जाता है।

एक देश द्वारा परिवहन, बैंकिंग तथा बीमा सेवाओं से प्राप्त आयय पर्यटन, यात्रा सेवाएँ, विदेशी पर्यटकों द्वारा किए गए व्यय, विदेशी छात्रों द्वारा देश में किए गए व्ययय विदेशी सरकारों द्वारा उनके दूतावासों इत्यादि पर हुए व्यय देश के डॉक्टरों , इंजीनियरों आदि विशेषज्ञों की प्राप्तियाय विदेशी देश से ब्याज , लाभ, लाभांश तथा रायल्टी के रूप में प्राप्त निवेश आय सभी मिलाकर सेवा खाते पर या अदृश्य मदों से प्राप्त आय है। जबकि इन सभी अदृश्य मदों पर होने वाले व्यय एक देश के सेवाओं पर हुए भुगतानों को दर्शाता है। यदि सेवाओं के निर्यात (प्राप्तियों) तथा आयात (भुगतानों) का अंतर धनात्मक है तो यह उस देश के पक्ष में होगा और यदि भुगतान प्राप्तियों से अधिक है तो उस देश के सेवा-खाते पर घाटा होगा।

3.एक पक्षीय हस्तांरण खाता (Unilateral Transfer Account)- इस खातें में सभी प्रकार के उपहार अनुदान सहायता इत्यादि सम्मिलित है। यह दो प्रकार का हो सकता है एक सरकारी और दूसरा निजी। विदेश आर्थिक सहायता और अनुदान या विदेश सैनिक सहायता और अनुदान एक देश की प्राप्तियों में सम्मिलित होगा , जबकि इस देश द्वारा दूसरे देशों को दी गयी आर्थिक तथा सैनिक सहायता व अनुदान उसके भुगतानों में सम्मिलित होंगे। चूँकि इनके बदले किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है और यह सिर्फ एकपक्षीय प्रवाह को दर्शाता है, इसलिए इसे एकपक्षीय हस्तांतरण प्रप्तियाँ या भुगतान कहा जाता है।

4.दीर्घकालिक पूँजी खाता (Long term Capital Account)- इसके अंर्तगत उन विनियोगों को सम्मिलित किया जाता है जो एक वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए किए जाते है। इस खाते को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

a) निजी प्रत्यक्ष निवेश

b) निजी पोर्टफोलियो निवेश

c) सरकारी उधार या ऋण

यदि देश के नागरिकों तथा कम्पनियों द्वारा विदेशों में प्रत्यक्ष निवेश किया जा रहा है तो यह डेबिट पक्ष (देनदारियों) में सम्मिलित होगा तथा यदि विदेशी नागरिक तथा कम्पनियाँ घरेलू देश में प्रत्यक्ष निवेश कर रही है तो यह भुगतान-संतुलन के क्रेडिट-पक्ष (लेनदारियों) में सम्मिलित होगा।

इसी प्रकार, देश के नागरिकों तथा कम्पनियों द्वारा विदेशी प्रतिभूतियों या स्टॉक या बॉन्ड या शेयर में किया गया निवेश डेबिट तथा विदेशियों द्वारा घरेलू प्रतिभूतियों , स्टॉक, बांड, शेयर इत्यादि में किया गया निवेश क्रेडिट पक्ष में सम्मिलित होगा।

प्रत्यक्ष निजी निवेश में पूँजी प्रवाह घरेलू देश और विश्व के अन्य देशों में लाभ दर के अंतर पर निर्भर करती है। यदि घेरलू पदेश में लाभ की दर (Profit Rate) शेष विश्व से अधिक है तो देश के अंदर प्रत्यक्ष विदेश निवेश के रूप में पूँजी का अंर्तप्रवाह बढ़ेगा। इसी प्रकार , पोर्टफोलियो निवेश के अंर्तगत पूँजी का अंर्त या वाह्य प्रवाह घरेलू देश और शेष-विश्व में ब्याज दर , लाभांश या पूँजी पर प्रतिफल की दर के बीच अंतर पर निर्भर करेगा।

यदि घरेलू देश द्वारा विदेशी सरकार या देश को ऋण दिया जाता है तो वह भुगतान-संतुलन के डेबिट तथा यदि विदेशी देश द्वारा घरेलू देश को ऋण दिया जाता है तो क्रेडिट पक्ष में सम्मिलित होगा।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दीर्घकालिक पूँजी खाता देश के अंदर या बाहर नए पूँजी प्रवाह को सम्मिलित करता है। पूर्व के कुल दीर्घकालिक पूँजी निवेश का प्रभाव सेवा खाते के पूँजी सेवाओं से प्राप्त आय (निवेश आय) पर पड़ता है। यदि एक देश ऋण देने वाला और विदेशों में अत्यधिक पूँजी निवेश करने वाला देश है उसका दीर्घकालिक पूँजी खाते में घाटा हो सकता है परन्तु इससे सेवा खते में उसकी निवेश आय का प्राप्तियाँ बढ़ती है और यदि एक देश उधार लेने वाला और अत्यधिक विदेशी निवेश प्राप्त करने वाला देश है तो इससे उसके पूँजी खाते में अतिरेक होगा , परन्तु इससे निवेश आय के रूप में उस देश के भुगतान में वृद्धि होगी और सेवा खाते में वह घाटे का सामना कर सकता है।

5.अल्पकालिक पूँजी खाता (Short term Capital Account)- इस खाते के अंर्तगत वे अल्पकालिक पूँजी मदें आती हैं जो कि एक वर्ष से कम की अवधि के लिए होती है। इसके अंर्तगत बैक जमाएं , सरकारों के अल्पकालीन बांड और अन्य अल्पकालिक भुगतान तथा प्राप्तियाँ आती हैं। अल्पकालिक पूँजी लेन-देन में ज्यादातर हिस्सा व्यापार तथा वाणिज्य के वित्तियन के लिए बैंक हस्तांतरण होते हैं।

कुछ देशों में, अल्पकालिक पूँजी खाते को "भूल-चूक" (Error and Omission) खाता भी कहा जाता है। कुल देशों में इसे "गैर विवरणी लेन-देन खाता" (Unrecorded Transactions) कहते हैं।

इन खातों में अल्पकालिक पूँजी लेन-देन के अतिरिक्त निम्नलिखित मदें सम्मिलित होती हैं-

(क) सांख्यकीय और विवरणीय भूल (Statistical & Recording Errors)

(ख) स्मगलिंग (Smugling)

(ग) गैर-कानूनी तथा गोपनीय पूँजी प्रवाह (Illegal and Secret Capital Flow)

(घ) अपूर्ण अनुमान प्रक्रिया (Imperfect Estimation Procedures)

वास्तव में 'भूल-चूक' एक तरह से अप्रमाणित व्यवसायों से संबंधित लेन-देन को दर्शाते हैं।

6.अर्न्तराष्ट्रीय तरलता खाता (International Liquidity Account)- यह खाता भुगतान-संतुलन के घाटे या अतिरेक के समायोजन से संबंधित है जो कि साधे तौर पर विदेशी रिजर्वों में परिवर्तन को है। इसलिए यह एक तरह से आधिकारिक व्यवस्थापन खाता (Official Settlement Account) है। यह खाता अंतर्राष्ट्रीय दायित्वों के व्यवस्थापन के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य सभी साधनों को सम्मिलित करता है।

यदि एक देश के ऊपर से सभी 5 खातों की प्राप्तियों का योग उसके कुल भुगतानों से कम है तो इसका अर्थ यह है कि डेबिट भुगतान के क्रेडिट प्राप्तियों से अधिक देने के कारण इसे भुगतान-संतुलन में घाटे का सामना करना पड़ रहा है। इस घाटे को पूरा करने के लिए यह देश निम्नलिखित में से किसी एक उपाय या तीनों उपायों का सहारा ले सकता है-

(क) घाटे के बराबर सोने का निर्यात या बिक्री

(ख) घाटे के बराबर पहले से संचित विदेशी मुद्रा भण्डार में से निकासी

(ग) घाटे के बराबर , मित्र देशों या अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से अल्पकालिक या दीर्घकालिक उधार।

इस प्रकार, ऊपर के 5 खातों पर हुए घाटे का वित्तियन किया जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाते में क्रेडिट पक्ष में प्राप्तियों को दर्शाना उसी मात्रा में उस वर्ष में भुगतान-शेष के घाटे को बताता है।

ठीक इसी प्रकार यदि एक देश में भुगतान-संतुलन के 5 खातों की प्राप्तियों का योग उसके भुगतानों से अधिक है तो यह उसके भुगतान-शेष के अतिरेक को दर्शाता है और उतनी मात्रा के बराबर अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाते के डेबिड पक्ष में भुगतान को दर्शाया जाएगा। यह डेबिट या भुगतान निम्नलिखित रूप में हो सकता है-

(क) अतिरेक के बराबर सोने की खरीद या आयात

(ख) विदेशी मुद्रा भण्डार में अतिरेक के बराबर वृद्धि

(ग) दूसरे देशों को , अतिरेक के बराबर के ऋण।

निम्नलिखित सारणी से आप भुगतान- संतुलन के विभिन्न खातों तथा अवधारणाओं को समझ सकते हैं-

सारणी 1 भुगतान-संतुलन के विभिन्न खातें

	क्रेडिट (लेनदरियाँ)- प्राप्तियाँ	डेबिट (देनदारियाँ) भुगतान
(1) वस्तु-खाता	दृश्य वस्तुओं का निर्यात	दृश्य वस्तुओं का आयात
(2) सेवा-खाता	अदृश्य मदों या सेवाओं का निर्यात (क) परिवहन , बैंकिंग तथा बीमा सेवाओं से प्राप्तियाँ (ख) विदेशियों द्वारा देश में पर्यटन , यात्रा सेवाएँ , वस्तुओं एवं सेवाओं की खरीद से हुई प्राप्तियाँ (ग) देश में पढ़ रहे विदेशियों द्वारा हुई प्राप्तियाँ (घ) डॉक्टर , इंजीनियर, वैज्ञानिक इत्यादि विशेषज्ञों की सेवाओं से विदेश में हुई प्राप्तियाँ (ङ) विदेशी सरकार द्वारा दूतावासों और उनके स्टाफ पर व्यय (च) भारतीय कंपनियों द्वारा विदेशों में किए गए दीर्घकालिक निवेशों से प्राप्त ब्याज , लाभ, लाभांश तथा रायल्टी	अदृश्य मदों या सेवाओं का आयात (क) परिवहन , बैंकिंग तथा बीमा सेवाओं के लिए विदेशी देश का भुगतान (ख) पर्यटन , यात्रा सेवा , वस्तुओं एवं सेवाओं की भारतीय पर्यअकों द्वारा विदेशों में खरीद पर व्यय (ग) विदेशों में पढ़ रहे छात्रों द्वारा किया गया व्यय (घ) विदेशी डॉक्टर , इंजीनियर, वैज्ञानिकों द्वारा सेवाओं पर हुए भुगतान (ङ) घरेलू सरकार द्वारा दूतावास व स्टाफ पर व्यय (च) विदेशी कंपनियों द्वारा देश में किए गए दीर्घकालिक निवेशों से प्राप्त ब्याज , लाभ, लाभांश तथा रायल्टी का भुगतान।

(3) एकपक्षीय हस्तांतरण खाता	विदेशी सरकारों या निजी व्यक्तियों से प्राप्त उपहार , दान, अनुदान, सहायता इत्यादि।	घरेलू देश की सरकार या निजी व्यक्तियों द्वारा विदेशी सरकारों या व्यक्तियों को दिए गए उपहार , दान, सहायता इत्यादि।
(4) दीर्घकालिक पूँजी खाता	(क) विदेश के नागरिकों तथा कम्पनियों द्वारा किया गया प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (ख) विदेशी नागरिकों तथा फर्मों द्वारा घरेलू प्रतिभूतियाँ , बांडों, शेयरों इत्यादि में किया गया पोर्टफालियो निवेश (ग) घरेलू सरकार द्वारा विदेशी सरकारों या संस्थाओं से किया गया उधार	(क) घेरलू नागरिकों तथा कम्पनियों द्वारा विदेशों में किया गया प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (ख) घरेलू नागरिकों तथा फर्मों द्वारा विदेशों में प्रतिभूतियाँ, बांडों, शेयरों इत्यादि में किया गया निवेश (ग) विदेशी सरकारों द्वारा देश से लिया गया उधार
(5) भूल-चूक, जिसमें अल्पकालिक पूँजी खाता सम्मिलित हो	(क) एक वर्ष से कम की अवधि के लिए विदेशों से प्राप्त बैंक जमाएँ इत्यादि। (ख) अप्रमाणित व्यवसायों से प्राप्तियाँ	(क) एक वर्ष से कम की अवधि के लिए विदेशी देश को किए गए अल्पकालिक बैंक हस्तांतरण (ख) अप्रमाणित व्यवसायों में किया गया भुगतान
(6) अंतर्राष्ट्रीय तरलता अनुपात	(क) सोने का निर्यात (ख) विदेशी मुद्रा भण्डार में कमी (ग)मित्र देशों या अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से उधार	(क) सोने का अयात (ख) विदेशी मुद्रा भण्डार में वृद्धि (ग) विदेशी देशों को उधार

14.5 सारांश (Summary)

भुगतान संतुलन किसी देश का वह लेखा-जोखा है जो एक निश्चित समय में उसके विदेशों के साथ हुए सभी आर्थिक लेन-देन को दर्शाता है। यह मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा जा सकता है- चालू खाता, पूँजी खाता और आधिकारिक आरक्षित खाता।

चालू खाते में आप वस्तुओं और सेवाओं के आयात-निर्यात को देखते हैं। जब कोई देश वस्तुओं का निर्यात करता है तो उसे विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है , जबकि आयात पर उसे भुगतान करना पड़ता है। सेवाओं के व्यापार में परिवहन, बैंकिंग, पर्यटन जैसी गतिविधियाँ शामिल होती हैं। साथ ही , एकपक्षीय हस्तांतरण जैसे विदेशों से प्राप्त उपहार या अनुदान भी इसी में आते हैं।

पूँजी खाता विदेशी निवेश और ऋण से संबंधित होता है। इसमें प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पोर्टफोलियो निवेश और सरकारी ऋण जैसी मदें शामिल होती हैं। अल्पकालिक पूँजी प्रवाह में बैंक जमाएँ और व्यापारिक ऋण आते हैं।

जब चालू खाते और पूँजी खाते का योग शून्य नहीं होता , तो इस असंतुलन को आधिकारिक आरक्षित खाते के माध्यम से संतुलित किया जाता है। इसमें देश अपने विदेशी मुद्रा भंडार या सोने के भंडार का उपयोग करता है या फिर अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से ऋण लेता है।

भुगतान संतुलन हमें किसी देश की आर्थिक स्थिति का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है। यह बताता है कि देश विदेशों से कितना कमा रहा है और कितना खर्च कर रहा है। सरकारें और अर्थशास्त्री इस डेटा का उपयोग करके देश की आर्थिक नीतियों को बनाते और समायोजित करते हैं।

14.6 शब्दावली (Glossary)

- **भुगतान-संतुलन निपटान (Balance of Payment Settlement)-** जब भुगतान-संतुलन में लेखांकन संतुलन समायोजक लेन-देन या अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाता की सहायता से ले आया जाता है तो उसे भुगतान-संतुलन का निपटान कहते हैं।
- **भुगतान-संतुलन समायोजन (Balance of Payment Adjustment)-** जब भुगतान-संतुलन में लेखांकन संतुलन , समायोजक लेन-देन की सहायता के बिना होता है तो इसे भुगतान-संतुलन समायोजन कहा जाता है।
- **भुगतान-संतुलन का पूर्ण रोजगार (Full Employment of Balance of Payment)-** यदि भुगतान-संतुलन में बिना वाणिज्यिक नीति का सहारा लिए तथा देश के सकल राष्ट्रीय आय में स्फीतिकारी या अवस्फीतिकारी अंतराल उत्पन्न किए, संतुलन ले आया जाता है तो यह सही मायने में संतुलन या पूर्ण रोजगार संतुलन कहा जाता है। परन्तु यदि यह संतुलन व्यापार पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों और इसके कारण अर्थव्यवस्था में मुद्रा-स्फीति या बेरोजगार उत्पन्न हुई है, तो यह पूर्ण रोजगार संतुलन नहीं होगा।

14.7 अभ्यास प्रश्नों उत्तर (Practice Question Answer)

1. भुगतान संतुलन में किस प्रकार के लेन-देन शामिल होते हैं?

a) केवल वस्तुओं का व्यापार

b) केवल सेवाओं का व्यापार

c) वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी और एकपक्षीय हस्तांतरण

d) केवल सरकारी लेन-देन

2. भुगतान संतुलन के किस खाते में पर्यटन और बैंकिंग सेवाएँ दर्ज की जाती हैं?

a) पूँजी खाता

b) चालू खाता

c) आधिकारिक आरक्षित खाता

d) व्यापार खाता

3. यदि किसी देश का वस्तु निर्यात, वस्तु आयात से अधिक है, तो उसका क्या अर्थ है?

a) व्यापार घाटा

b) व्यापार अधिशेष

c) चालू खाता संतुलित है

d) पूँजी खाता घाटा

4. विदेशी मुद्रा भंडार में परिवर्तन भुगतान संतुलन के किस खाते में दर्ज किया जाता है?

a) चालू खाता

b) पूँजी खाता

c) आधिकारिक आरक्षित खाता

d) एकपक्षीय हस्तांतरण खाता

उत्तर- 1- C 2- B 3- B 4- C

14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- Bo Sodersten, International Economics (Macmillan, 1999)
- Charles P Kindleberger, International Economics, (Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968)
- D. M. Mithani, International Economics,(Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006)
- H. G. Mannur; International Economics (Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001)
- Ingo Walter; International Economics: Theory and Policy, (Ronald Press, New York 1968).
- K.R. Gupta: International Economics; (Atma Ram Pub. Delhi, 1969)
- Paul Krugman, Maurice Obstfeld and Marc J. Melitz; International Economics: Theory and Policy (Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.).
- Robert M. Dunn, and John H. Mutti; International Economics, (Routledge, London, 2004).
- V.K. Bhalla; International Economy: Liberalisation Process (Anmol Pub. Delhi, 1993).
- एस०एन०लाल; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र (शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004)
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला: अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ;(लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा, 2003).
- डालचंद्र बागड़ी; अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ,(अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2009).
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य ; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, (ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन , नई दिल्ली, 2007)

- एम०एल०झिंगन; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र: (वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010)

14.9 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)

- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- H. G. Mannur, International Economics ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.
- एस० एन०लाल , अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य , अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन , नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- डॉ. जी. सी. सिंघई एवं डॉ. जे. पी. मिश्रा , अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त , साहित्य भवन पब्लिकेशंस,आगरा, 2010.

14.10 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1.”भुगतान संतुलन सदैव सन्तुलित रहता है” यदि ऐसा है तो फिर हम किसी देश के भुगतान-संतुलन में अतिरेक या घाटे की चर्चा क्यों करते हैं?

2.भुगतान संतुलन में आधिकारिक आरक्षित खाते की भूमिका क्या है? विदेशी मुद्रा भंडार और भुगतान संतुलन के बीच संबंध को उदाहरण सहित समझाइए।

3.भुगतान संतुलन क्या है? इसके प्रमुख घटकों की व्याख्या कीजिए। साथ ही, चालू खाता घाटा और पूँजी खाता अधिशेष के बीच संबंध को समझाइए।

इकाई-15 विदेशी विनिमय एवं नियन्त्रण

15.1 प्रस्तावना (Introduction)
15.2 उद्देश्य (Objectives)
15.3 विदेशी विनिमय (Foreign Exchange)
15.3.1 विदेशी विनिमय का अभिप्राय (Meaning of Foreign Exchange)
15.3.2 विदेशी विनिमय के तरीके (Foreign Exchange Methods)
15.3.3 विदेशी विनिमय की समस्या के कारण (Reason of Foreign Exchange Problem)
15.4 विनिमय नियंत्रण (Exchange Control)
15.4.1 विनिमय नियंत्रण का अर्थ (Meaning of Exchange Control)
15.4.2 विनिमय नियंत्रण की विशेषताएँ (Features of Exchange Control)
15.4.3 विनिमय नियंत्रण के उद्देश्य (Objectives of Exchange Control)
15.5 विनिमय नियंत्रण की विधियाँ (Methods of Exchange Control)
15.5.1 प्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण (Direct Exchange Control)
15.5.2 अप्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण (Indirect Exchange Control)
15.6 विनिमय नियंत्रण का प्रभाव (Effects of Exchange Control)
15.7 विनिमय नियंत्रण के गुण व दोष (Merits and Demerit of Exchange Control)
15.8 सारांश (Summary)
15.9 शब्दावली (Glossary)
15.10 अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Question Answer)
15.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
15.12 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)
15.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत इकाई में विदेशी विनिमय एवं नियत्रंण को स्पष्ट किया जाएगा। साथ ही विदेशी विनिमय के तरीके और विदेशी विनिमय की समस्या पर प्रकाश डाला जाएगा। इसके अतिरिक्त आप जानेगें कि कैसे प्रथम विश्व युद्ध के दौरान तथा उसके बाद विदेशी विनिमय लेनदेनों पर देशों द्वारा नियंत्रण किया जाने लगा था। 1930 की महामंदी ने इसे ओर आवश्यक बना दिया और देशों द्वारा अपने भुगतान शेष को संतुलित बनाये रखने हेतु विनिमय नियंत्रण के विभिन्न तरीकों को अपनाया जाने लगा। यद्यपि 1950 से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विनिमय नियंत्रण में कमी होने लगी है फिर भी इस स्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है तथा देशों द्वारा किसी न किसी रूप में विनिमय नियंत्रण भी अपनाया जा रहा है।

प्रस्तुत इकाई विभिन्न देशों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दशा में विदेशी विनिमय और विदेशी नियत्रंण को समझने में अत्यन्त सहायक है।

15.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम यह समझ सकेगें कि -

- ✓ विदेशी विनिमय का अर्थ और इसके विभिन्न तरीको से परिचित हो सकेंगे।
- ✓ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विदेशी विनिमय की समस्या को समझ सकेंगे।
- ✓ विनिमय नियंत्रण का अर्थ और इसके विभिन्न तरीको से अवगत हो सकेंगे।

15.3 विदेशी विनिमय (Foreign Exchange)

15.3.1 विदेशी विनिमय का अभिप्राय (Meaning of Foreign Exchange)

साधारणतया अन्य देशों की मुद्राओं को विदेशी विनिमय के अर्थ के रूप में प्रयुक्त किया जाता है , परन्तु विदेशी विनिमय शब्द का प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में निम्नवत दो अर्थों में किया जाता है-

(अ) संकुचित अर्थ में - इसका प्रयोग निम्नलिखित अर्थो में किया जाता है-

1. विदेशी मुद्राओं के रूप में (As Foreign currencies)- कुछ अर्थशास्त्री विदेशी विनिमय से अभिप्राय विदेशी मुद्राओं से लगाते हैं अर्थात् जब यह कहा जाता है कि बैंक विदेशी मुद्रा का क्रय-विक्रय कर रहे हैं तब इसका सन्दर्भ विदेशी मुद्राओं से ही होता है। सामान्यतया विदेशी विनिमय का प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता है। उदाहरणार्थ, भारत के लिए अन्य देशों की मुद्रायें- यूरो, डॉलर व पौण्ड, यूआन आदि विदेशी विनिमय है।

2. विदेशी विनिमय दर के रूप में (As Foreign Exchange)- विदेशी विनिमय का अभिप्राय विदेशी विनिमय दर से भी लिया जाता है अर्थात् जिस दर पर एक देश की मुद्रा किसी दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्तित की जाती है। सेयर्स के शब्दों में , "चलन मुद्राओं के परस्पर मूल्यों को ही विदेशी विनिमय दर कहा जाता है। " इसलिए जब यह कहा जाता है कि विनिमय दर किसी देश के अनुकूल अथवा प्रतिकूल है , तब इसका अभिप्राय विदेशी विनिमय दर से होता है।

इसके अतिरिक्त, विदेशी विनिमय का प्रयोग कभी-कभी उन सुविधाओं के लिए भी किया जाता है जो विदेशी भुगतानों से सम्बन्धित होती हैं।

(ब) विस्तृत अर्थ में (In Broad Sence)- विदेशी विनिमय का प्रयोग उन सभी क्रियाओं एवं विधियों से लिया जाता है जिनके द्वारा दो या दो से अधिक देशों के व्यापारी अपने व्यावसायिक दायित्वों का भुगतान करते हैं। इस प्रकार विदेशी विनिमय के अन्तर्गत वे सभी संस्थायें जो विदेशी भुगतान करती हैं और वह दर जिस पर

विदेशी भुगतान किए जाते हैं , सम्मिलित होती हैं। साधारण शब्दों में ऐसे साधन जिनका उपयोग अंतर्राष्ट्रीय भुगतान में किया जाता है, विदेशी विनिमय कहलाता है।

15.3.2 विदेशी विनिमय के तरीके (Foreign Exchange Methods)

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की दशा में आयातो एवं निर्यातों के भुगतान हेतु देशों को विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है। अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों हेतु देशों द्वरा निम्नलिखित तरीकों का प्रयोग किया जा सकता है-

1. विदेशी विनिमय बिल (Foreign Exchange Bill)- यह एक लिखित आदेश अथवा प्रार्थना है जिसके अन्तर्गत वस्तु बेचने वाला क्रय करने वाले को विनिमय पत्र लिखता है , जिसमें यह आदेश होता है कि वह एक निश्चित अवधि के अन्दर उसमें अंकित राशि का भुगतान लेनदार को अथवा उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति को करा देगा। इस बिल के स्वीकार हो जाने पर यह विनिमय पत्र अपने ही देश में उन व्यक्तियों को बेच दिया जाता है जिन्हें आयात करने वाले देश को भुगतान करना है तथा यह विनिमय पत्र विदेशों में उन व्यक्तियों को भेज दिए जाते हैं जिन्हें ववे भुगतान करना चाहते हैं। इन लेनदारों के द्वारा विनिमय पत्र की यह राशि उस व्यक्ति से वसूल कर ली जाती है जिन्होंने शुरू में इस वस्तु का आयात करने के कारण स्वीकार किया था।

2. तार द्वारा स्थानान्तरण (Wired Transfer)- इसके अन्तर्गत एक देश के बैंक के द्वारा विदेश में स्थित अपनी शाखा को तार द्वारा सूचना दी जाती है कि एक निश्चित राशि का भुगतान व्यक्ति विशेष को कर दिया जाये। इस प्रकार यह एक देश से दूसरे देश को विदेशी विनिमय स्थानान्तरण का महत्त्वपूर्ण एवं द्रुत तरीका है।

3. बैंक ड्राफ्ट (Bank Draft)- बैंक ड्राफ्ट एवं बैंक द्वारा अपनी शाखा अथवा अन्य बैंक जिन के साथ इनका लेन-देन रहता है , को लिखा गया आदेश है जिसमें ड्राफ्ट में लिखित राशि का भुगतान जो ड्राफ्ट जारी करने वाले बैंक ने पहले ही प्राप्त कर ली है , वाहक द्वारा मांगे जाने पर कर दिया जाएगा। इसी प्रकार अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों में भी अंतर्राष्ट्रीय बैंकों अथवा विदेशी विनिमय बैंकों द्वारा ड्राफ्ट का प्रयोग किया जाता है जिसमें ऋणी अर्था आयातकर्ता स्वयं अपने बैंकों से बैंक ड्राफ्ट बना सकता है जो ऋणदाता को स्थानान्तरित कर दिया जाता है और वह अपने देश के बैंक अथवा शाखा से अंकित राशि प्राप्त कर लेगा।

4. साख-पत्र (Paper Letter)- इसमें साख पत्र जारी करने वाला बैंक किसी व्यक्ति को एक निश्चित राशि चेक अथवा बिल द्वारा एक निश्चित अवधि में निकालने का अधिकार देता है। इस पत्र के आधार पर जो राशि आयातकर्ता बैंक से प्राप्त करता है, निर्यातकर्ता उतनी ही राशि का निर्यात कर देता है। इसमें भुगतानकी गारण्टी साख पत्र जारी करने वाले बैंक की होती है। साख पत्र आयातकर्ता की दृष्टि से खण्डन करने योग्य तथा खण्डन न करने योग्य हो सकता है। यद्यपि निर्यातकर्ता खण्डन न करने योग्य साख पत्र को प्राथमिकता देता है।

उपर्युक्त तरीकों के अतिरिक्त विदेशी विनिमय का भुगतान घरेलू करेन्सी, स्वर्ण, यात्री चेक तथा अंतर्राष्ट्रीय मनी आर्डर आदि के द्वारा भी किया जा सकता है।

15.3.3 विदेशी विनिमय की समस्या के कारण (Reason of Foreign Exchange Problem)

अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों में विदेशी विनिमय की समस्या के उत्पन्न होने के मुख्य कारण इस प्रकार हैं-

1. विभिन्न मुद्राएं (Various Currencies)- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न देशों की मुद्राये नाम , आकार, मूल्य आदि में भिन्न-भिन्न होती हैं। इसके अतिरिक्त इन मुद्राओं की निर्गमन व्यवस्था भी अलग-अलग सिद्धान्तों एवं विधियों पर आधारित होती है। मुद्राओं की इन विभिन्नताओं के कारण एक देश की मुद्रा अन्य देशों में विनिमय के माध्यम और मूल्य मापक के रूप में मान्य नहीं होती है। अतः एक देश की मुद्रा अन्य देशों में मान्य नहीं होती अथवा अंतर्राष्ट्रीय अस्वीकृत के कारण विदेशी विनिमय की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

2. भुगतानों में प्रयुक्त साधन की समस्या (Problem of the Instrument used in Payments)- सामान्यतया एक देश दूसरे देश की **सुलभ मुद्रा** को अंतर्राष्ट्रीय भुगतान हेतु स्वीकार नहीं करता। ऐसी स्थिति में

भुगतान वस्तु अथवा स्वर्ण के रूप में स्वीकार किए जाते हैं। इन दोनों स्थितियों में वस्तु विनिमय प्रणाली का प्रचलन और स्वर्ण का अभाव वा उसके प्रति आकर्षण अंतर्राष्ट्रीय भुगतान प्रणाली को बहुपक्षीय और दीर्घकालिक बनाये रखने में बाधा उत्पन्न करता है। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों हेतु सर्वस्वीकृत साधन के अभाव में विदेशी मुद्राओं का ही प्रयोग करना पड़ता है जिससे विदेशी विनिमय की समस्या उत्पन्न होती है।

3. स्थायी विनिमय दरों का अभाव (Lack of Stable Exchange Rate)- विभिन्न देशों की मुद्राओं की विनिमय दरें निरन्तर बदलती रहती है जिसके कारण अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों के लिए विदेशी विनिमय के सौदे स्वतन्त्र व निर्बाध रूप से नहीं हो पाते हैं तथा आयात-निर्यात व्यवहार जोखिमपूर्ण हो जाता है। अतः विनिमय दरों में स्थायित्व के अभाव के कारण विदेशी विनिमय की समस्या उत्पन्न होती है।

4. मुद्राओं की मांग और पूर्ति में असन्तुलन (Imbalance between Currencies Demand and Supply)- अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कुछ मुद्राओं (दुर्लभ मुद्रायें) की मांग उनकी पूर्ति से कहीं अधिक होती है जबकि अल्पविकसित देशों की मुद्राओं (सुलभ मुद्रा) की पूर्ति उनकी मांग से अधिक होती है। इससे न केवल विदेशी समस्या उत्पन्न होती है बल्कि दुर्लभ मुद्राओं का मांग आधिक्य इसे अधिक दुष्कर बना देता है।

5. भुगतान हस्तान्तरण की समस्या (Payment Transfer Problem)- विदेशी विनिमय अंतर्राष्ट्रीय भुगतान के साधन के रूप में प्रयुक्त किए जाने के कारण सरकारी नियंत्रण के अधीन होता है। अतः इसमें अनेक औपचारिकतायें एवं जटिलतायें होती हैं। यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों का हस्तान्तरण बैंकों के माध्यम से किया जाता है तथापि इसमें अनेक समस्यायें एवं जोखिम सन्निहित होते हैं।

15.4 विनिमय नियंत्रण (Exchange Control)

15.4.1 विनिमय नियंत्रण का अर्थ (Meaning of Exchange Control)

विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत विदेशी विनिमय के स्वतंत्र लेनदेन को प्रतिबंधित कर दिया जाता है। इस स्थिति में विदेशी विनिमय बाजार में आर्थिक शक्तियों के मुक्त व्यवहार की बजाय राज्य अथवा सरकार द्वारा विदेशी विनिमय को नियंत्रित किया जाता है। इस प्रकार जब विदेशी विनिमय बाजार में विनिमय नियंत्रण पूर्णरूपेण होता है तब विदेशी विनिमय बाजार पूर्णतया सरकारी निर्णयों द्वारा संचालित होता है। यह विदेशी विनिमय के मुक्त लेनदेनों को पूर्णरूप से प्रतिबंधित कर देता है। ऐसी स्थिति में सरकार अथवा देश के केन्द्रीय बैंक का विदेशी विनिमय बाजार पर सम्पूर्ण नियंत्रण होता है। देश के निर्यातों तथा अन्य समस्त स्रोतों से अर्जित विदेशी प्राप्तियाँ केन्द्रीय बैंक के अधीन होती हैं और वह देश की आवश्यकताओं एवं प्राथमिकताओं के आधार पर आयातकों को विदेशी विनिमय का आबंटन करता है। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक विदेशी विनिमय की माँग एवं पूर्ति प्रवाहों में सन्तुलन स्थापित कर भुगतान संतुलन तथा अधिकारिक विनिमय दर को संतुलित बनाए रखने का प्रयास करता है।

15.4.2 विनिमय नियंत्रण की विशेषताएँ (Features of Exchange Control)

विनिमय नियंत्रण की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. सशक्त विदेशी विनिमय व्यवहारों का विनिमय नियंत्रण द्वारा केन्द्रीयकरण हो जाता है और उनका संचालन सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता है।
2. केन्द्रीय बैंक सरकारी विनिमय दर निश्चित करता है और इसे स्थिर रखने हेतु विदेशी करेंसियों की माँग-पूर्ति का नियमन करता है।

3. निर्यातकों द्वारा अर्जित समस्त विदेशी मुद्रा केन्द्रीय बैंक के पास जाती है और वह स्वदेशी मुद्रा में निर्यातकों को भुगतान करता है। इसी प्रकार आयातकों को विदेशी भुगतान करने हेतु विदेशी मुद्रा बेच दी जाती है।
4. लाइसेंस प्राप्त व्यापारी और विशिष्ट बैंक ही विदेशी विनिमय का लेनदेन कर सकते हैं।
5. विनिमय नियंत्रण के द्वारा व्यापार-संतुलन को अनुकूल बनाया जा सकता है क्योंकि आयातों को सीमित किया जा सकता है।

15.4.3 विनिमय नियंत्रण के उद्देश्य (Objectives of Exchange Control)

देश की सरकारों अथवा केन्द्रीय बैंक द्वारा समय-समय पर विनिमय नियंत्रण को अपनाया गया है जिसके उद्देश्य इस प्रकार हैं।

- **विनिमय दरों का स्थिरीकरण (Stabilization of Exchange Rate)-** मुक्त विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दरों में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं जिससे उद्योग तथा वाणिज्य को हानि पहुँचती है। इसलिए सरकार निश्चित विनिमय दर घोषित कर विनिमय नियंत्रण द्वारा उसे स्थिर बनाए रखती है।
- **विदेशी विनिमय का संरक्षण (Conservation of Foreign Exchange)-** विनिमय नियंत्रण द्वारा मौद्रिक प्राधिकारी आवश्यक अथवा विलासिता सम्बन्धी वस्तुओं के आयातों को प्रतिबंधित कर आवश्यक वस्तुओं के आयातों हेतु विदेशी विनिमय की आपूर्ति कर सकते हैं।
- **पूँजी बहिर्गमन पर रोक (Restrictions on Capital Outflow)-** राजनीतिक एवं आर्थिक कारणों से यदि विदेशों में पूँजी का विनियोग होने लगे तो देश के स्वर्ण एवं विदेशी कोष समाप्त हो सकते हैं। अतः विनिमय नियंत्रण द्वारा पूँजी के बहिर्गमन को राका जा सकता है।
- **विदेशी ऋण का पुनर्भुगतान (Repayment of Foreign Debt)-**देश,विदेशी ऋण के मूल और ब्याज का भुगतान करने के लिए विनिमय नियंत्रण को अपनाकर विदेशी विनिमय अर्जित कर सकता है।
- **प्रतिकूल भुगतान संतुलन को सुधारना (Correction of Adverse Balance of Payment)-** देश अपने भुगतान संतुलन के घाटे को पूरा करने हेतु विनिमय नियंत्रण द्वारा आयातों को सीमित कर सकता है।
- **प्रभावी आर्थिक आयोजन (Effective Economic Planning)-**देश में आर्थिक आयोजन की सफलता हेतु विदेशी व्यापार का आयोजित कार्यक्रमों के साथ समन्वय आवश्यक है जिससे घरेलू उद्योगों हेतु आवश्यक पूँजी उपलब्ध हो सके। इस उद्देश्य हेतु विनिमय नियंत्रण अतिआवश्यक है।
- **घरेलू उद्योगों का संरक्षण (Protection of Domestic Industries)-** विनिमय नियंत्रण द्वारा घरेलू उत्पादकों तथा उद्योगों को आयात सीमित कर विदेशी व्यापारियों की प्रतियोगिता से संरक्षण प्रदान किया जा सकता है। विशेषतया शिशु उद्योगों और आत्मनिर्भरता प्राप्त करने हेतु ऐसा किया जाना आवश्यक है।
- **मुद्रा का अधिमूल्यन (Overvaluation of Currencies)-** देश विनिमय नियंत्रण द्वारा मुद्रा की कीमत अन्य देशों की तुलना में अधिक घोषित कर आवश्यक कच्चामाल , उपभोग वस्तुओं तथा सैन्य सामग्री आदि सस्ती कीमत पर आयात कर सकता है। किन्तु यह एक अल्पकालीन उपाय है क्योंकि इससे निर्यात महँगें तथा आयात सस्ते होने के कारण भुगतान संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।
- **मंदी के विस्तार पर रोक (Halting the expansion of the Recession)-** अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के कारण विकसित देश आयातों एवं निर्यातों के द्वारा मंदी का विस्तार अन्य देशों में भी कर सकते हैं जिन्हें विनिमय नियंत्रण द्वारा उसी देश तक सीमित रखा जा सकता है।

- **राजस्व की प्राप्ति (Revenue Receipts)-** विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत सरकार द्वारा अधिकृत केन्द्रीय बैंक अन्य देशों से क्रय की गई विदेशी करेंसी को ऊँची कीमत पर देश के व्यापारियों व नागरिकों को बेचकर राजस्व प्राप्त कर कता है।

15.5 विनिमय नियंत्रण की विधियाँ (Methods of Exchange Control)

विनिमय नियंत्रण विधियों को मुख्यतया दो रूपों- प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष में विभाजित किया जा सकता है।

15.5.1 प्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण (Direct Exchange Control)

प्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण विदेशी विनिमय को उनकी मात्रा , प्रयोग एवं आवंटन की दृष्टि से प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित करते हैं और इनका क्रियान्वयन केन्द्रीय बैंक के द्वारा किया जाता है। ये निम्नवत् हैं-

- **सरकारी हस्तक्षेप (Government Intervention)-** सरकारी हस्तक्षेप के अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक विनिमय दर को ऊँचा अथवा नीचा रखने हेतु विदेशी विनिमय बाजार में हस्तक्षेप करता है। इसे कीलित विनिमय दरें कहा जाता है। यदि केन्द्रीय बैंक घरेलू करेंसी की विनिमय दर को विदेशी विनिमय बाजार में प्रचलित विनिमय दर से नीची निर्धारित करता है तो इसे **नीचे कीलना** कहते हैं। ऐसी स्थिति में केन्द्रीय बैंक विदेशी करेन्सियों के बदले स्थानीय करेंसी को निर्धारित दरों पर बेचता है क्योंकि नीची विनिमय दर पर स्थानीय करेंसी की माँग उनकी पूर्ति से अधिक होती है। इसलिए स्थानीय करेंसी की उपलब्धता अधिक मात्रा में आवश्यक होती है। इसके विपरीत , यदि केन्द्रीय बैंक वर्तमान विनिमय दर की अपेक्षा घरेलू करेंसी की ऊँची विनिमय दर निर्धारित करता है तो इसे **ऊपर कीलना** कहते हैं। ऐसी स्थिति में घरेलू करेंसी की माँग उसकी पूर्ति से कम होती है और निर्धारित विनिमय दर पर केन्द्रीय बैंक को विदेशी करेन्सियों के बदले घरेलू करेंसी को क्रय करना होता है। फलस्वरुप विदशी करेंसियों की अधिक आवश्यकता होती है। उपर्युक्त दोनों स्थितियों में केन्द्रीय बैंक को घरेलू करेंसी अथवा विदेशी करेंसी के विशाल संसाधनों की आवश्यकता होती है। इसलिए ऊँचा कीलना की तुलना में नीचा कीलना केन्द्रीय बैंक हेतु अधिक व्यावहारिक होता है। केन्द्रीय बैंक द्वारा इस प्रकार हस्तक्षेप मुक्त विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दरों में होने वाले उच्चावचनों को रोकने हेतु अल्पकालीन उपाय के रूप में अपनाया जा सकता है।
- **विनिमय प्रतिबंध (Exchange Restrictions)-** विनिमय प्रतिबंध के अन्तर्गत सरकारी विनिमय नियंत्रण प्राधिकरण अर्थात् केन्द्रीय बैंक विदेशी विनिमय बाजार में घरेलू करेंसी की पूर्ति को अनिवार्य रूप से कम अथवा प्रतिबंधित कर देता है। ऐसा करने हेतु सरकार सभी प्रकार के विदेशी विनिमय व्यापार को स्वयं अर्थात् केन्द्रीय बैंक तक सीमित कर सकता है। विदेशी करेंसी के बदले में घरेलू करेंसी के विनिमय को प्रतिबंधित कर सकता है। इसके अतिरिक्त , सरकार विदेशी विनिमय लेनदेन हेतु सरकारी अभिकरण को अधिकृत कर सकता है।

विनिमय प्रतिबंध के अनेक रूप होते हैं जिनमें अधिकांशतः निम्नलिखित प्रयोग किए जाते है-

- **बहु-विनिमय दरें (Multi Exchange Rates)-** इसके अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक आयातों एवं निर्यातों के विभिन्न वर्गों एवं श्रेणियों हेतु अलग-अलग विनिमय दरें निर्धारित करता है जिसका उद्देश्य आयातों में कमी करना और निर्यातों के वृद्धि करना है जिससे भुगतान संतुलन को ठीक किया जा सके। उदाहरण के लिए आवश्यक वस्तुओं के आयात हेतु केन्द्रीय बैंक अपेक्षाकृत नीची विनिमय दर तथा विलासिता वाली वस्तुओं हेतु ऊँची दर निर्धारित कर सकता है। इसी प्रकार केन्द्रीय बैंक ऊँची विनिमय दर रखकर निर्यातकों को सहायिकी दे सकता है। प्रायः अदृश्य मदों और पूँजी हस्तान्तरणों की विनिमय दर अपेक्षाकृत ऊँची निर्धारित की जाती हैं। इसके अतिरिक्त विनिमय दरें वस्तुओं की माँग की लोच के आधार पर भी निर्धारित की जाती हैं।

बहु-विनिमय दर प्रणाली का प्रभाव आयात पर लगने वाले प्रशुल्क और निर्यात पर दी जाने वाली सहायिकी के समान होता है। साथ ही यह भुगतान संतुलन को ठीक करने का एक प्रभावी उपाय है। इसकी सबसे बड़ी कमी यह है कि यह भुगतान संतुलन को ठीक करने की बजाय अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को सीमित कर विश्व स्तर पर उत्पादन व कल्याण को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है।

- **अवरुद्ध खाते (Blocked Accounts)-** देश में वित्तीय संकट की स्थिति में ऋणी देश अपने ऋणदाता देशों के खातों को अवरुद्ध कर सकता है। इसके अन्तर्गत आयातों का भुगतान विदेशी निर्यातकर्ताओं के अवरुद्ध खातों में जमा कर दिए जाते हैं और उन खातों से उन्हें मुद्रा निकालने की मनाही कर दी जाती है। किन्तु नियन्त्रणकर्ता देश इन अवरुद्ध खातों को अपने काम में ले सकता है। इस योजना के अन्तर्गत अन्य देशों के ऋणदाताओं को भुगतान ऋणी द्वारा सीधे तौर पर न कर देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा किए जाते हैं जहाँ विदेशी ऋणदाताओं के नाम खाते होते हैं। यह भुगतान राशि विदेशियों को उनकी करेंसी में नहीं प्राप्त होती बल्कि नियंत्रणकर्ता देश में क्रय हेतु प्रयोग की जाती है। इसका प्रयोग सर्वप्रथम 1931 में जर्मनी द्वारा किया गया था। इस प्रणाली की कमी यह है कि यह अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को न्यूनतम स्तर पर ले आती है और विदेशी विनिमय की कालाबाजारी को जन्म देती है।
- **प्राथमिकताओं के अनुसार आवंटन (Allocation according to priorities)-** इसके अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक आयातों तथा विदेशी भुगतानों हेतु वित्तीय व्यवस्था उनकी प्राथमिकताओं के आधार पर करता है। इस दृष्टि से आवश्यक आयातों जैसे- कच्चा माल , पूँजीगत वस्तुएँ इत्यादि के लिए विदेशी विनिमय आवंटन विलासिता संबन्धी अनावश्यक वस्तुओं की तुलना में प्राथमिकता के आधार पर किया जाएगा। यद्यपि विनिमय नियंत्रण हेतु यह प्रणाली अत्यन्त सरल है किन्तु इसमें नौकरशाहों का मनमानापूर्ण व्यवहार स्वाभाविक है जिससे विलम्ब के साथ प्रशासनिक लागतें भी अधिक हो सकती हैं।
- **समाशोधन समझौते (Clearing Agreements)-** इसके अन्तर्गत द्विपक्षीय व्यापार की दशा में दोनों देश अपने-अपने देश के केन्द्रीय बैंक में खाता खौलकर आयात तथा निर्यात के सभी भुगतानों का पारस्परिक तय विनिमय दर पर समाशोधन करने का समझौता कर लेते हैं।

उदाहरण के तौर पर यदि भारत से चीन वस्तुएँ आयात करता है तो आयातकों को अपने देश के केन्द्रीय बैंक के समाशोधन खाते में अपनी ही करेंसी में भुगतान करना होगा। इसी प्रकार भारतीय निर्यातकों को समाशोधन खाते में अपनी करेंसी में भुगतान करना पड़ेगा। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि दोनों देशों में आयात व निर्यात बराबर हो और समाशोधन खाते संतुलित हों। समाशोधन खाते में कमी अथवा बेशी की दशा में उसे स्वर्ण अथवा अन्य विदेशी करेंसी के रूप में भुगतान किया जाता है जिसे दोनों देश स्वीकार करने हेतु तैयार हो।

इस समाशोधन समझौते की मुख्य कमी यह है कि इसमें सशक्त देश कमजोर देश का शोषण कर सकता है। यह विदेशी व्यापार के सामान्य ढाँचे में परिवर्तन के साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के परिमाण में भी कमी ला सकता है। इसके अतिरिक्त विनिमय नियंत्रण की यह विधि तभी प्रयोग की जा सकती है जबकि सभी विदेशी भुगतान केन्द्रीय बैंक द्वारा ही सम्पादित किए जायें।

- **भुगतान समझौते (Payment Agreement)-** भुगतान समझौते , समाशोधन समझौते की तुलना में विनिमय नियंत्रण की अधिक व्यापक विधि है क्योंकि इसमें वस्तुओं के आयात-निर्यात के अतिरिक्त सेवा सम्बन्धी मदें जैसे जहाजरानी खर्चे , बीमा, पर्यटन तथा ऋण सेवा आदि भी शामिल होती हैं। इसके अन्तर्गत ऋणदाता देश के आयात के भुगतान का कुछ अंश उसके ऋण के भुगतान के लिए समाशोधन खाते में जमा कर दिया जाता है तथा शेष राशि का भुगतान ऋणी देश के निर्यातकों को कर दिया जाता है। ऋणदाता देश ऋणी देश के आयातों पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाता है किन्तु ऋणी देश ऋणदाता देश के आयात पर प्रतिबंध लगा सकता है जिससे वह अपने निर्यातों में वृद्धि करके विदेशी दायित्वों का भुगतान कर सके।

इस विधि की मुख्य कमी यह है कि खातों की शेष राशि का प्रयोग भुगतान हेतु केवल एक देश से दूसरे साझीदार देश को किया जा सकता है। प्रायः ऐसा माना जाता है कि यह कमजोर देश के प्रतिकूल भुगतान संतुलन को ठीक करने में सहायक है किन्तु ऋण सेवा अवधि बढ़ने से कमजोर देशों का ऋण सेवा भार बढ़ जाता है जो भुगतान संतुलन पर दीर्घकालीन प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

15.5.2 अप्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण (Indirect Exchange Control)

विनिमय नियंत्रण की अप्रत्यक्ष विधियाँ विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।

- **ब्याज दरों में परिवर्तन (Changes in Interest Rates)-** किसी देश में ब्याज दरों में किया जाने वाला परिवर्तन विदेशी विनिमय दर को प्रभावित करता है। यदि देश में ब्याज दरें ऊँची हैं तो वह विदेशी पूँजी तथा बैंकिंग कोषों को आकर्षित करती हैं। फलस्वरुप घरेलू करेंसी की माँग बढ़ती है जो इसके विदेशी मूल्य को बढ़ा देती है और विदेशी विनिमयदर को देश के अनुकूल बना देती है। इसके विपरीत ब्याज दर कम होने पर विदेशी पूँजी के पलायन के साथ घरेलू पूँजी का प्रवाह भी अन्य देशों में होगा जो विदेशी विनिमय दर को प्रतिकूल बना देगा।

यहाँ आपको यह बताना आवश्यक है कि कोई भी देश ब्याज दरों को अधिक नहीं बढ़ा सकता क्योंकि इसका घरेलू व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। साथ ही अन्य देश भी प्रतिक्रिया स्वरुप अपनी ब्याज दरें बढ़ा सकते हैं।

- **प्रशुल्क एवं गैर-प्रशुल्क नियंत्रण (Tariff and Non-Tariff Controls)-** विदेशी व्यापार के परिमाण पर प्रतिबंध लगाने हेतु प्रशुल्क एवं आयात कोटा व अन्य मात्रात्मक प्रतिबंध एक महत्वपूर्ण अप्रत्यक्ष विधि है। आयात शुल्क आयातों की मात्रा में कमी करते हैं और विदेशी करेंसी की तुलना में घरेलू करेंसी के मूल्य में वृद्धि कर देते हैं। इसी प्रकार निर्यात शुल्क , निर्यातों की मात्रा में कमी करने के साथ विदेशी करेंसी की तुलना में घरेलू करेंसी के मूल्य को कम कर देते हैं। इसके अतिरिक्त राज्य व्यापार निगम अथवा ऐसे किसी प्राधिकरण को सरकार द्वारा कुछ वस्तुओं के आयात का एकाधिकार दे दिया जाता है। यह निगम ही आयातित वस्तुओं की मात्रा निर्धारित करता है और उसे देश में वितरित करता है। उपर्युक्त मात्रात्मक प्रतिबंधों का उद्देश्य देश की विनिमय दरों को अनुकूल बनाना तथा प्रतिकूल भुगतान संतुलन को ठीक करना है। किन्तु, कोई भी देश आयातों को पूर्णतया प्रतिबंधित नहीं कर सकता है। साथ ही, अन्य देश प्रशुल्क नीति के सम्बन्ध में प्रतिकार कर अपने देश में भी आयातों को प्रतिबंधित कर सकते हैं।
- **निर्यात सहायिकी (Export Subsidy)-** प्रायः निर्यातो में वृद्धि करने हेतु सरकार निर्यातों को सहायिकी प्रदान कर सकती हैं अथवा निर्यातों पर लगाए जाने वाले करों में कमी या छूट प्रदान कर सकती हैं। इससे विदेशी विनिमय बाजार में देश की मुद्रा की माँग में वृद्धि होती है और विनिमय दर देश के अनुकूल होने के साथ भुगतान संतुलन की स्थिति में भी सुधार होता है। किन्तु सरकार के पास उपलब्ध निधियों की राशि निर्यात सहायिकी को सीमित कर देती है।

15.6 विनिमय नियंत्रण का प्रभाव (Effects of Exchange Control)

विनिमय नियंत्रण व आयात लाइसेंस मिलकर एक देश में आयातकों के लिए एकाधिकार लाभ उत्पन्न करते हैं। यदि कोई देश पूर्ण विनिमय नियंत्रण को अपनाता है तो आयातकों द्वारा अर्जित एकाधिकारी लाभ उपभोक्ताओं के कल्याण को कम कर देता है और आयात लाइसेंस व विदेशी मुद्रा लाइसेंस प्राप्त करने हेतु भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है। चित्र में कठोर विनिमय नियंत्रण की दशा में आयातकों द्वारा x-वस्तु के आयात की माँग और पूर्ति को प्रदर्शित किया गया है।

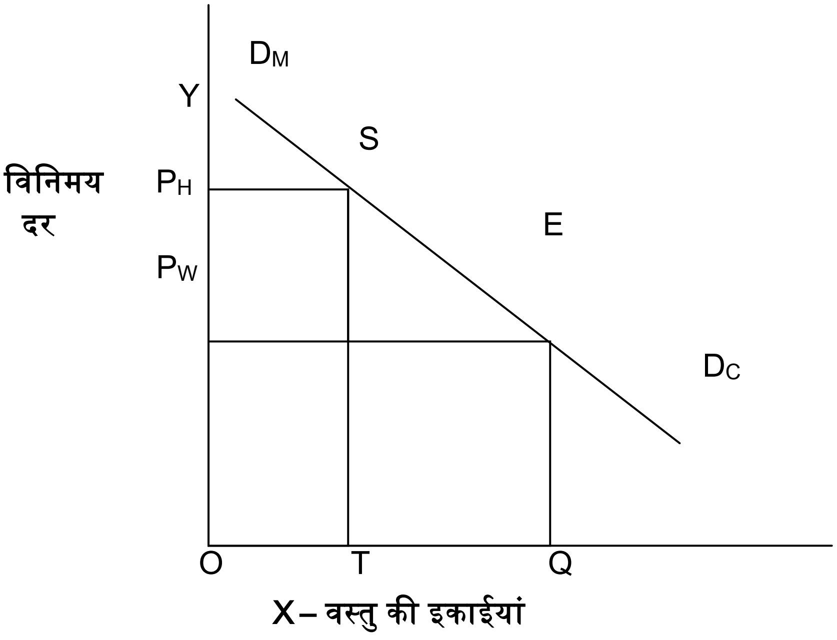

चित्र में P_w X -वस्तु की विश्व कीमत तथा D_C घरेलू उपभोक्ताओं की माँग को व्यक्त कर रही है जबकि कोई विनिमय नियंत्रण नहीं है। इस OP_W कीमत पर घरेलू उपभोक्ताओं की कुल माँग 0 Q मात्रा के बराबर है। ऐसी स्थिति में क्षेत्रफल OP_WEQ राशि के बराबर विदेशी विनिमय की आवश्यकता होगी। विनिमय नियंत्रण की दशा में निर्गत सीमित राशि क्षेत्रफल OP_WST वांछित राशि की तुलना में कम है जो आयातकों के आयाताकार परवलयाकार वक्र क्ड से स्पष्ट है। अतः 0Q माँग की तुलना में पूर्ति 0T तक प्रतिबंधित होने के कारण आयातित X वस्तु की घरेलू कीमत बढ़कर 0 P_H हो जाएगी। आयातित वस्तु X की कीमत में 0 P_W और 0P_H के बीच का अन्तर आयातकों को विनिमय नियंत्रण के कारण मिलने वाले एकाधिकारी लाभ को व्यक्त करता है और तीव्र ढाल वाला माँग वक्र आयातकों को पुनः एकाधिकारी लाभ दिलाएगा।

15.7 विनिमय नियंत्रण के गुण व दोष (Merits and Demerit of Exchange Control)

विकसित एवं विकासशील दोनों प्रकार के देशों द्वारा विनिमय नियंत्रण की नीतियों को अपनाया जाता है। विनिमय नियंत्रण के मुख्य गुण इस प्रकार हैं।

1. विनिमय नियंत्रण आयात को प्रतिबंधित कर भुगतान शेष को ठीक करने में सहायता करता है।
2. विनिमय नियंत्रण विदेशी कंपनियों के प्रसार को सीमित करता है और राष्ट्रीय हित में उनके कार्यकरण का नियमन करता है।
3. विनिमय नियंत्रण द्वारा घरेलू उद्योगों को विदेशी प्रतियोगिता से संरक्षण प्रदान किया जा सकता है और देश में आयात स्थानापन्नाता व निर्यात प्रोत्साहन को प्रारम्भ किया जा सकता है।
4. विनिमय नियंत्रण पूँजी के अनियमित प्रवाह को रोकता है और विदेशी विनिमय की उपलब्धता को सुनिश्चित करके आवश्यक पूँजी वस्तुओं के आयात को संभव बनाता है।
5. विनिमय नियंत्रण विनिमय दरों में होने वाले उच्चावचनों को रोककर उसमें स्थिरता लाने में सहायक होता है।
6. सरकार विनिमय नियंत्रण का प्रयोग विदेशी ऋणों के भुगतान हेतु भी अपना सकती है।
7. यह दो देशों के बीच द्विपक्षीय व्यापार संबंधों से लाभ उठाने हेतु एक प्रभावी विधि है।
8. विनिमय नियंत्रण देश में आर्थिक राष्ट्रीयता की भावना का विकास करता है।

9. विनिमय नियंत्रण द्वारा विदेशी मुद्रा का संरक्षण कर देश अपनी सुरक्षा , आयोजन, आर्थिक विकास आदि महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पादित करने में सफल हो सकता है।
10. किसी देश के विरोधी हो जाने की स्थिति में सरकार विनिमय नियंत्रण द्वारा उस देश की सभी परिसम्पत्तियों को अपने अधिकार में लेकर उसकी निधियों को लौटाने पर रोक लगा सकता है।
11. अन्ततः सरकार विनिमय नियंत्रण के माध्यम से राजस्व भी एकत्रित कर सकती है।

विकसित एवं विकासशील दोनों प्रकार के देशों द्वारा विनिमय नियंत्रण की नीतियों को अपनाया जाता है। विनिमय नियंत्रण के मुख्य दोष इस प्रकार हैं।

विनिमय नियंत्रण की नीति के मुख्य दोष निम्नलिखित हैं -

1. **विदेशी विनिमय की कालाबाजारी (Black Marketing of Foreign Exchange) -** विनिमय नियंत्रण विदेशी विनिमय की कालाबाजारी को जन्म देता है जिससे विदेशी मुद्राओं का देश की बजाय विदेशों में प्रयोग होता है और इनकी तस्करी में वृद्धि होती है।
2. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के परिमाण में कमी (Decrease in the Volume of International Trade)-** विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत जब एक देश आयातों को प्रतिबंधित करता है तब दूसरे देश प्रतिक्रिया स्वरुप अपने आयातों पर भी प्रतिबंध लगाते हैं जिससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के परिमाण में कमी आती है और विश्वस्तर पर भी कुल उत्पादन में कमी आती है।
3. **लालफीताशाही एवं भ्रष्टाचार (Red tape and Corruption)-** विनिमय नियंत्रण का कार्य सरकारी कर्मचारियों के द्वारा किया जाता है। अतः वे अपने निहित स्वार्थों के कारण प्रशासनिक व्यवस्था का दुरुपयोग करते हैं जिससे अनावश्यक विलम्ब तथा भ्रष्टाचार का जन्म होता है।
4. **औद्योगिक अक्षमता (Industrial Inefficiencies)-** विनिमय नियंत्रण के कारण विदेशी प्रतियोगिता के अभाव में घरेलू उद्योगों में प्रौद्योगिकीय स्थिरता , औद्योगिक अकुशलता व गुणवत्ता ह्रास का जन्म होता है जो लागतों में वृद्धि कर घरेलू कीमत-स्तर को बढ़ा देता है।
5. **आय एवं धन का असमान वितरण (Inequal distribution of Income and Wealth)-** विनिमय नियंत्रण छोटे उत्पादकों की बजाय कुछ बड़े उत्पादकों अथवा उनके समूह के लिए असामान्य लाभ के अवसर उत्पन्न करता है। फलस्वरुप आय व धन के वितरण में असमानता बढ़ने लगती है।
6. **मनमानापूर्ण एवं अपव्ययी (Arbitrary and Wasteful) -** विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत विदेशी विनिमय का आवंटन प्रायः नौकरशाहों की मनमानी प्राथमिकताओं के अनुसार किया जाता है। इसके अतिरिक्त विनिमय नियंत्रण की नीति के क्रियान्वयन हेतु नियुक्त प्रशासनिक मशीनरी पर बड़ी मात्रा में व्यय किया जाता है जिससे सरकारी धन का अनावश्यक व्यय होता है।

अन्ततः आप परिचित हो गए होगें कि विनिमय नियंत्रण देश के अनुकूल भुगतान-संतुलन एवं विनिमय दरों में स्थिरता बनाए रखने हेतु सहायक है किन्तु इससे देश में कुछ निहित स्वार्थों का भी जन्म हो सकता है जो भविष्य में देश के विकास के लिए उपयुक्त नहीं होगा।

15.8 सारांश (Summary)

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की स्थिति में विदेशी भुगतानों हेतु विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है। सामान्यतया अन्य देशों की मुद्राओं को विदेशी विनिमय कहा जाता है किन्तु इसके अन्तर्गत उन सभी क्रियाओं एवं विधियों को शामिल किया जाता है जिनके द्वारा दो या दो से अधिक देशों के व्यापारी अपने व्यावसायिक दायित्वों का भुगतान करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों हेतु विदेशी विनिमय की समस्या उत्पन्न होने का मुख्य कारण विभिन्न देशों की मुद्राओं का भिन्न-भिन्न होना , मुद्राओं की माँग और पूर्ति में असाम्य तथा स्थायी विनिमय दरों का अभाव है। **विदेशी विनिमय दर** दो देशों की मुद्राओं के बीच विनिमय अनुपात को कहा जाता

है जिस पर एक देश की मुद्रा दूसरे देश की मुद्रा से परिवर्तित की जाती है। दीर्घकालीन विनिमय दरों को सामान्य या साम्य विनिमय दर और अल्पकालीन विनिमय दरों को तात्कालिक अथवा बाजार विनिमय दर कहा जाता है जिसमें विदेशी मुद्रा की माँग और पूर्ति में परिवर्तन के कारण निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। विनिमय दर का निर्धारण स्वर्णमान के अन्तर्गत टंकण मूल्य समता सिद्धान्त के द्वारा किया जाता है जबकि अपरिवर्तनीय पत्र मुद्राओं के बीच विनिमय दर का निर्धारण क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त अथार्त उनकी पारस्परिक आन्तरिक क्रय-शक्तियों के अनुपात के आधार पर किया जाता है। भुगतान संतुलन सिद्धान्त के अन्तर्गत भुगतान-शेष के उधार खाता एवं जमा खाते की मदों की समानता के आधार पर किया जाता है।

आप परिचित हो गए होंगे कि विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत विदेशी विनिमय के स्वतंत्र लेन-देन को प्रतिबन्धित कर दिया जाता है। इसके अनेक स्वरुप हो सकते हैं जिनको प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष विधियों में बाँटा जा सकता है। प्रत्यक्ष विधियों में आपने मुख्य रूप से सरकारी हस्तक्षेप , विनिमय प्रतिबंध, विनिमय समाशोधन समझौते आदि और अप्रत्यक्ष विनिमय नियं त्रण के अन्तर्गत ब्याज दरों में परिवर्तन , प्रशुल्क व आयात कोटा , निर्यात सहायिकी का विस्तृत अध्ययन किया है। विनिमय नियंत्रण का मुख्य उद्देश्य मुक्त विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दरों में होने वाले उच्चावचनों को रोकना और देश के भुगतान शेष को सन्तुलित बनाए रखना होता है। इस कार्य हेतु देश का केन्द्रीय बैंक सरकारी केन्द्रीय प्राधिकरण के रूप में कार्य करता है।

15.9 शब्दावली (Glossary)

- **विनिमय नियंत्रण (Exchange Control)-** विदेशी विनिमय के मुक्त लेन-देन पर प्रतिबंध।
- **बहु विनिमय दरें (Multi Exchange Rates)-** विभिन्न वस्तुओं के आयात व निर्यात हेतु निर्धारित अलग-अलग विनिमय दरें।
- **प्रशुल्क (Tariff)-** आयातों और निर्यातों पर लगाया जाने वाला अप्रत्यक्ष कर।
- **निर्यात सहायिकी (Export Subsidy)-** निर्यातों में वृद्धि अथवा प्रोत्साहन हेतु निर्यात करों में छूट या निर्यात को दिया गया अनुदान।
- **फेरा (FERA)-** विदेशी विनिमय विनियमन अधिनियम जिसका उद्देश्य विदेशी विनिमय का संरक्षण करना था।
- **फेमा (FEMA)-** विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम जिसने 'फेरा' का स्थान लिया।
- **मुद्रा की परिवर्तनीयता (Convertibility of Currency)-** मुक्त रूप से देश की मुद्रा का प्रमुख विदेशी मुद्राओं में तथा प्रमुख विदेशी मुद्राओं का देश की मुद्रा में संपरिवर्तनीयता।

15.10 अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Question Answer)

1. विदेशी विनिमय का अर्थ बताइये।
2. विदेशी विनिमय के विभिन्न तरीकों को संक्षिप्त में स्पष्ट कीजिए।
3. विदेशी विनिमय की समस्या उत्पन्न होने के क्या कारण है?
4. विनिमय नियंत्रण को स्पष्ट कीजिए।
5. विनिमय नियंत्रण की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?
6. विनिमय नियंत्रण के उद्देश्यों को संक्षेप में बताइए।
7. विनिमय नियंत्रण के तरीकों को किन दो भागों में विभाजित किया जाता है?
8. विनिमय नियंत्रण हेतु सरकारी विनिमय प्राधिकरण के रूप में कौन कार्य करता है?
9. प्रशुल्क एवं गैर-प्रशुल्क नियंत्रण किस प्रकार विनिमय नियंत्रण में सहायक होते हैं?

15.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- Mithani, D. M. (2010) " International Economics" Himalaya Publishing House, Mumbai.
- वैश्य, एम.सी. व सिंह , सुदामा (2000). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र " सप्तम संस्कण , आक्सफोर्ड एवं आई.बी.एच. पब्लिशिंग कं.प्रा.लि., नई दिल्ली।
- अग्रवाल एवं बरला (2008). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र"लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- राणा, के.सी. व वर्मा, के.एन. (2012). "अंतरविदीय अर्थशास्त्र" विशाल पब्लिशिंग कं., जालन्धर।

15.12 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)

- झिंगन, एम.एल. (2011). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" षष्टम संस्करण, वृंदा पब्लिशिंग प्रा. लि., दिल्ली।
- Salvatore, Dominick (1998) "International Economics" Sixth ed- Prentice Hall, New Jersey.
- Pugel, A. Thomas (2011), "International Economics" 13th ed. Tata McGraw Hill Educational Pvt. Ltd., New Delhi.
- Avadhani, V.A. (2012), "International Economics" Eighth Ed. Himalaya Publishing House, Mumbai.
- Krugman, Paul R. and Obstfeld, Maurice (2004), "International Economics" Sixth ed. Pearson Education, Delhi.
- Sodersten, B. and Reed, G. (2006). " International Economics" third ed., Macmillan Press Ltd., London.

15.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. विनिमय नियंत्रण की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए इसके उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।
2. विनिमय नियंत्रण से क्या तात्पर्य है ? विनिमय नियंत्रण की विभिन्न विधियों की संक्षेप में विवेचना कीजिए।
3. विनिमय नियंत्रण से आप क्या समझते हैं? इसके गुण तथा दोषों पर प्रकाश डालिए।
4. विनिमय नियंत्रण की अप्रत्यक्ष विधियों का विवरण देते हुए बताइए कि वे किस सीमा तक प्रभावकारी हो सकती हैं?
5. मुद्रा की परिवर्तनीयता का अर्थ बताइए। रूपये की पूर्ण परिवर्तनियता के लिए भारत सरकार द्वारा उठाए गए कदमों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

इकाई – 16 मुक्त व्यापार एवं संरक्षण (Free Trade and Protection)

16.1 प्रस्तावना (Introduction)
16.2 उद्देश्य (Objectives)
16.3 मुक्त व्यापार का अर्थ (Meaning of Free Trade)
16.4 मुक्त व्यापार के पक्ष में तर्क (Arguments in favor of free trade)
16.5 मुक्त व्यापार की सीमाएं (limitations of free trade)
16.6 संरक्षण (Protection)
16.7 संरक्षण के पक्ष में मुख्य तर्क (Main arguments in favor of Protection)
16.8 संरक्षण के विपक्ष में तर्क (Arguments against Protection)
16.9 सारांश (Summary)
16.10 शब्दावली (Glossary)
16.11 अभ्यास प्रश्न उत्तर (Practice Question Answer)
16.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
16.13 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)
16.14 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

आधुनिक वैश्विक अर्थव्यवस्था में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। देशों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के आदान-प्रदान से न केवल आर्थिक विकास को गति मिलती है , बल्कि रोजगार, तकनीकी विकास और जीवन स्तर में भी सुधार होता है। इस संदर्भ में मुक्त व्यापार और संरक्षणवाद दो प्रमुख नीतिगत दृष्टिकोण हैं, जिनके बीच चुनाव करना देशों की आर्थिक रणनीति का एक अहम पहलू है।

मुक्त व्यापार की अवधारणा एडम स्मिथ (Adam Smith) और डेविड रिकार्डो (David Ricardo) जैसे अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित की गई, जबकि संरक्षणवाद के पक्ष में फ्रेडरिक लिस्ट (Friedrich List) और अलेक्जेंडर हैमिल्टन (Alexander Hamilton) जैसे विचारकों ने तर्क दिए। इस अध्याय में इन दोनों नीतियों के सैद्धांतिक आधार, लाभ-हानि और वास्तविक दुनिया में इनके प्रभावों की विस्तृत चर्चा करेंगे।

16.2 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय का अध्ययन करने के बाद आप-

- ✓ मुक्त व्यापार और संरक्षणवाद की अवधारणाओं को समझ सकेंगे।
- ✓ मुक्त व्यापार के लाभ और सीमाओं को समझ सकेंगे।
- ✓ संरक्षणवाद के तर्कों और चुनौतियों को समझ सकेंगे।

16.3 मुक्त व्यापार का अर्थ (Meaning of Free Trade)

मुक्त व्यापार वह नीति है जिसके अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में पूर्ण स्वतंत्रता होती है। ऐसी स्थिति में दो देशों के बीच वस्तुओं के आयात-निर्यात में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती। मुक्त व्यापार के महत्व को रेखांकित करने का श्रेय एडम स्मिथ को जाता है। उनके पहले सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ से लेकर अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के बारे में जो विचारधारा प्रचलित थी उसे आर्थिक विचारों के इतिहास में वणिकवाद के नाम से जाना जाता है। वणिकवाद वहुत ही संकीर्ण विचारधारा थी। वणिकवाद के अनुसार निर्यात से देश की सम्पदा में वृद्धि होती है , जबकि आयात से देश की सम्पदा में कमी आती है। एडम स्मिथ ने इस मान्यता का खंडन किया और बताया की व्यापार से सभी देशों को लाभ होता है इसलिए उन्होंने मुक्त व्यापार की वकालत की। उनके अनुसार *"मुक्त व्यापार की धारणा का उपयोग व्यापारिक नीति की उस प्रणाली को बंद करने के लिए किया जाता है जिसमें देश तथा विदेशी वस्तुओं में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता इसलिए न तो विदेशी वस्तुओं पर अनावश्यक कर लगाये जाते हैं और न ही स्वदेशी उद्योगों को कोई विशेष सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। "* इस प्रकार, मुक्त व्यापार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तथा आतंरिक व्यापार में कोई अंतर नहीं करता। जिस प्रकार आतंरिक व्यापार में स्वतंत्रता होने पर कोई भी व्यक्ति सबसे कम मूल्य वाले बाज़ार में वस्तु खरीद सकता है अथवा उत्पादक अपनी वस्तु को उस बाज़ार में बेंच सकता है जहाँ उसे सबसे ज्यादा मूल्य प्राप्त हो सके। ठीक उसी प्रकार मुक्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में कोई भी देश सबसे कम मूल्य पर वस्तु खरीद सकता है और साथ ही सबसे अधिक मूल्य देने वाले देश में अपनी वस्तु बेंच सकता है।

16.4 मुक्त व्यापार के पक्ष में तर्क (Arguments in favor of free trade)

एडम स्मिथ के आगमन के साथ ही मुक्त व्यापार के पक्ष में हवा चल गई। उन्होंने इसके लाभ के बारे में इतना ठोस तर्क रखा कि सभी प्रतिष्ठित व नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री इसके पक्ष में बोलने लगे। एक जुमला चल पड़ा "some trade is better than no trade and free trade is better than protected or

restricted trade” यानि कुछ व्यापार शून्य व्यापार से बेहतर है , जबकि मुक्त व्यापार प्रतिबंधित या संरक्षित व्यापार से बेहतर है।

मुक्त व्यापार के पक्ष में प्रायः निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं-

- **उत्पादन के साधनों का समुचित प्रयोग (Proper use of the factors of production)-** मुक्त व्यापार के अंतर्गत प्रत्येक देश केवल उसी वस्तु का उत्पादन करता है जिसमें उसे लागत सम्बन्धी लाभ प्राप्त हो। यह लाभ चाहे वह निरपेक्ष हो या तुलनात्मक, उत्पादन के साधनों के समुचित तथा कुशलतम प्रयोग को सुनिश्चित करेगा।
- **तकनीकी विकास को प्रोत्साहन (Encouragement of technological development)-** मुक्त व्यापार में देशों के बीच पारस्परिक प्रतियोगिता रहती है। इस प्रतियोगिता के कारण प्रत्येक उत्पादक भरसक कोशिश करता है कि उसके उत्पाद की लागत कम हो जिससे कि वह कम मूल्य पर अपने उत्पाद को बेंच सके। इसके लिए उत्पादक तकनीकी अनुसंधान व विकास को प्रोत्साहन देता है।
- **सामाजिक उत्पादन का अधिकतमीकरण (Maximization of Social Production)-** मुक्त व्यापार श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण को बढ़ाता है जिसके कारण कुल उत्पादन में वृद्धि होती है और साथ ही वस्तु का उत्पादन लागत भी गिरता है। यानि समाज को पहले से कम मूल्य पर और साथ ही अधिक वस्तुओं का उपभोग करने का मौका मिलता है। वस्तुओं का मूल्य उनके सीमान्त लागत के बराबर हो जाता है। यह स्थिति अनुकूलतम उत्पादन की स्थिति को प्रदर्शित करता है। प्रत्येक देश की आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य अधिकतम सामाजिक लाभ की प्राप्ति होती है और यह मुक्त व्यापार में प्राप्त किया जा सकता है।
- **आयातित वस्तुओं के मूल्यों में कमी (reduction in the prices of imported goods)-** मुक्त व्यापार सस्ते आयातित वस्तुओं की उपलब्धता को सुनिश्चित करता है। उपभोक्ताओं को ऐसे देश की वस्तु का उपभोग करने का अवसर प्राप्त होता है जहाँ वह कम-से कम लागत पर प्राप्त किया जाता है। यह अलग बात है कि इस तर्क में देशी उत्पादकों के हितों की अवहेलना की गई है और साथ ही रोजगार के पहलू को भी नजरंदाज किया गया है
- **एकाधिकारिक शोषण से मुक्ति (freedom from monopolistic exploitation)-** मुक्त व्यापार में प्रतियोगिता होने के कारण उपभोक्ता एकाधिकारिक शोषण से बच जाते हैं। प्रत्येक देश के उत्पादक को केवल देश के ही नहीं बल्कि विदेशी उत्पादकों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है जिसके कारण एकाधिकार का जन्म नहीं होता और फलस्वरूप उपभोक्ताओं को सस्ते मूल्य पर वस्तुएं प्राप्त होती है।
- **स्वर्णमान प्रणाली के अनुकूल (Gold Standard Compliant)-** मुक्त व्यापार देशी मुद्रा के विदेशी मुद्रा में पूर्ण परिवर्तनीयता को सुनिश्चित करता है। यह एक प्रकार से स्वर्णमान प्रणाली वाली स्थिति उपलब्ध कराता है क्योंकि विभिन्न मुद्राओं का क्रय-विक्रय आसानी से हो जाता है।
- **विश्व के सभी देशों के आर्थिक हितों की सुरक्षा (Protection of the economic interests of all countries of the world)-** मुक्त व्यापार व्यवस्था से विश्व के सभी देशों के हितों की रक्षा होती है। मुक्त व्यापार प्रणाली व्यापारिक संघर्ष नहीं बल्कि समरसता उत्पन्न करता था। मुक्त व्यापार के फलस्वरूप आयात करने वाले देश और निर्यात करने वाले देश दोनों को लाभ प्राप्त होता है। मुक्त व्यापार के अंतर्गत एक देश दूसरे देश पर निर्भर होता है फलस्वरूप उन देशों के बीच सहयोग एवं सद्भावना जागृत होती है। एडम स्मिथ के पूर्व यह मत था कि आयात करने वाले देश को नुकसान और निर्यात करने वाले देश को लाभ प्राप्त होता है। यह व्यापार का संकुचित दृष्टिकोण था , जिसके कारण

व्यापार ने औपनिवेशिक प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया और देशों के बीच युद्ध भी हुए। एडम स्मिथ ने यह समझाया की मुक्त व्यापार श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण को जन्म देता है , जिसके कारण सभी देशों के आर्थिक हितों की सुरक्षा सुनिश्चित होती है।

16.5 मुक्त व्यापार की सीमाएं (limitations of free trade)

मुक्त व्यापार से लाभ के बारे में अभी हम अवगत हुए। इससे हम यह सोंच लेते हैं कि यही आदर्शातम स्थिति है। किन्तु मुक्त व्यापार की अपनी सीमाएं हैं , जिसके कारण हमें अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं होता। अनुभव तो यही बताता है कि जैसे-जैसे दुनिया मुक्त व्यापार की और अग्रसर हो रही है , विकसित और विकासशील देशों के बीच की खाई और चौड़ी होती जा रही है। बहुराष्ट्रीय कम्पनिओं का जाल विकासशील देशों में फैलता जा रहा है। उनके यहाँ के घरेलू उद्योग इन बहुराष्ट्रीय कम्पनिओं के आगे प्रतिस्पर्धा करने में कठिनाई का अनुभव कर रहे है। कई उद्योग तो बहुराष्ट्रीय कम्पनिओं के सामने अपना अस्तित्व ही खो चुके हैं। ऐसे में अब पुनः इन देशों में संरक्षण के उपाय की बात की जा रही है। मुक्त व्यापार की निम्नलिखित सीमाएं हैं-

1. मुक्त व्यापार अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है (Free trade is based on unrealistic assumptions)- मुक्त व्यापार की पुरजोर वकालत करनेवाले एडम स्मिथ और अन्य प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री ऐसी मान्यताएं ले बैठे जो वास्तविकता से दूर हैं। जैसे स्थिर लागत की दशा का उत्पादन , साधन की गतिशीलता की मान्यता आदि शायद ही देखने को मिलता है।

2. पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित (based on the assumption of perfect competition)- मुक्त व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभ वस्तु तथा साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है , जो शायद ही उपलब्ध हो पाती है। इसके कारण साधनों का अनुकूलतम आवंटन और वस्तुओं का अनुकूलतम वितरण नहीं हो पता जिसके कारण मुक्त व्यापार से वो स्थिति प्राप्त नहीं हो पाती जो दावा किया जाता है।

3. शिशु उद्योग के लिए अनुपयुक्त (unsuitable for infant industry)- मुक्त व्यापार शिशु उद्योग के लिए अनुपयुक्त है क्योंकि ऐसे उद्योग प्रतियोगिता को झेल पाने में सक्षम नहीं होते। फ्रेडरिक लिस्ट ने अपने शिशु उद्योग तर्क में इस बात को बहुत सरल तरीके से बताया है और ऐसे उद्योगों को प्रारंभ में संरक्षण देने की वकालत की है।

4. मांग और पूर्ति का पूर्णतः लोचदार होना आवश्यक (Demand and supply must be perfectly elastic)- मुक्त व्यापार इस मान्यता पर आधारित है कि दीर्घकाल में मांग और पूर्ति पूर्णतः लोचदार हो जाते हैं जिसके कारण उद्योगों की लागतें स्थिर हो जाती है। किन्तु वास्तविक जगत में ऐसा संभव नहीं।

16.6 संरक्षण (Protection)

देश के उद्योगों को विभिन्न प्रोत्साहनों द्वारा विकसित करने तथा विदेशी वस्तुओं के प्रतिस्पर्धा से बचाने की नीति को संरक्षण कहते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य देश के उद्योग-धंधों का विकास करना होता है। संरक्षण की वकालत सर्वप्रथम अमेरिकी राजनीतिज्ञ अलेक्जेंडर हैमिल्टन ने की। उनके अनुसार देश में उद्योगों के विकास तथा अधिक से अधिक लोगों को रोजगार देने के लिए संरक्षण की नीति अपनानी चाहिए। जर्मन राष्ट्रवादी अर्थशाष्त्री फ्रेडेरिक लिस्ट ने अपने शिशु उद्योग तर्क के माध्यम से संरक्षण पर जोर दिया।

16.7 संरक्षण के पक्ष में मुख्य तर्क (Main arguments in favor of Protection)

1. देश की मुद्रा देश में ही रहने का तर्क (Argument for keeping the country's currency within the country)- संरक्षण के पक्ष में दिया जानेवाला यह सामान्य तर्क है। इसके अनुसार यदि देश के लोग देश में

निर्मित वस्तुओं का उपभोग करेंगे तब देश की मुद्रा देश में ही रहेंगी जबकि विदेशी वस्तु खरीदने से देश की मुद्रा का भुगतान विदेशी वस्तु के निर्माताओं को हो जाने से मुद्रा का पलायन हो जायेगा। वणिकवादी प्रायः यही तर्क देते थे। उनका मत था कि देश का स्वर्ण आयात करने से देश से बाहर चला जायेगा।

2. भुगतान संतुलन का तर्क (balance of payments argument)- इस तर्क के अनुसार आयात होने से भुगतान संतुलन में घाटा और निर्यात से भुगतान संतुलन में लाभ होता है।

3. घरेलू बाज़ार का तर्क (domestic market argument)- यह तर्क विशेषकर विकासशील देशों के सन्दर्भ में दिया जाता है। इस तर्क के अनुसार विकासशील देश एक निम्न-संतुलन की स्थिति में होते हैं। पूर्ति में वृद्धि होने पर मांग में भी उसी अनुपात में वृद्धि नहीं हो पाती। गुन्नार मिर्डल के अनुसार , *"अल्पविकसित देशों के औद्योगिक विकास में एक बड़ी कठिनाई तथा विकास सम्बन्धी नीति को मूर्त रूप देने में एक बड़ी बाधा यह है कि ये देश पूर्ति में वृद्धि के साथ-साथ घरेलू मांग में वृद्धि नहीं कर पाते।* " इस प्रकार अल्पविकसित अथवा विकासशील देशों में प्रभावी मांग में कमी एक बड़ी बाधा है। संरक्षण के माध्यम से घरे लू उद्योगों के निर्मित वस्तुओं की मांग को सुनिश्चित किया जा सकता है।

4. मजदूरी का तर्क (wage argument)- इस तर्क के अनुसार जिन देशों में मजदूरी की दर ऊँची होती है वहां लागत भी अधिक होती है जिसके कारण ऊँचा मूल्य रखना पड़ता हैं। ऐसे देश कम मजदूरी दर वाले देश से आने वाली वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। इसलिए उद्योग को संरक्षण देने की आवश्यकता होती है। आजकल तो विकासशील देशों में भी शक्तिशाली श्रम-संघों के उदय के कारण मजदूरी की दर ऊँची होने लगी है। कई बार तो मजदूरी की दर मजदूर के सीमान्त उत्पादकता से भी ज्यादा होती है। इसके कारण लागत में वृद्धि हो जाती है जिसके परिणाम-स्वरुप मूल्य भी अधिक रखना पड़ता है। ऐसी स्थिति में संरक्षण की आवश्यकता होती है।

5. लागतों को सामान करने का तर्क (argument for equalizing costs)- ऐसा शायद ही हो कि एक वस्तु का दो देशों में उत्पादन लागत समान हो। परिस्थितिओं में भिन्नता होने के कारण उत्पादन लागत भी भिन्न होते हैं, जिसके कारण मूल्य भी भिन्न हो जाते है। यदि घरेलु वस्तु की उत्पादन लागत विदेशी वस्तु के उत्पादन लागत से 10% अधिक हो तो वह देश आयातित वस्तु पर 10% आयात शुल्क लगा कर मूल्य को समान करने की चेष्टा करेगा जिससे उपभोगताओं को दोनों वस्तु एक ही मूल्य के प्रतीक हो।

6. शिशु उद्योग से सम्बंधित तर्क (argument related to infant industry)- संरक्षण के पक्ष में सबसे प्रबल तर्क शिशु उद्योग को लेकर है। सर्वप्रथम अलेक्जेंडर हेमिल्टन ने शिशु उद्योग के संरक्षण की बात कही। बाद में जर्मन अर्थशास्त्री फ्रेडरिक लिस्ट ने इसे तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया। उनका कहना था कि शिशु उद्योगों का विकास मुक्त व्यापार के सिद्धांतों के आधार पर नहीं हो सकता। कम विकसित देशों के शिशु उद्योग अपने स्थापना के प्रारंभिक दौर में विकसित देशों के बड़े उद्योगों से प्रतिस्पर्धा करने की स्थिति में नहीं होते। इसलिए उन्हें प्रारंभिक दौर में संरक्षण की आवश्यकता होती है। परन्तु लिस्ट ने इस बात पर बल दिया कि संरक्षण कुछ ही समय के लिए दिया जाना चाहिए तथा उद्योग विशेष की 'परिकल्पना' अर्थात् नर्सिंग के उपरांत जब वे अपनी आतंरिक बचतों (Internal savings) का पूर्ण प्रयोग कर चुके होंगे तब संरक्षण नीति समाप्त कर देनी चाहिए।

7. उद्योगों में विविधता लाने सम्बन्धी तर्क (argument for diversifying across industries)- औद्योगिक उत्पादन में विविधता लाने के उद्देश्य से भी संरक्षण की नीति का प्रयोग किया जाता है। देश में सुनियोजित आद्योगिक विकास के लिए संरक्षण का सहारा लिया जाता है।

8. राशिपातन से बचाने हेतु (to protect against dumping)- राशिपातन से बचाने के लिए भी संरक्षण की नीति का प्रयोग किया जाता है। यदि प्रतियोगी देश कम मूल्य पर अथवा घाटा सह दूसरे देश में अपने उत्पाद को उतारते हैं तब इसे राशिपातन (Dumping) इससे घरेलु उद्योगों के नष्ट होने का खतरा बना रहता है। ऐसी स्थिति में संरक्षण अपरिहार्य हो जाता है।

9. बेरोजगारी एवं संरक्षण (unemployment and protection)- संरक्षण की नीति का समर्थन इस बात पर किया जाता है कि इससे घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है जिससे देश में रोजगार का सृजन होता है और बेरोजगारी दूर करने में मदद मिलती है।

10. प्रतीकात्मक संरक्षण (symbolic protection)- कभी-कभी देश के लिए मुक्त व्यापार की नीति पर चलना संभव नहीं हो पाता क्योंकि अन्य देश घरेलु उत्पादकों को कई प्रकार से रियायतें देकर संरक्षण दिए होते हैं। ऐसी स्थिति में उस देश को भी संरक्षण की नीति अपनानी पड़ती है।

16.8 संरक्षण के विपक्ष में तर्क (Arguments against Protection)

1. मुद्रा स्फीति में वृद्धि (increase in inflation)- देशी उद्योग को संरक्षण देने के नाम पर आयातित वस्तु पर आवश्यकता से अधिक प्रतिबन्ध लगाने से देश में स्फीतिकारी स्थिति पैदा होने का खतरा उत्पन्न होने लगता है। आयात पर प्रतिबंधों के फलस्वरूप उन उद्योगों का विकास अवरूद्ध हो जाता है जिनमें आयातित मशीनों व कच्चे माल का उपयोग होता है जिसके परिणामस्वरूप देश के निर्यातों में भी कमी होने की संभावना हो जाती है।

2. एकाधिकार को प्रोत्साहन (encouragement of monopoly)- घरेलू उद्योग को संरक्षण देने से उनमें एकाधिकारी शक्ति के उदय होने का भी खतरा उत्पन्न होता है। इसके फलस्वरूप देश की जनता निरपेक्ष/तुलनात्मक लागतों के लाभ से वंचित रह जाती है।

3. भुगतान-असंतुलन को प्रोत्साहन (promoting payments imbalance)- यह तर्क कि संरक्षण से भुगतान संतुलन में सुधार आता है, पूर्णतः सत्य नहीं है। कई बार भुगतान संतुलन को ठीक रखने के लिए अधिक आयात कर भुगतान संतुलन में घाटे के स्थिति उत्पन्न करती है। यह कोई आवश्यक नहीं कि अधिक आयात कर आयात में कमी ला दे। इसके अलावा अधिक आयात पर निर्भरता की स्थिति में आयात कर , निर्यात में भी कमी ला सकता है।

4. व्यावसायिक शिथिलता (professional dysfunction)- जैसा कि पहले चर्चा किया गया , संरक्षण घरेलू रोजगार सृजन में मदद करता है किन्तु यह भी संभव है कि अत्यधिक संरक्षणवादी नीति व्यावसायिक शिथिलता उत्पन्न कर दे, जिसके परिणामस्वरूप रोजगार में वृद्धि न होकर इसमें कमी आ जाय।

16.9 सारांश (Summary)

यह अध्याय अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की दो प्रमुख नीतियों मुक्त व्यापार और संरक्षणवाद का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। मुक्त व्यापार की अवधारणा वैश्विक स्तर पर बिना किसी प्रतिबंध के वस्तुओं और सेवाओं के आदान-प्रदान पर बल देती है , जबकि संरक्षणवाद घरेलू उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिए सरकारी हस्तक्षेप का समर्थन करता है।

मुक्त व्यापार के समर्थकों का मानना है कि यह नीति संसाधनों के कुशल आवंटन , उत्पादन लागत में कमी और उपभोक्ताओं को बेहतर विकल्प उपलब्ध कराने में सहायक होती है। एडम स्मिथ के तुलनात्मक लाभ के सिद्धांत के अनुसार, प्रत्येक देश को उन वस्तुओं के उत्पादन में विशेषज्ञता हासिल करनी चाहिए जिनमें उसे सापेक्षिक लाभ प्राप्त हो। इससे वैश्विक उत्पादकता में वृद्धि होती है और सभी देशों को लाभ होता है।

वहीं संरक्षणवाद के पक्षधरों का तर्क है कि विकासशील देशों के नवोदित उद्योगों को प्रारंभिक अवस्था में विदेशी प्रतिस्पर्धा से सुरक्षा की आवश्यकता होती है। फ्रेडरिक लिस्ट के शिशु उद्योग सिद्धांत के अनुसार , अस्थायी संरक्षण के बिना ये उद्योग कभी भी विकसित नहीं हो पाएंगे। संरक्षणवाद रोजगार सृजन , राष्ट्रीय सुरक्षा और आर्थिक स्थिरता जैसे लक्ष्यों की प्राप्ति में भी सहायक होता है।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में अधिकांश देशों ने दोनों नीतियों के मिश्रित रूप को अपनाया है। विश्व व्यापार संगठन जैसी संस्थाएं मुक्त व्यापार को बढ़ावा देने के साथ-साथ विकासशील देशों के लिए कुछ विशेष प्रावधानों का समर्थन करती हैं। अंततः किसी भी देश के लिए उपयुक्त नीति का चयन उसकी आर्थिक स्थिति , औद्योगिक क्षमता और विकास के स्तर पर निर्भर करता है।

16.10 शब्दावली (Glossary)

- **मुक्त व्यापार (Free Trade)-** बिना किसी प्रतिबंध (टैरिफ , कोटा आदि) के वस्तुओं और सेवाओं का अंतर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान।
- **संरक्षणवाद (Protectionism)-** घरेलू उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिए सरकारी नीतियाँ (जैसे आयात शुल्क, सब्सिडी)।
- **तुलनात्मक लाभ (Comparative Advantage)-** डेविड रिकार्डो का सिद्धांत जिसमें देशों को उन वस्तुओं के उत्पादन में विशेषज्ञता हासिल करनी चाहिए जिनमें उनकी सापेक्षिक दक्षता अधिक हो।
- **शिशु उद्योग (Infant Industry)-** नए और विकासशील उद्योग जिन्हें प्रारंभिक अवस्था में संरक्षण की आवश्यकता होती है (फ्रेडरिक लिस्ट का सिद्धांत)।
- **प्रशुल्क (Tariff)-** आयातित वस्तुओं पर लगाया जाने वाला कर , जिससे उनकी कीमत बढ़ाकर घरेलू उद्योगों को लाभ पहुँचाया जाता है।
- **राशिपतन (Dumping)-** विदेशी कंपनियों द्वारा घरेलू बाजार में सामान को कम कीमत पर बेचना , जिससे स्थानीय उद्योगों को नुकसान होता है।
- **विश्व व्यापार संगठन (WTO)-** अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नियमों को विनियमित करने वाली संस्था जो मुक्त व्यापार को बढ़ावा देती है।

16.11 अभ्यास प्रश्न उत्तर (Practice Question Answer)

1. मुक्त व्यापार की अवधारणा किस अर्थशास्त्री से सबसे अधिक जुड़ी है?

   A. कार्ल मार्क्स
   B. एडम स्मिथ
   C. जॉन मेनार्ड कीन्स
   D. मिल्टन फ्रीडमैन

2. निम्नलिखित में से कौन-सा संरक्षणवाद का उपकरण नहीं है?

   A. आयात शुल्क
   B. निर्यात सब्सिडी
   C. विदेशी मुद्रा की पूर्ण परिवर्तनीयता
   D. आयात कोटा

3. शिशु उद्योग तर्क किस अर्थशास्त्री से संबंधित है?

A. डेविड रिकार्डो
B. अलेक्जेंडर हैमिल्टन
C. अमर्त्य सेन
D. जोसेफ स्टिग्लिट्ज

4. मुक्त व्यापार का कौन-सा लाभ नहीं है?

A. संसाधनों का कुशल आवंटन
B. उपभोक्ताओं को सस्ती वस्तुएँ
C. घरेलू उद्योगों को प्रतिस्पर्धा से सुरक्षा
D. तकनीकी नवाचार को प्रोत्साहन

5. निम्नलिखित में से कौन-सा संरक्षणवाद का नकारात्मक प्रभाव है?

A. रोजगार में वृद्धि
B. मुद्रास्फीति में वृद्धि
C. घरेलू उत्पादन में वृद्धि
D. निर्यात में वृद्धि

6. तुलनात्मक लाभ का सिद्धांत किसने दिया?

A. एडम स्मिथ
B. डेविड रिकार्डो
C. अल्फ्रेड मार्शल
D. फ्रेडरिक लिस्ट

7.WTO का पूरा नाम क्या है?

A. World Tariff Organization
B. World Trade Organization
C. World Technology Organization
D. World Taxation Organization

8. निम्न में से कौन-सा मुक्त व्यापार की सीमा है?

A. उत्पादन लागत में कमी
B. शिशु उद्योगों को नुकसान
C. उपभोक्ताओं को अधिक विकल्प
D. वैश्विक सहयोग में वृद्धि

उत्तर-

1.B 2.C 3.B 4.C 5.B 6.B 7.B 8.B

16.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- Mithani, D. M. (2010) " International Economics" Himalaya Publishing House, Mumbai.
- वैश्य, एम.सी. व सिंह , सुदामा (2000). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र " सप्तम संस्कण , आक्सफोर्ड एवं आई.बी.एच. पब्लिशिंग कं.प्रा.लि., नई दिल्ली।
- अग्रवाल एवं बरला (2008). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र"लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- राणा, के.सी. एवं वर्मा, के.एन. (2012). "अंतरविदीय अर्थशास्त्र" विशाल पब्लिशिंग कं., जालन्धर।

16.13 सहायक पाठ्य सामग्री (Helpful Study Material)

- झिंगन, एम.एल. (2011) "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" षष्टम संस्करण, वृंदा पब्लिशिंग प्रा. लि., दिल्ली।
- Salvatore, Dominick (1998) " International Economics" Sixth Ed- Prentice Hall, New Jersey.
- Pugel, A. Thomas (2011), "International Economics" 13th ed. Tata McGraw Hill Educational Pvt. Ltd., New Delhi.
- Avadhani, V.A. (2012), "International Economics" Eighth Ed. Himalaya Publishing House, Mumbai.
- Krugman, Paul R. and Obstfeld, Maurice (2004), "International Economics" Sixth ed. Pearson Education, Delhi.
- Sodersten, B. and Reed, G. (2006). " International Economics" third ed., Macmillan Press Ltd., London.

16.14 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. मुक्त व्यापार और संरक्षणवाद की अवधारणाओं की विस्तृत व्याख्या कीजिए। इन दोनों नीतियों के बीच तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए बताइए कि वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में कौन-सी नीति अधिक प्रासंगिक है?